इकाई – 1 पूरक चिकित्सा पद्धति की अवधारणा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पूरक चिकित्सा पद्धति की अवधारणा
1.4 पूरक चिकित्सा पद्धति एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन
1.5 पूरक चिकित्सा पद्धति के उदाहरण
1.6 सारांश
1.7 पारिभाषिक शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, वर्तमान समय में पूरक चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन अत्यधिक बढ़ता जा रहा है। प्रत्येक आयु वर्ग के लोगों के लिये विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक रोगों में यह पद्धति अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हो रही है। रोगों को दूर करने के साथ – साथ जीवनशैली को सुव्यवस्थित एवं अनुशासित बनाने में यह पद्धति अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। अब आपके मन में सहज ही यह प्रश्न उठ रहा होगा कि आखिर **पूरक चिकित्सा** उपचार की कौन सी पद्धति है? इसके मूल सिद्धान्त क्या है ? इसमें रोगों के निदान एवं उपचार की प्रक्रिया क्या है? यह पद्धति किस प्रकार स्वास्थ्य संवर्द्धन करके जीवनशैली को व्यवस्थित करती है, इत्यादि। अतः आपके इन्हीं प्रश्नों के समाधान हेतु प्रस्तुत ईकाई में हम **''पूरक चिकित्सा पद्धतियों की अवधारणा''** के विषय में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य –

विद्यार्थियों, इस ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

1. पूरक चिकित्सा पद्धतियों की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. पूरक चिकित्सा पद्धति एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति का तुलनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे।
3. विभिन्न पूरक चिकित्सा पद्धतियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 पूरक चिकित्सा पद्धतियों की अवधारणा –

प्रिय विद्यार्थियों, सर्वप्रथम आपकी जानकारी के लिये यह स्पष्ट कर दें कि पूरक चिकित्सा की अवधारणा का तात्पर्य यह है कि पूरक चिकित्सा का क्या अर्थ है? मूल सिद्धान्त क्या है? यह कितने प्रकार की है? इत्यादि। इन सभी का विवेचन हम यहाँ करेंगे।

पाठकों, क्या आप जानते हैं कि पूरक चिकित्सा को दूसरे विभिन्न नामों से भी जाना जाता है। जैसे – वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति, समग्र चिकित्सा पद्धति, पारम्परिक चिकित्सा पद्धति इत्यादि। आपकी जानकारी के लिये इस तथ्य को भी स्पष्ट कर देना अति

आवश्यक है कि जब किसी रोगी को आधुनिक चिकित्सा के साथ – साथ पारम्परिक चिकितसा भी दी जाती है, तब यह पारम्परिक चिकित्सा ''**पूरक चिकित्सा**'' कहलाती है और जब रोगी को केवल पारम्परिक चिकित्सा ही दी जाती है, किसी प्रकार की आधुनिक चिकित्सा का प्रयोग नहीं किया जाता तो इसे **''वैकल्पिक चिकित्सा''** कहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पारम्परिक चिकित्सा को रोगी को किस प्रकार दिया जा रहा है, आधुनिक चिकित्सा के साथ – साथ अथवा उसके बिना, इसी आधार पर इसके दो नाम हैं– **पूरक चिकित्सा पद्धति और वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति।** इस प्रकार अब आप समझ गये होंगे कि पूरक चिकित्सा एवं वैकल्पिक चिकित्सा, इन दोनों में क्या – क्या समानतायें और विभिन्नतायें हैं।पाठकों, अब हम चर्चा करते हैं, पूरक चिकित्सा की मूल मान्यताओं पर अर्थात् यह चिकितसा पद्धति किन सिद्धान्तों पर आधारित है।

प्रिय विद्यार्थियों, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि **'पूरक चिकित्सा'** एक ऐसा शब्द है, जो अपने अन्दर उपचार की अनेक विधाओं को सम्मिलित करता है। कोई एक चिकित्सा पद्धति पूरक चिकित्सा पद्धति नहीं है, वरन् इसके अन्तर्गत असंख्य उपचार विधियाँ शामिल हैं, जिनमें से अनेकों के नाम भी ज्ञात नहीं है और उपचार की प्रत्येक विधि अपने आप में कुछ विशिष्ट है। इनके अपने सिद्धान्त, नियम और विधियाँ हैं। इसी कारण कुछ शब्दों में इस पूरक चिकित्सा पद्धति की एक सर्वमान्य परिभाषा देना थोड़ा कठिन प्रतीत होता है, लेकिन हाँ, आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन करके हम इसके स्वरूप को भली – भाँति समझ सकते हैं।

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक चिकितसा से तात्पर्य एक ऐसी चिकित्सा पद्धति से है, जिसमें उपचार की असंख्य ऐसी विधियाँ शामिल हैं, जो प्राण ऊर्जा के सिद्धान्त पर कार्य करती है। इस चिकित्सा पद्धति की मूल मान्यता यह है कि ऊर्जा के असंतुलन के कारण ही कोई भी रोग उत्पन्न होता है और विकृति स्थूल या भौतिक शरीर से पहले सूक्ष्म या ऊर्जा शरीर में उत्पन्न होती है। इसके उपरान्त उसके लक्षण स्थूल शरीर में दिखाई देते है। अतः इसमें प्राणी के केवल भौतिक शरीर की ही चिकित्सा नहीं की जाती वरन् शरीर के साथ – साथ मन और आत्मा को भी स्वस्थ रखने पर बल दिया जाता है अर्थात् ऐसे उपाय अपनाये जाते है, जिससे मन एकाग्र एवं शांत हो और आत्मा संतुष्ट हो। इस प्रकार स्वास्थ्य के केवल एक पक्ष (भौतिक शरीर) पर बल नहीं दिया जाता, वरन् समग्र स्वास्थ्य की बात की जाती है। इसी कारण इसे **''समग्र चिकित्सा''** के नाम से भी जाना जाता है।

''वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित हो गई हैं। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों के सौ से ज्यादा रूप हैं। इसके अन्तर्गत मानव शरीर को **षारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक** पहलुओं के समग्र के रूप में देखा जाता है। इसमें स्वास्थ्य के रक्षात्मक और प्रगतिशील पहलुओं पर समान रूप से प्रकाश डाला गया है।''

(डा0 राजकुमार प्रुथी : वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ)

प्रिय विद्यार्थियों नीचे पूरक चिकित्सा पद्धति की मूल मान्यताओं का विवेचन किया जा रहा है, जिससे आपको इसका स्वरूप और अधिक स्पष्ट हो जायेगा। पूरक चिकित्सा की मूल मान्यतायें निम्नानुसार है–

1. रोगों का प्रमुख कारण ऊर्जा का असंतुलन ।

2. समग्र स्वास्थ्य पर बल
3. स्वास्थ्य के रक्षात्मक एवं प्रगतिशील दोनों पहलुओं पर समान रूप से बल।
4. स्वतः रोग मुक्ति का सिद्धान्त
5. प्राकृतिक जीवनशैली पर बल।
6. शीघ्रतापूर्वक नहीं वरन् धीरे – धीरे रोग के समूल नाश पर बल

इनका विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है –

1. **रोगों का प्रमुख कारण ऊर्जा का असंतुलन–** पाठकों, पूरक चिकित्सा पद्धति का मूल सिद्धान्त यह हैं कि रोगों का मूल कारण ऊर्जा का असंतुलन है। क्या आप जानते हैं कि इस सृष्टि में प्रत्येक पदार्थ चाहे यह जड़ रूप में हो अथवा चेतन रूप में, वह ऊर्जा का ही एक रूप है। क्योंकि ऊर्जा ही पदार्थ में रूपान्तरित होती है और अन्ततः प्रत्येक पदार्थ ऊर्जा में बदज जाता है। प्राणियों के भीतर यह ऊर्जा **'प्राण'** कहलाती है। प्राणयुक्त होने पर ही जीव **'प्राणी'** कहलाता है और प्राणविहीन हो जाने पर मृत। इस प्राणऊर्जा या जीवनीशक्ति पर ही हमारा समूचा जीवन आश्रित है। इस प्राण ऊर्जा को भिन्न – भिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। रेकी चिकितसा के विशेषज्ञ इसे 'की' कहते हैं। जब तक जीव का ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से सम्पर्क बना रहता है, वह स्वस्थ रहता है, जैसे ही यह सम्पर्क टूट जाता है अथवा इसमें अवरोध आते है, वैसे ही वह विभिन्न प्रकार की विकृतियों से ग्रसित होने लगता है। ये विकृतियाँ शरीर के स्तर पर भी हो सकती हैं, वैचारिक स्तर पर भी और भावनात्मक स्तर पर भी। कहने का आशय यह है कि ऊर्जा का असंतुलन ही रोगों को जन्म देता है। असंतुलन का आशय है कि ऊर्जा कहीं पर तो आवश्यकता से अधिक और कहीं पर आवश्यकता से कम। **संतुलन ही आरोग्य की कुंजी है।** जैसे – योग चिकित्सा में माना जाता है कि **सत, रज, एवं तम** ये तीन गुण होते हैं। इन तीनों में सतोगुण तो विकार का कारण नहीं है अर्थात् सतोगुण के कारण रोग उत्पन्न नहीं होते हैं, किन्तु रजोगुण एवं तमोगुण में असंतुलन विभिन्न रोगों को जन्म देता है। इसी प्रकार आयुर्वेद त्रिदोष **(वात–पित्त–कफ)** के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें वात, पित्त एवं कफ में असंतुलन को रोगों का प्रधान कारण माना गया है। यदि हम प्राकृतिक चिकित्सा की बात करें तो वहा भी पृथ्वी, जल, अग्नि वायु एवं आकाश – इन पंचमहाभूतों को संतुलित करने पर ही बल दिया जाता है। **एक्यूपंक्चर एवं एक्यूप्रेषर चिकित्सा पद्धति** की भी मूल अवधारण यही है कि ऊर्जा प्रवाह पथ (मेरीडियन्स) में अवरोध के कारण ही बीमारियाँ जन्म लेती है अर्थात् शरीर के किसी अंग में ऊर्जा घनीभूत हो जाती ळै और किसी अंग में कम। परिणामस्वरूप व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार प्राणिक हीलिंग और रेकी विशेषज्ञों के अनुसार विश्वव्यापी ऊर्जा से जीव का सम्पर्क टूटने का कारण ही विकृतियाँ जन्म लेती है।

पाठकों, इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि पूरक चिकित्सा पद्धति का चाहे कोई भी रूप हो, इन सभी में ऊर्जा के असंतुलन को ही रोगों का प्रमुख कारण माना गया है और उपचार के द्वारा ऊर्जा को संतुलित किया जाता है, जिससे कि प्राण ऊर्जा का संचार सम्यक् रूप से होता रहे।

2. **समग्र स्वास्थ्य पर बल –** पाठकों, पूरक चिकित्सा का दूसरा सिद्धान्त यह है कि यह पद्धति समग्र स्वास्थ्य के दृष्टिकोण पर आधारित है। कहने का तात्पर्य यह

है कि इस पद्धति के अनुसार प्राणी केवल पंचमहाभूतों से बना स्थूल शरीर मात्र नहीं है, वरन् शरीर के अतिरिक्त मन और आत्मा भी है और तीनों एक दूसरे से सम्बद्ध है। यदि शरीर स्वस्थ है, किन्तु व्यक्ति आत्मिक दृष्टि से संतुष्ट नहीं है, मानसिक रूप से परेशान है तो उसे पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि मन और आत्मा उसकी शारीरिक गतिविधियों को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करेंगे। इसी प्रकार मानसिक रूप से प्रसन्न होने के बावजूद यदि शरीर में कोई पीड़ा है, तब भी व्यक्ति अपने कार्यो को ठीक प्रकार से पूरा नहीं कर सकेगा। कहने का आशय है कि यदि हम अपनी पूरी ऊर्जा के साथ कार्य करना चाहते हैं तो हमें शरीर के साथ – साथ मन और आत्मा को भी स्वस्थ बनाना होगा। आयुर्वेद के महान ग्रन्थ **''सुश्रुत संहिता''** में समग्र स्वास्थ्य की महत्ता का विवेचन करते हुये कहा गया है कि –

समदोषः समाग्निष्च,
समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः,
स्वस्थइत्यभिधीयते।।''

(सुश्रुत सूत्र 15:41)

अर्थात्

जिस व्यक्ति के दोष, धातु एवं मल तथा अग्नि व्यापार सम हो अर्थात् विकार रहित हो और जिसकी इन्द्रियाँ, मन और आत्मा प्रसन्न हो, वही स्वस्थ है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि समग्र स्वास्थ्य ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये और पूरक चिकित्सा पद्धति हमें इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर करती है अर्थात् इसमें स्वास्थ्य के शारीरिक पहलू के साथ – साथ **मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक** पहलू पर भी बल दिया जाता है, जिससे कि व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का विकास हो सके।

3. **स्वास्थ्य के रक्षात्मक एवं प्रगतिशील दोनों पहलुओं पर समान रूप से बल–**
पाठकों, पूरक चिकित्सा में स्वास्थ्य के रक्षात्मक पहलू के साथ – साथ प्रगतिशील पहलू पर भी बल डाला जाता है। इसका अर्थ यह है कि इस चिकित्सा पद्धति में न केवल उत्पन्न रोग को ठीक किया जाता है, वरन् ऐसे प्रयास किये जाते है कि भविष्य में व्यक्ति पुनः रोगग्रस्त ना हो अर्थात् उसकी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के उपाय किये जाते हैं। यहाँ आपकी जानकारी के लिये यह बता देना भी आवश्यक है कि प्रतिरोधक क्षमता भी केवल शारीरिक ही नहीं होती वरन् यह मानसिक और आध्यात्मिक भी होती है।

4. **स्वतः रोग मुक्ति का सिद्धान्त–** पूरक चिकित्सा का अगला सिद्धान्त स्वतः रोग मुक्ति का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार शरीर में स्वयं में ही अपने को स्वस्थ रखने की क्षमता विद्यमान हैं। प्रकृति का यह नियम है कि यह विकृति को भीतर रहने नहीं देती। यदि विकृति शारीरिक है तो यह शारीरिक रोग के रूप में उभरती है और मानसिक है तो मानसिक रोग के रूप में। इस प्रकार शरीर रोगों के रूप में विकारों को उभारकर शरीर को स्वस्थ करता है। आप सोच रहे होंगे कि यदि शरीर स्वयं ही रोगमुक्त हो सकता है, तो विविध उपचार विधियों की क्या आवश्यकता है? इन उपचार विधियों की भी आवश्यकता है क्योंकि ये सभी विधियाँ

शरीर को अपना कार्य करने में सहायता और सुविधा प्रदान करती है, जिससे रोग अपेक्षाकृत जल्दी ठीक होता है। जैसे –हड्डी टूटने पर डॉक्टर प्लास्टर बाँध देता है, लेकिन क्या आपने कभी सोचा कि क्या प्लास्टर बॉधने से हड्डी जुड़ती है? नहीं। प्लास्टर तो इसलिये बाँधा जाता है कि हड्डी अपनी जगह पर बनी रहे। शरीर का वह अंग जहाँ की हड्डी टूटी है, वह हिले – डुले नहीं, जिससे की हड्डी जल्दी जुड़ सके। जोड़ने का कार्य तो शरीर स्वयं ही करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति के अनुसार शरीर स्वयं ही रोगों को ठीक करता है और उपचार की विभिन्न विधियों द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ एवं सुविधायें उत्पन्न की जाती है, जिससे शरीर को अपना कार्य करने में सहयोग मिल सके और रोग ठीक होने की गति में वृद्धि हो सके।

5. **<u>प्राकृतिक जीवनषैली पर बल –</u>** पूरक चिकित्सा पद्धति प्राणी को प्राकृतिक जीवन जीने के लिये प्रेरित करती है। पाठकों, हम सभी इस तथ्य से सुपरिचित हैं कि आज इंसान जितनी भी समस्याओं से जूझ रहा है उनका मूल कारण अप्राकृतिक एवं यांत्रिक जीवनशैली है। सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक व्यक्ति एक मशीन की तरह कार्य करता रहता है। अत्यधिक धन और पद – प्रतिष्ठा की भूख ने इसको प्रकृति से दूर कर दिया है। दूसरों से प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में व्यक्ति ने अपनी मौलिकता को खो दिया है। परिणाम क्या मिला ? **तनाव, अवसाद, भावनात्मक घुटन।** अतः पाठकों, आज एक ऐसी उपचार विधि की आवश्यकता है जो पुनः व्यक्ति को प्रकृति की ओर लेकर जाये। उसे अपने जीवन के मूल लक्ष्य से अवगत कराकर प्रकृति के साथ साहचर्य निभाने के लिये प्रेरित करे। किसी कीमत पर अपनी मौलिकता को बरकरार रखने की प्रेरणा दे।

प्रिय विद्यार्थियों, क्या आपने कभी सोचा है कि पशु–पक्षी–वनस्पतियों इनको क्यों कभी किसी चिकित्सक की आवश्यकता नहीं पड़ती। हालांकि समस्यायें इनके जीवन मं भी आती है, विकारग्रस्त ये भी होते हैं। इसका मूल कारण यह है कि ये प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं। प्राकृतिक जीवन जीते हैं। इसीलिये मनुष्यों की अपेक्षा कम बीमार होते हैं और यदि कभी होते भी हैं तो प्राकृतिक जीवनशैली के कारण शीघ्रतापूर्वक ठीक हो जाते हैं। पाठकों, यदि हम वास्तव में पाकृतिक जीवन जीना चाहते हैं तो हमें सूर्य के अनुसार दिनचर्या, रात्रिचर्या को व्यवस्थित करना चाहिये। सूर्य से अधिक अच्छी घड़ी कोई नहीं हो सकती। क्या आप जानते हैं कि यदि हमारी जैविक घड़ी सूर्य के अनुसार संचालित होती है तो हम प्रायः स्वस्थ रहते हैं।

पाठकों, आपने देखा भी होगा कि बहुत सारी पूरक चिकित्सा पद्धतियों के नाम से ही ऐसे हैं जो हमें प्रकृति की ओर प्रेरित करते हैं। जैसे– सुगन्ध चिकित्सा, पुष्प चिकित्सा, संगीत चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा इत्यादि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति प्राकृतिक जीवनशैली पर आधारित है।

6. **<u>शीघ्रतापूर्वक नहीं वरन् धीरे – धीरे रोग के समूल नाश पर बल–</u>** पाठकों, पूरक चिकित्सा की एक मान्यता यह भी है कि शीघ्रतापूर्वक कुछ समय तक ठीक होने की अपेक्षा धीरे – धीरे रोग को जड़ से ही समाप्त किया जाना चाहिये, ताकि भविष्य में वह रोग पुनः ना हो और रोग को दूर करने के साथ – साथ स्वास्थ्य संवर्द्धन पर भी बल देना चाहिये, क्योंकि ऊर्जा के संतुलन में समय लगता है। अतः आप समझ गये होंगे कि

पूरक चिकित्सा पद्धति में ऊर्जा के संतुलन द्वारा धीरे –धीरे रोग का समूल नाश किया जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप पूरक चिकित्सा पद्धति की अवधारणा को भली–भाँति समझ गये होंगे। इसके स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिये आइये, अब हम चर्चा करते हैं– पूरक चिकित्सा पद्धति और आधुनिक चिकित्सा पद्धति के तुलनात्मक अध्ययन के बारे में।

1.4 पूरक चिकित्सा पद्धति एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन –

क्रम सं0	**पूरक चिकित्सा पद्धति**	**आधुनिक चिकित्सा पद्धति**
1	पूरक चिकित्सा पद्धति में समग्र स्वास्थ्य पर बल दिया जाता है।	आधुनिक चिकित्सा पद्धति में केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर बल दिया जाता है।
2.	पूरक चिकित्सा पद्धति में धीरे – धीरे रोगों के समूल नाश पर बल दिया जाता है।	आधुनिक चिकित्सा पद्धति में शीघ्रतापूर्वक रोगों के लक्षणों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। इसमें रोग को जड़ से समाप्त करने पर बल नहीं दिया जाता है।
3.	पूरक चिकित्सा पद्धति के अनुसार ऊर्जा का असंतुलन रोगों का मूल कारण है।	आधुनिक चिकित्सा पद्धति ऐसा नहीं मानती। इसके अनुसार शारीरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण रोग उत्पन्न होते हैं।
4.	यह चिकित्सा पद्धति प्राकृतिक जीवनशैली की ओर प्रेरित करती है।	यह भौतिक जीवनशैली की ओर लेकर जाती है।
5.	पूरक चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य के रक्षात्मक एवं प्रगतिशील दोनों पहलुओं पर समान रूप से बल दिया जाता है।	आधुनिक चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य के रक्षात्मक पहलू पर अधिक बल दिया जाता है।

पाठको, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति में अनेक मौलिक अन्तर हैं और दोनों पद्धतियों में पूरक चिकित्सा पद्धति अधिक निरापद है अर्थात् इससे लाभ की संभावना अधिक है और हानि की संभावना नगण्य है।

1.5 पूरक चिकित्सा पद्धति के उदाहरण –

प्रिय पाठकों, वर्तमान समय में समूचे विश्व में असंख्य पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें किसी देश की सीमाओं में आबद्ध नहीं किया जा सकता। कुछ अत्यधिक प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धतियों के नाम नीचे दिय जा रहे हैं–

1. **एक्यूप्रेशर –**चीन में विगत चार हजार वर्षो से प्रचलित चिकित्सा पद्धति, जिसमें शरीर में निश्चित ऊर्जा बिन्दुओं पर जिम्मी इत्यादि विविध एक्यूप्रेशर उपकरणों द्वारा दबाव डालकर रोग का उपचार किया जाता है।
2. **एक्यूपंक्चर –** इसमें निश्चित ऊर्जा बिन्दुओं पर सुइयाँ चुभोकर उपचार किया जाता है।
3. **संगीत चिकित्सा –** संगीत के सात सुरों के द्वारा भिन्न – भिन्न रोगों का इलाज किया जाता है। रण चिकित्सा से औषधि निर्माण के लिये उसी रंग की काँच की साफ बोतल का प्रयोग किया जाता है।
4. **रेकी –** इसमें हाथों द्वारा प्राण उर्जा देकर रोगी का ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से सम्पर्क स्थापित किया जाता है।
5. **सुगन्ध चिकित्सा –** इसमें रोग के अनुसार भिन्न – भिन्न प्रकार की सुगन्ध का प्रयोग कर उपचार करते हैं।
6. **सूर्य किरण चिकित्सा –** इसे सूर्य चिकित्सा या रंग चिकित्सा भी कहते हैं। इसमें सूर्य किरणों के सात रंगों द्वारा औषधीय जल, तेल या दवा तैयार करके इलाज किया जाता है।
7. **चुम्बक चिकित्सा –** अलग – अलग प्रकार के चुम्बकों को शरीर पर लगाकर रोग का उपचार किया जाता है।
8. **मन्त्र चिकित्सा –** शारीरिक, मानसिक सभी प्रकार के रोगों के लिये यह चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी है। इसमें रोग के अनुसार अलग – अलग मंत्रों का जप करके उपचार किया जाता है।
9. **स्वाध्याय चिकित्सा –** इसमें सद्ग्रन्थों के आलोक में आत्म–मूल्यांकन किया जाता है अर्थात् तटस्थ भाव से अपने गुण – दोष की जाँच की जाती है। इसके बाद जो कमियाँ होती है उनको दूर करने के लिये उन सद्ग्रन्थों में कही गई बातों के अनुसार अपनी भावनाओं, विचारों एवं व्यवहार में परिवर्तन का प्रयास किया जाता है।
10. **पिरामिड चिकित्सा –** यह चिकित्सा पद्धति मिस्र की देन है। इस चिकित्सा पद्धति में शरीर के जिस अंग में विकृति है, उस अंग पर पिरामिड यंत्र को रखकर चिकित्सा की जाती है। मानसिक विकारों को दूर करने में भी इस चिकित्सा का अत्यन्त प्रभावी उपयोग किया जाता है।
11. **प्रार्थना चिकित्सा –** वर्तमान समय में प्रार्थना एक चिकित्सा पद्धति के रूप में अत्यन्त प्रचलित हो रही है। प्रार्थना व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार से की जा सकती है। हम स्वयं के लिये भी प्रार्थना कर सकते हैं और दूसरों के लिये भी।
12. **योग चिकित्सा –** योग चिकित्सा से आज प्रायः प्रत्येक आयु वर्ग का व्यक्ति सुपरिचित है, जिसमें विभिन्न प्रकार के **आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, मानसिक एकाग्रता के अभ्यास जैसे – त्राटक, धारणा और षटकर्म (धौति, वस्ति, नेति, नौलि,**

त्राटक, कपालभॉति) के माध्यम से चिकित्सा की जाती है। इन सभी के साथ – साथ योग चिकित्सा में मूल रूप से जीवनशैली को सुधारने पर बल दिया जाता है और सकारात्मक रहते हुये प्राकृतिक जीवन जीने पर बल दिया जाता है।

13. **हास्य चिकित्सा –**यह पद्धति भी वर्तमान समय में खूब प्रचलन में है। आज व्यक्ति दो पल खुलकर हँसना तो मानों भूल ही गया है। अतः इस चिकित्सा पद्धति में हँसी के विभिन्न तरीके बतलाये जाते हैं और रोगों के अनुसार हास्य चिकित्सा दी जाती है।
14. **यज्ञ चिकित्सा–** हमारे प्राचीन ऋषि – मुनि इस चिकित्सा पद्धति का अत्यधिक प्रयोग करते थे। इस पद्धति में रोगानुसार विविध मंत्रों और हवन सामग्री का प्रयोग करके रोगों का इलाज किया जाता है।
15. **प्राकृतिक चिकित्सा –**इसमें मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों के द्वारा विभिन्न विधियों से चिकित्सा की जाती है। जैसे स्नान द्वारा, पट्टी द्वारा, लेप द्वारा इत्यादि।
16. **व्यवहार चिकित्सा –** इस चिकित्सा पद्धति में समस्याग्रस्त व्यक्ति को ऐसे उपाय बताये जाते है, जिससे उसके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन हो सके और उसकी समायोजन क्षमता का अधिकाधिक विकास हो। इस पद्धति का प्रयोग मुख्य रूप से मनोरोगों को ठीक करने के लिये किया जाता है।
17. **नृत्य चिकित्सा –** भिन्न – भिन्न प्रकार के नृत्यों द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है।
18. **आहार चिकित्सा–** रोग एवं रोगी के अनुसार आहार के गुण एवं मात्रा में परिवर्तन करके उपचार किया जाता है।
19. **स्व–संकेत चिकित्सा–** अंग्रेजी में इसे " Auto-Suggestion therapy" कहते हैं। इस चिकित्सा पद्धति में मन में नकारात्मक विचार आने पर उसके स्थान पर स्वयं ही सकारात्मक विचार को प्रतिस्थापित किया जाता है अर्थात् स्वयं के द्वारा ही स्वयं को सकारात्मक विचार के रूप में एक संकेत दिया जाता है। इसी कारण इसका नाम ''स्व संकेत चिकित्सा पद्धति'' है।

प्रिय विद्यार्थियों, इनके अतिरिक्त भी अनेकों पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं, किन्तु उन सभी का विवेचन यहा संभव नहीं है।

अभ्यास प्रश्नः

1. पूरक चिकित्सा को कहते हैं।

(क) वैकल्पिक चिकित्सा

(ख) पारम्परिक चिकित्सा

(ग) क एवं ख दोनों

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. पूरक चिकित्सा पद्धति का उदाहरण है–

(क) प्रार्थना चिकित्सा

(ख) सुगन्ध चिकित्सा

(ग) प्राण चिकित्सा

(घ) उपर्युक्त सभीं

3. पिरामिड चिकित्सा कौन से देश की देन है।

(क) भारत

(ख) चीन

(ग) रूस

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

1.6 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप जान गये होंगे कि पूरक चिकित्सा पद्धतियों की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। इसके अंतर्गत वे सभी पारम्परिक उपचार विधियाँ समाविष्ट हैं जो प्राण उर्जा के सिद्धान्त के पूर्वी दर्षान पर आधारित है। इस चिकित्सा पद्धति की मूल मान्यता है कि रोगों का प्रधान कारण उर्जा का असंतुलन है। अतः उर्जा को संतुलित करके रोगों का समूल नाश एवं स्वास्थ्य संरक्षण सहज रूप से किया जा सकता है। इस असंतुलित उर्जा को संतुलित करने की असंख्य विधियाँ है। इसी करण पूरक चिकित्सा में उपचार की कोई एक विधि नहीं है वरन् अनगिनत पद्धतियों से उपचार किया जाता है। पूरक चिकित्सा पद्धति के अत्यन्त **सहज, सुलभ एवं निरापद** होने से वर्तमान समय में इसका प्रचलन अत्यधिक बढ़ रहा है और सभी वर्ग के लोग इसकी आवश्यकता महसूस कर रहे हैं।

1.7 शब्दावली –

समग्र स्वास्थ्य – **सम्पूर्ण** रूप से स्वस्थ होना। समग्र स्वास्थ्य के निम्न आयाम है–

1. शारीरिक स्वास्थ्य
2. मानसिक स्वास्थ्य
3. सामाजिक स्वास्थ्य
4. आध्यात्मिक स्वास्थ्य

समूल – जड़ सहित अर्थात् मूलकारण सहित।

रेकी – रे = विश्वव्यापी, की = जीवनीशक्ति, विश्वव्यापी जीवनीशक्ति ।

स्वाध्याय –सद्ग्रन्थों के प्रकाश में आत्मानुसंधान की प्रक्रिया अर्थात् =Study Of Self ।

एक्यूप्रेशर –निश्चित बिन्दुओं पर दबाव देकर उपचार की पद्धति।

एक्यूपंक्चर –निश्चित बिन्दुओं पर सुई चुभोकर उपचार की पद्धति।

त्राटक –किसी भी ध्येय को अपलक या एकटक देखना। त्राटक हठयोग के षट्कर्मो में से शुद्धि की एक प्रक्रिया है।

मन्त्र – **''मननात् त्रायते इति मन्त्रः''**

अर्थात्

जिसका मनन करने से त्राण (रक्षा) मिलता है, उसे मंत्र कहते हैं।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 ग 2 घ 3 घ

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपरु, उत्तरप्रदेष।

2 आध्यात्मिक चिकित्सा : एक समग्र उपचार पद्धति– डॉ0 प्रणव पण्ड्या, शांतिकुन्ज हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री –

1 वैकल्पिक चिकित्सा – डॅा0 आर0एस0 विवेक। डायमंड बुक्स नई दिल्ली।

2 वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ– राजकुमार प्रुथी। प्रभात प्रकाषन, नई दिल्ली।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न – 1 – पूरक चिकित्सा पद्धतियों की अवधारणा पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 2 विभिन्न प्रकार की पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ।

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 विभिन्न प्रकार की पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ
2.3.1 पिरामिड चिकित्सा
2.3.2 स्वाध्याय चिकित्सा
2.3.3 सूर्य किरण चिकित्सा
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की ईकाई में आपने पूरक चिकित्सा की अवधारणा का अध्ययन किया है। अतः आप इस बात से भली – भाँति परिचित हो गये होंगे कि पूरक चिकित्सा पद्धति की मूल मान्यतायें क्या है अर्थात् उपचार की यह पद्धति किस सिद्धान्त पर कार्य करती है। इसका क्षेत्र कितना व्यापक है। जैसा कि स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति में असंख्य ऐसी उपचार विधियों का समावेश है जो पूवी दर्शन और प्राण उर्जा के सिद्धान्त को आधार बनाकर अपना कार्य करती है। कितनी ही पूरक चिकित्सा विधियाँ ऐसी हैं, जिनके नाम भी ज्ञात नहीं है। अतः सभी पूरक चिकित्सा पद्धतियों का विवरण देना तो इस एक ईकाई में संभव नहीं है, तथापि हम कतिपय मुख्य – मुख्य पूरक चिकित्सा पद्धतियों का अध्ययन प्रस्तुत ईकाई में करेंगें।

2.2 उद्देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

1 पूरक चिकित्सा पद्धति के क्षेत्र का वर्णन कर सकेंगे।
2 पिरामिड चिकित्सा पद्धति का वर्णन कर सकेंगे।
3 स्वाध्याय चिकित्सा को स्पष्ट कर सकेंगे।
4 सूर्य किरण चिकित्सा की अवधारणा, लाभ एवं सीमाओं का विवेचन कर सकेंगे।

2.3 विभिन्न प्रकार की पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ –

प्रिय विद्यार्थियों, जब भी कोई प्राणी रोगग्रस्त होता है, तो उसे उपचार की आवश्यकता होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विश्वास और पसन्द के अनुसार चिकित्सा पद्धति को अपनाता है। वर्तमान समय में उपचार की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं और एक ही रोग को भिन्न – भिन्न चिकित्सा पद्धतियों के माध्यम से ठीक किया जा सकता है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि रोग का समूल नाश हो। एक बार होने के बाद वह रोग पुनः प्रकट ना हो और जिस भी उपचार विधि को अपनाया जाये उसका स्वास्थ्य पर कोई दुष्प्रभाव ना पड़े। यही कारण है कि आज उपचार विधि को अपनाने के विषय में लोग सजग और सावधान हो गये है और स्वास्थ्य के प्रति उनका दृष्टिकोण भी व्यापक हुआ है। अब लोग स्वयं को केवल शारीरिक दृष्टि से ही नहीं वरन् मानसिक रूप से भी स्वस्थ रखने की आवश्यकता महसूस करने लगे है और यह कहा जाये कि शरीर की तुलना में मन को अधिक महत्व दे रहे हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी कारण आज पूरक चिकित्सा पद्धतियों को अपनाने पर लोग इतना जोर दे रहे हैं, क्योंकि ये चिकित्सा पद्धतियाँ समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा पर आधारित है। इनकों विधिपूर्वक अपनाने से हमारा शरीर, मन और आत्मा सभी स्वस्थ होते हैं।

पाठकों, इतना तो आप जान ही चुके हैं कि इन पूरक चिकित्सा पद्धतियों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। अतः एक इकाई में इन सभी पद्धतियों का अध्ययन संभव नहीं है। इसलिये प्रस्तुत ईकाइ में कुछ महत्वपूर्ण पूरक चिकित्सा पद्धतियों का विवेचन किया जा रहा है, जिनकों नियमित और सावधानीपूर्वक अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकता है। तो आइये, सर्वप्रथम हम चर्चा करते हैं पिरामिड चिकित्सा के विषय में।

2.3.1 पिरामिड चिकित्सा–

प्रिय पाठको, आप सभी इस बात से सुपरिचित हैं कि **मिस्र के पिरामिड विष्वविख्यात हैं।** ये दुनिया के सात आश्चर्यों में से एक हैं। आज वैज्ञानिक इस बात का रहस्य जानने में जुटे हुये हैं कि आखिर ऐसा क्या है, जिसके कारण हजारों साल पहले पिरामिड के नीचे रखी हुयी लाशें, जिनको **'ममी'** कहा जाता है, वो अभी तक भी खराब क्यों नहीं हुयी हैं?

प्रिय विद्यार्थियों, इस सन्दर्भ में हुयी विभिन्न खोजों से यह प्रमाणित हो चुका है कि पिरामिड के अन्दर अद्भुत प्रकार की ऊर्जा तरंगे निरन्तर काम करती रहती हैं, जिनका प्रभाव जड़ एवं चेतन दोनों पर समान रूप से पड़ता है।

पाठकों, पिरामिड के अन्दर रखी हुयी इन ममी के ऊपर एवं नीचे विद्युत लहरें निरन्तर चलती रहती हैं, जिसके कारण ऊर्जा का प्रवाह सत्त बना रहता है और लाशे खराब नहीं होती हैं। पिरामिडों की इस शक्ति को वैज्ञानिकों ने **''पिरामिड पावर''** का नाम दिया है। पिरामिडों की इस शक्ति के कारण आज **''पिरामिड चिकित्सा''** के नाम से यह पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। स्वस्थ जीवन की प्राप्ति के लिये आज अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया जैसे देशों में अस्पतालों को पिरामिड जैसा आकार देने का प्रयास किया जा

रहा है। पिरामिड संबधी विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि पिरामिडो की इस शक्ति का हम अपने दैनिक जीवन में भी लाभ उठा सकते है।

तो आइये, अब हम चर्चा करते हैं कि किस प्रकार इस चिकित्सा का उपयोग करके हम दैनिक जीवन में लाभान्वित हो सकते हैं।

पिरामिड क्या है ?

प्रिय पाठकों, क्या आप जानते है कि ग्रीक भाषा में **पायरा का अर्थ होता है – 'अग्नि' तथा मिड का अर्थ है – 'केन्द्र' ।** इस प्रकार पिरामिड शब्द का अर्थ है – '**केन्द्र में अग्नि वाला पात्र' ।** जैसा कि हम सभी जानते है कि प्राचीन काल से ही अग्नि को ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार पिरामिड का सामान्य शाब्दिक अर्थ है '**अग्निषिखा''** अर्थात एक ऐसी अदृश्य ऊर्जा जो अग्नि के समान हमारी अशुद्धियों का नाश करके हमें निर्मल कर सकती है। पाठकों, क्या आप जानते हैं कि पिरामिड यंत्र अंतरिक्ष से आने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों को संग्रहित करके इन्हें कल्याणकारी किरणों के रूप में परिवर्तित कर देता है। पिरमिड यंत्र के पाँच शीर्षो से प्राण ऊर्जा सर्पाकार कुण्डल रूप में सदैव ऊपर बहती रहती है। वर्तमान समय में वास्तुदोष निवारण के लिये पिरामिड यंत्र को अत्यन्त महत्व दिया जा रहा है। वैदिक ज्यामिति के अनुसार त्रिकोण को स्थिरता एवं प्रगति का सूचक माना जाता है। पिरामिड में चार त्रिकोण मिलते हैं, जिससे स्थिरता एवं प्रगति चौगुनी हो जाती है। इस प्रकार वास्तुदोष निवारण हेतु पिरावास्तु अत्यन्त कारगर एवं प्रभावशाली उपाय है।

पिरामिड मंत्र

त्रिभुजाकारम् षिखर कोषम्, उर्ध्वमूलम् प्रगच्छम्।
चत्वारात्मम् समभुजास्यम्, आसनास्यास्य बद्धम्।।
ईषावास्यम् अग्निकेन्द्रम, सौम्य ऊर्जा प्रवर्तकम्।
शक्ति स्तोत्रम्, भव–भयहरम् सर्वपीड़ा।।

पिरामिड चिकित्सा के विभिन्न उपयोग –

प्रिय पाठकों, पिरामिड चिकित्सा हमारे दैनिक जीवन में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो सकती है। इस चिकितसा पद्धति का उपयोग हम विभिन्न प्रकार से कर सकते हैं, जैसे कि –

1. यदि पिरामिड का प्रयोग सिर के ऊपर किया जाये तो इससे मस्तिष्क पर सकारात्क प्रभाव पड़ता है। नकारात्मक चिन्तन दूर होकर मन में अच्छे विचार उत्पन्न होने लगते हैं।
2. विद्यार्थियों के लिये भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। इससे उनकी सीखने की क्षमता, याद करने की क्षमता को काफी हद तक विकसित किया जा सकता है। यदि विद्यार्थी पिरामिड पहनकर कुर्सी के नीचे पिरामिड रखकर विषय को याद करें, तो इससे उन्हें अपना विषय जल्दी याद हो सकता है ओर उनकी बुद्धि का विकास हो सकता है।
3. पिरामिड को जल के पात्र के ऊपर रख देने से 12 घंटे के अन्दर ही जल अत्यधिक आरोग्यप्रद, मीठा और स्वादयुक्त हो जाता है।

4. खाद्य पदार्थ जैसे की फल, सब्जियाँ, दूध, दही, मिठाई इत्यादि के ऊपर पिरामिड रख देने से वे आरोग्यप्रद एवं अधिक स्वादयुक्त हो जाते हैं तथा उनकी गुणवत्ता में भी अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और वे लम्बे समय तक ताजे बने रहते हैं।
5. विभिन्न प्रकार के रोगों में भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। शरीर के किसी भाग में दर्द होने पर पिरामिड रखने से दर्द दूर हो जाता है। कब्ज इत्यादि रोगों में पिरामिड का चार्ज किया हुआ गरम पानी पीने से भी रोग में लाभ मिलता है।
6. चेहरे की कान्ति बढ़ाने के लिये भी पिरामिड चिकित्सा का प्रयोग किया जा सकता है। पिरामिड द्वारा चार्ज किये हुये जल से प्रतिदिन आँखों और चेहरे को धोने से आँखों की ज्योति बढ़ती है तथा चेहरे पर चमक आती है।
7. मानसिक एकाग्रता को बढ़ाने में भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। उपासना, ध्यान, प्रार्थना करते समय पिरामिड पहनने से एकाग्रता बढ़ती है।
8. अनिद्रा रोग को दूर करने में भी पिरामिड का प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि रात को सोते समय पलंग के नीचे पिरामिड रखने से नींद बहुत अच्छी आती है।
9. प्रतिदिन पिरामिड को सुबह – शाम टोपी की तरह आधे घंटे तक पहन कर रखने से तनाव, माइग्रेन, डिप्रेशन, बालों का झड़ना, बालों का सफेद होना इत्यादि समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है।
10. पौधों पर पिरामिडयुक्त जल का सिंचन करने से उनकी वृद्धि तीव्र गति से होती है तथा वे रोगमुक्त रहते हैं।
11. ऑफिस इत्यादि में काम करते समय कुर्सी के नीचे पिरामिड रखने से निरन्तर सकारात्मक ऊर्जा मिलती है तथा आलस्य प्रमाद एवं नकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न नहीं होती हैं।
12. अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि पिरामिड – जल से तैयार तुलसी की पत्तियों के सेवन से सर्दी, खाँसी, बुखार इत्यादि रोगों में लाभ मिलता है।
13. वास्तुशास्त्र की दृष्टि से भी पिरामिड़ों का विशेष महत्व है।
14. यदि कब्ज रोग से पीड़ित व्यक्ति प्रातःकाल चार गिलास पानी पीकर अपने पेट पर पिरामिड रखें तो इससे मल निष्कासन में सहायता मिलती है।
15. वर्तमान समय में पिरामिड यंत्र को वास्तुदोष निवारण, गृहशांति मे ंवृद्धि, किसी स्थान की शुद्धि जैसे भिन्न – भिन्न कार्यो में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रहे है। आज बाजार में क्रिस्टल के पिरामिड विभिन्न रंगों में उपलब्ध हैं, नौ ग्रहों के नौ रंगों का पिरामिड सेट गृहशांति के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप जान गये होंगे कि पिरामिड यंत्र दैनिक जीवन में हमारे लिये कितना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न (खण्ड – क)

सत्य / असत्य

1. पिरामिड का शाब्दिक अर्थ अग्निशिखा है। (सत्य/असत्य)
2. पिरामिड चिकित्सा अमेरिका की देन है। (सत्य/असत्य)

3. पिरामिड यंत्र में केवल रात्रि के समय ऊर्जा तरंगे प्रवाहित होती है। (सत्य / असत्य)
4. वास्तुदोष निवारण में पिरामिड यंत्र का उपयोग नहीं किया जा सकता। (सत्य / असत्य)
5. पिरामिड यंत्र पाँच त्रिकोण से मिलकर बनता है। (सत्य / असत्य)

2.3.2 स्वाध्याय चिकित्सा –प्रिय पाठकों, स्वाध्याय शब्द से हम प्रायः सभी परिचित हैं, किन्तु इसके ठीक –ठीक अर्थ को जानना अति आवश्यक है। स्वाध्याय का अर्थ मात्र पुस्तकों का अध्ययन करना नहीं है, वरन् इससे कहीं अधिक बढ़कर है।

तो आइये जानते हैं कि स्वाध्याय शब्द से क्या आशय है और किस प्रकार से इसके द्वारा हम अपने तथा दूसरों के जीवन को सँवार सकते है।

जिज्ञासु विद्यार्थियों, स्वाध्याय चिकित्सा का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

- स्वाध्याय चिकित्सा की अवधारणा।
- स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया।
- स्वाध्याय चिकित्सा की उपयोगिता।

स्वाध्याय चिकित्सा की अवधारणा – प्रिय पाठकों, कुछ लोग स्वाध्याय का अर्थ पुस्तकों का अध्ययन मात्र करना समझते हैं, किन्तु इस प्रकार के अध्ययन को हम स्वाध्याय की संज्ञा नहीं दे सकते। स्वाध्याय की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। कुछ भी पढ़ लेने का नाम स्वाध्याय नहीं है, वरन् स्वाध्याय की सामग्री केवल वही ग्रन्थ, पुस्तक का विचार हो सकता है, जो किसी अध्यात्मवेदता तपस्वी द्वारा सृजित हो। जैसे कि वेद, उपनिषद, गीता अथवा महान तपस्वी एवं योगी स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण इत्यादि महापुरूषों के विचारों को स्वाध्याय की पाठ्य सामग्री बनाया जा सकता है।

प्रायः स्वाध्याय से तात्पर्य **Self Study** से लिया जाता है, किन्तु यह **Self Study** न होकर **Study of Self** है अर्थात् सद्ग्रन्थों के प्रकाश में स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया है। कहा भी गया है कि – **''स्वाध्याय सद्ग्रन्थों के प्रकाश में आत्मानुसंधान की प्रक्रिया है।''**

(अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2)

इस प्रकार स्वाध्याय हमारे विचार तंत्र या सोचने विचारने के ढंग को सकारात्मक बनाने की अत्यन्त वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसके सतत् अभ्यास द्वारा व्यक्ति नकारात्मक दृष्टिकोण के स्थान पर स्वयं के भीतर विधेयात्मक एवं आशावदी दृष्टिकोण का विकास कर सकता है। स्वाध्याय के सन्दर्भ में एक बात जो अत्यधिक महत्तवपूर्ण है, वह यह कि स्वाध्याय की प्रक्रिया अच्छे विचारों के केवल अध्ययन से ही पूरी नहीं हो जाती, वरन् जब तक इन विचारों को व्यावहारिक रूप से आचरण में नहीं लिया जाता, तब तक यह प्रक्रिया अधूरी ही रहती है और इसके अपेक्षित परिणाम नहीं आ पाते है। पाठकों, इस प्रकार आप समझ गये होगें कि स्वाध्याय सकारात्मक विचारों के माध्यम से मन को स्वस्थ करने की प्रक्रिया है।

आपके मन में इस संबध में सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि एक सामान्य अध्ययन एवं स्वाध्याय में क्या मौलिक अन्तर होता है?

तो आइये, अपकी इसी जिज्ञासा के समाधान के लिये अब हम चर्चा करते है, सामान्य अध्ययन एवं स्वाध्याय में अन्तर के बारे में।

अध्ययन एवं स्वाध्याय में अन्तर – विद्यार्थियों, अध्ययन एवं स्वाध्याय में मूलभूत अन्तर यह है कि अध्ययन केवल हमारी बुद्धि का विकास करता है, इसके माध्यम से हमारे भीतर तर्क –विर्तक एवं बौद्धिक विश्लेषण करने की क्षमता का विकास होता है, तथा हमें विभिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है, किन्तु अध्ययन के द्वारा व्यक्ति के अन्दर किसी प्रकार का सकारात्मक परिवर्तन हो, यह अनिवार्य एवं आवश्यक नहीं है, जबकि स्वाध्याय के द्वारा व्यक्ति में में सकारात्मक परिवर्तन अपेक्षित है, अनिवार्य है, अन्यथा स्वाध्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा, यह अधूरा ही रह जायेगा।

स्वाध्याय की प्रक्रिया में व्यक्ति सद्ग्रन्थों के आलोक में आत्ममूल्यांकन करता है, अपनी कमजोरियों एवं गुणों का तटस्थ अवलोकन करता है तथा उसके व्यक्तित्व में जो भी अवांछनीयतायें है, बुरी आदतें, बुरे विचार या व्यावहारिक गड़बड़ियाँ है, उनको सकारात्मक विचारों के व्यावहारिक प्रयोग द्वारा दूर करने का यथासंभव प्रयास करता है।

''अध्ययन केवल बौद्धिक विकास तक सीमित है, जबकि स्वाध्याय अपने बोध को संवारने की प्रक्रिया है।'' (डॉ. प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

पाठकों, **बोध का अर्थ है– ज्ञान** और विशेषज्ञों के अनुसार हमें ज्ञान दो प्रकार से प्राप्त होता है। पहला ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, त्वचा, कर्ण, नासिका जिह्वा) के माध्यम से होने वाला ज्ञान जिसे हम बाह्य बोध भी कह सकते है। दूसरे प्रकार का बोध है– बौद्धिक विश्लेषण एवं आन्तरिक अनुभवों के द्वारा होने वाला ज्ञान। बोध के ये दोनों प्रकार एक दूसरे से अत्यन्त गहरे रूप में जुड़े रहते हैं अर्थात् एक का प्रभाव सुनिश्चित रूप से दूसरे पर पड़ता है। कहने का आशय है कि इन्द्रियों से जो कुछ जानकारी हमें मिलती है अर्थात् हम जो भी देखते है– सुनते है, उसका प्रभाव हमारे विचारों एवं भावनाओं पर सुनिश्चित रूप से पड़ता है। इसी प्रकार जैसे हमारे विचार, भावनायें, आस्थायें होती है, उनका प्रभाव भी हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान पर पड़ता है। इस सन्दर्भ में आपने एक कहावत भी सुनी होगी कि –

''जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि''

अर्थात् जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण या नजरिया जैसा होता है उसे प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु, घटना उसी रूप में दिखाई देती है। ''

इसी कारण एक ही घटना अथवा वस्तु या व्यक्ति अलग – अलग लोगों के लिये अलग – अलग परिणाम उत्पन्न करती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का सोचने का ढंग हर दूसरे व्यक्ति से अलग होता है। जो व्यक्ति नकारात्मक दृष्टिकोण वाला है, उसे प्रत्येक चीज में नकारात्मकता ही दिखायी देती है, इसके विपरीत जो जिन्दगी के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाता है, वह विषम परिस्थितयों में में भी प्रकाश की एक किरण खोज लेता है। इस प्रकार सब कुछ व्यक्ति की अपनी प्रकृति पर निर्भर करता है।

अतः यदि हम अपने जीवन को शांति एवं खुशी के साथ जीना चाहते है तो हमें अपने दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाना ही होगा और स्वाध्याय इसी दृष्टिकोण की चिकित्सा की अत्यन्त वैज्ञानिक एवं सटीक विधि है। यह स्वस्थ मन से स्वस्थ जीवन जीने की विधा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अध्ययन एवं स्वाध्याय में मूलभूत अन्तर होने के कारण अध्ययन को स्वाध्याय कहना न्यायसंगत नहीं होगा।

प्रिय पाठकों, अब अत्यन्त महत्वपूर्ण बात जिस पर विचार करना है, वह यह है कि इस स्वाध्याय की प्रक्रिया को जीवन में कैसे अपनाया जाये? इसके सोपान क्या है?

तो आइये, अब चर्चा करते हैं स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया के बारे में।

स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया – पाठकों, स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया निम्न चार चरणों में पूरी होती है –

1. **प्रथम चरण –** सद्ग्रन्थों या सद्विचारों का चयन।
2. **द्वितीय चरण –** आत्ममूल्यांकन
3. **तृतीय चरण –** अपने दृष्टिकोण को संवारने की नीति तय करना।
4. **चतुर्थ चरण –** निर्धारित नीति का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग।

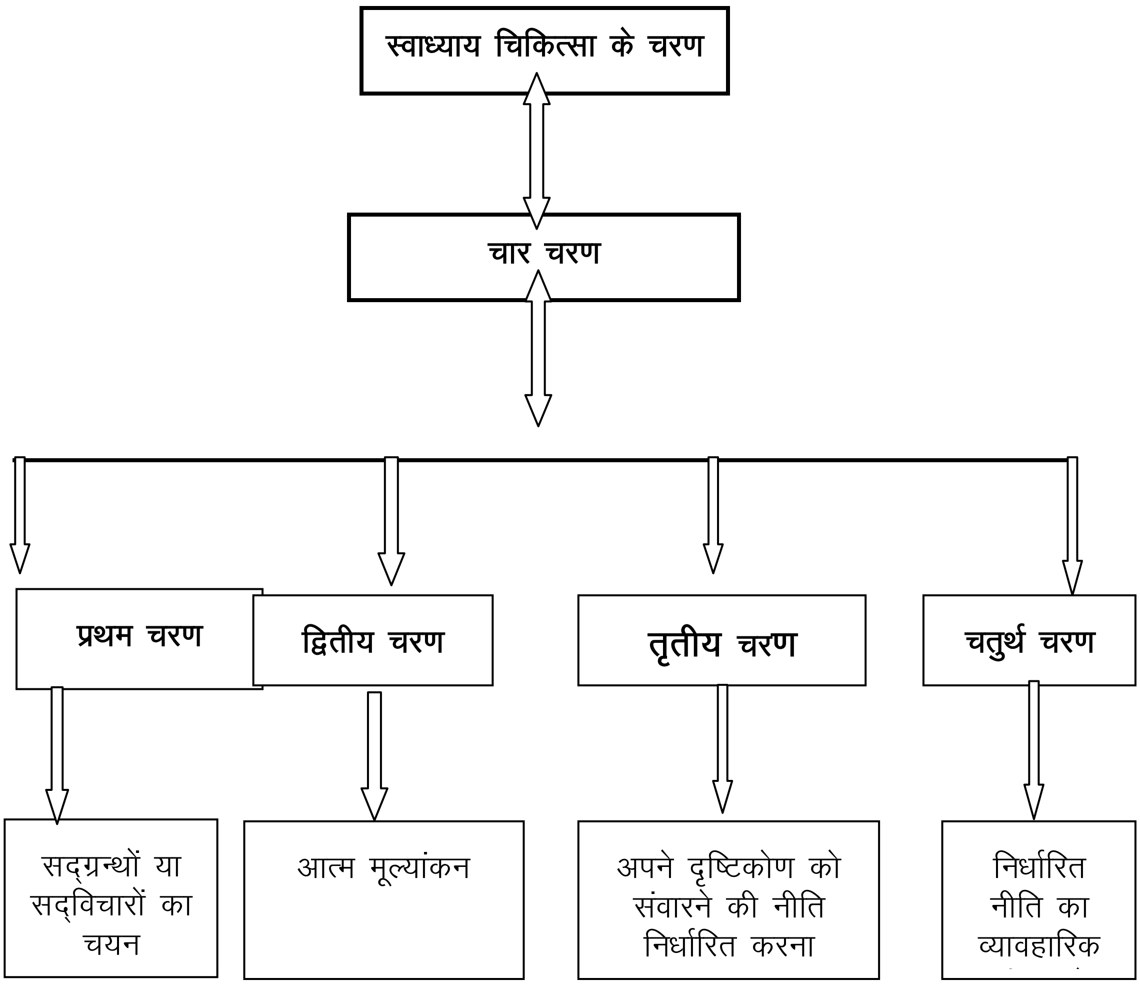

पाठकों, स्वाध्याय की इन विभिन्न अवस्थाओं का विस्तृत विवरण निम्नानुसार है–

1. **प्रथम चरण : सद्ग्रन्थों या सद्विचारों का चयन –** स्वाध्याय चिकित्सा का प्रथम चरण है– स्वाध्याय की सामग्री का चयन करना अर्थात् यह निर्धारित करना कि स्वाध्याय के लिये किन सद्ग्रन्थों या विचारों का चयन किया जाये। इस सन्दर्भ में यह ध्यान देना आवश्यक है कि स्वाध्याय हेतु उन्हीं विचारों का चयन किया जाये जो आध्यात्म को जानने

वाले महामानवों या महापुरूषों के द्वारा दिये गये हो क्योंकि ऐसे लोगों का जीवन ही हमारे लिये आदर्श एवं प्रेरणादायी होता है। इस हेतु हम वेद, उपनिषद, गीता इत्यादि ग्रन्थों का एवं विभिन्न तपस्वियों जैसे कि **महात्मा बुद्ध, आचार्य शस्कर, महावीर स्वामी, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद सरस्वती, श्री माँ** इत्यादि के विचारों का चयन कर सकते हैं।

''स्वाध्याय के पहले क्रम में हम उन ग्रन्थों विचारों का चयन करते हैं, जिन्हें स्व की अनुभूति से सम्पन्न महामानवों ने सृजित किया है। ध्यान रखें कोई भी पुस्तक या विचार स्वाध्याय की सामग्री नहीं बन सकता। इसके लिये जरूरी है कि यह पुस्तक या विचार किसी महान् तपस्वी आध्यात्मवेदत्ता के द्वारा सृजित हो।''

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

2. **द्वितीय चरण : आत्म–मूल्यांकन –** पाठकों, यह स्वाध्याय का अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण है। यही वह अवस्था है जिसमें स्वयं का स्वयं से परिचय होता है। यह आत्मविश्लेषण की अवस्था हैं जिसमें व्यक्ति उन चयनित ग्रन्थों एवं विचारों के परिप्रेक्ष्य में आत्म–मूल्यांकन करता है। आत्म–मूल्यांकन का अर्थ है– अपने गुणों–कमियों का तटस्थ अवलोकन। अपने व्यक्तित्व में जो अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ हैं, दोनों को समान रूप से देखना और बुराइयों को पूरी निष्पक्षता एवं साहस के साथ स्वीकार करना। इसी चरण में व्यक्ति इस बात पर विचार करता है कि हमारा जीवन कैसा है? हम किस ढंग से जी रहे हैं और किस ढंग से हमें जीना चाहिये। इसी स्तर पर व्यक्ति अपने विचार तंत्र की विकृतियों से परिचय पाता है। इसलिये व्यक्ति को पूरी सजगता से अपनी कमियों को पहचानना चाहिये और इस बात के प्रति सावधान रहना चाहिये कि कोई भी विकृति दब न जाये, छिप न जाये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वितीय चरण में विचार तंत्र की विकृतियों का निदान किया जाता है। निदान से आशय है– समस्या को पहचानना और यह जानना कि इसके दुष्प्रभाव कहाँ – कहँ पड़ रहे हैं और भविष्य में कहाँ – कहाँ पड़ सकते हैं?

3. **द्वितीय चरण : अपने दृष्टिकोण को संवारने की नीति निर्धारित करना –** द्वितीय चरण में विकृतियों के निदान के उपरान्त तृतीय चरण में उन्हें दूर करने के उपाय का चयन किया जाता है, उसकी पूरी प्रक्रिया को सुनिश्चित किया जाता है कि व्यावहारिक रूप में इसे किस प्रकार से अपनाया जायेगा। इसकी पूरी योजना इस चरण में बनायी जाती है।

''स्वाध्याय चिकित्सा का तीसरा मुख्य बिन्दु यही है। विचार, भावनाओं, विष्वास, आस्थाओं, मान्यताओं, आग्रहों से संबधित अपने दृष्टिकोण को ठीक करने की नीति तय करना। इसकी पूरी प्रक्रिया को सुनिष्चित करना। हम कहाँ से प्रारम्भ करें और किस रीति से आगे बढ़े। इसकी पूरी विधि – विज्ञान को इस क्रम में बनाना और तैयार करना पड़ता है।''

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

4. **चतुर्थ चरण : निर्धारित नीति का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग –** पाठकों, स्वाध्याय का यह चतुर्थ चरण अत्यन्त चुनौतीपूर्ण होता है, यही वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपनी विकृतियों को दूर करने का व्यावहारिक प्रयास करना होता है अर्थात् अपने विकृत विचारों को दूर करने के लिये समाधान की जिस नीति का निर्धारण किया

गया है, इस चरण में उस नीति के अनुसार आचरण करना होता है। उन सद्विचारों को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से अपनाना होता है। सद्विचारों के अनुरूप जीवन जीकर दिखाना होता है। जिसमें हमारे संस्कारों एवं पुरानी बुरी आदतों के रूप में अनेक बाधायें सामने आती हैं, किन्तु अपने साहस एवं जुझारूपन के द्वारा हम उन बाधाओं को पार कर सकते हैं और एक आदर्श जीवन जी सकते हैं।

प्रिय विद्यार्थियों, जब तक स्वाध्याय की यह योजना व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित नहीं होती है। तब तक वह मात्र अध्ययन ही बना रहेगा। सद्ग्रन्थों में वर्णित आदर्श जीवन का व्यावहारिक प्रयोग ही इस स्वाध्याय चिकित्सा की सार्थकता है, जो इसे उद्देश्य की पूर्णता तक पहुँचाता है।

स्वाध्याय चिकित्सा की उपयोगिता –प्रिय पाठकों, स्वाध्याय की उपयोगिता के विषय में जितना वर्णन किया जाये उतना ही कम है, क्योंकि यह एक ऐसी औषधि है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व के समग्र विकारों से मुक्ति पाकर स्वस्थ जीवन जिया जा सकता है।

प्रमुख रूप से स्वाध्याय चिकित्सा की महत्ता का विचेचन निम्नांकित बिन्दओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(क) नकारात्मक विचारों को दूर करना
(ख) दुर्भावनाओं से मुक्ति
(ग) व्यावहारिक विकृतियों को दूर करना
(घ) समूचे व्यक्तित्व का रूपान्तरण
(ड़) स्वस्थ जीवन की प्राप्ति

इनका विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार है –

(क) नकारात्मक विचारों को दूर करना – पाठकों, जैसा कि अब तक आप समझ चुके होंगे कि स्वाध्याय का संबध हमारे विचार तंत्र से है। यह विचार परिष्कार से जीवन परिष्कार की प्रक्रिया है। स्वाध्याय चिकित्सा का प्रथम परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का चिन्तन सकारात्मक होने लगता है। वह अब घटनाओं को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखता है। स्वाध्याय के द्वारा उसके चारों ओर एक सकारात्मक वैचारिक वातावरण बना रहता है और वह वैचारिक प्रदूषण से मुक्त रहता है।

'' सोच विचार या बोध के तंत्र को निरोग करने की सार्थक प्रक्रिया स्वाध्याय से बढ़कर और कुछ नहीं है।''

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

(ख) दुर्भावनाओं से मुक्ति– पाठकों, जैसा कि हम जानते है कि हमारे विचारों का प्रभाव हमारी भावनाओं पर भी पड़ता है। जैसे विचार हमारे अन्दर आते हैं, उसी के अनुरूप भाव भी उत्पन्न होने लगते हैं। ये दोनों (भाव एवं विचार) एक दूसरे से इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि हम इनमें से किसी भी एक को दूसरे से तोड़कर नहीं देख सकते। विचार हमारी भावनाओं को प्रभावित करते हैं और भावनायें भी विचारों को अपने रंगों में रंगे बिना नहीं रहती। अतः स्वाध्याय से हमारे विचारतंत्र के परिष्कृत होने के कारण भाव भी पवित्र होने लगते हैं, जो हमारे आध्यात्मिक विकास में अत्यन्त सहायक है।

(ग) व्यावहाररिक विकृतियों को दूर करना– स्वाध्याय मन की चिकित्सा के साथ – साथ व्यवहार की चिकित्सा भी करता है क्योंकि विचार हमारे व्यवहार को बहुत गहरे रूप में प्रभावित करते हैं और व्यवहार का प्रभाव भी विचारों पर पड़ता है। जब व्यक्ति सद्‌विचारों को अपने जीवन में, आचरण में उतारने लगता है तो उससे स्वतः उसकी व्यवहारगत विकृतियाँ एवं परेशानियाँ दूर होने लगती है और उसका व्यवहार एक आदर्श के रूप में दूसरों को भी प्रेरणा प्रदान करता है।
''मानसिक आरोग्य की ओर ध्यान दिये बगैर शरीर को स्वस्थ करने की सोचना या व्यावहारिक दोषों को ठीक करना, कुछ वैसा ही है, जैसे – पत्तों को काटकर पेड़ की जड़ों को सींचते रहना। जब तक पेड़ की जड़ों को खाद – पानी मिलता रहेगा, तब तक पत्ते अपने आप ही हरे होते रहेंगे। इसी तरह से जब तक सोच – विचार के तंत्र में विकृति बनी रहेगी, शारीरिक एवं व्यावहारिक परेशानियाँ बनी रहेंगी।''

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

(घ) समूचे व्यक्तित्व का रूपान्तरण– **पा**ठकों, हमारे व्यक्तित्व के तीन आयाम हैं – **संवेग, विचार एवं व्यवहार** और ये तीनों आयाम एक – दूसरे को प्रभावित करते हैं। भावनाओं (संवेग) से हमारे विचार एवं व्यवहार प्रभावित होते हैं तो विचारों का प्रभाव भी हमारे संवेगों एवं व्यवहारों पर पड़ता है। इसी प्रकार हमारे व्यवहार का प्रभाव संवेगों और विचारों पर पड़े बिना नहीं रहता। जिस प्रकार हमारे शरीर के विभिन्न संस्थान हैं, जैसे – **अस्थि तंत्र, पेषीय तंत्र, पाचन तंत्र, तंत्रिका तंत्र** इत्यादि और इन सभी के अपने – अपने विशिष्ट कार्य है, फिर भी इनके कार्यो का प्रभाव परस्पर पड़ता है और एक भी तंत्र के अंगों के कार्यो में बाधा आने पर समूचा शारीरिक संस्थान प्रभावित होता है, उसी प्रकार हमारे व्यक्तित्व का कोई भी आयाम यदि विकृत है तो वह समूचे व्यक्त्तिव को बुरी तरह प्रभावित करता है और यदि एक आयाम सुदृढ़ एवं स्वस्थ है तो समग्र व्यक्तित्व परिष्कृत होने लगता है। अतः स्वाध्याय प्रत्यक्ष रूप से तो हमारे विचारों को प्रभावित करता है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से समग्र व्यक्तित्व (संवेग, विचार, व्यवहार) के रूपान्तरण में ही इसकी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है।

(ड़) स्वस्थ जीवन की प्राप्ति– प्रिय पाठकगणों, स्वाध्याय स्वस्थ जीवन की प्राप्ति की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा है। इसके द्वारा पहले मन की चिकित्सा होती है। उसके बाद जीवन की चिकित्सा/ वैज्ञानिकों के अनुसार रोगी मन समस्त जीवन को रोगी बना देता है। इसलिये यदि जीवन को स्वस्थ बनाना है तो हमें पहले मन को निरोग बनाने का साहसिक कार्य करना होगा, जिसे हम स्वाध्याय चिकित्सा द्वारा सहज रूप से कर सकते है। स्वस्थ जीवन का तात्पर्य है – समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति, जिसमें हमारा शरीर भी स्वस्थ हो, मन भी सकारात्मक दृष्टिकोण वाला हो, आत्मा भी संतुष्ट हो और सामाजिक दृष्टि से भी व्यक्ति का व्यवहार एक आदर्श व्यवहार हो और प्रेरणास्पद आदर्श व्यक्ति के रूप में उसकी छवि बने।
जिज्ञासु पाठकों, इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वाध्याय चिकित्सा का महत्व असाधारण है। इसके द्वारा हम एक स्वस्थ एवं सुखी जीवन व्यतीत कर सकते है।
स्वाध्याय की इसी महत्ता के कारण इसे योग साधना के अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन के रूप में भी स्वीकार किया गया है। महान योग वैज्ञानिक **महर्षि पतंजलि** ने क्रियायोग के दूसरे

अंग (**तप, स्वाध्याय, ईष्वरप्रणिधान)** के रूप में इसका अत्यन्त विस्तृत विवेचन किया है और अष्टांग योग में भी नियम के अन्तर्गत चतुर्थ नियम (**षौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईष्वर प्रणिधान)** के रूप में इसकी महत्ता का वर्णन किया है।

''स्वाध्याय चिकित्सा की उपयोगिता असाधारण है। इसके द्वारा पहले मन स्वस्थ होता है, फिर जीवन।''   (डाँ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

इस प्रकार स्वाध्याय के द्वारा हम अपने समूचे जीवन का रूपान्तरण कर सकते हैं और साथ ही इस चिकित्सा की महत्ता इस कारण भी अत्यधिक बढ़ जाती है कि यह पद्धति अत्यन्त सहज है। इसे कोई भी व्यक्ति अपना सकता है, इसमें किसी प्रकार का कोई आर्थिक खर्च भी नहीं है और न ही इसके कोई दुष्प्रभाव है। वास्तव में यह स्वाध्याय चिकित्सा अपने आप में असाधारण है।

अभ्यासार्थ प्रश्न (खण्ड – ख)

सत्य / असत्य

1. स्वाध्याय की प्रक्रिया के प्रथम चरण में आत्म – मूल्यांकन किया जाता है। (सत्य/असत्य)
2. स्वाध्याय केवल बौद्धिक विकास तक सीमित है। (सत्य/असत्य)
3. स्वाध्याय के द्वारा समूचे व्यक्तित्व का रूपान्तरण संभव है।(सत्य/असत्य)
4. स्वाध्याय का अर्थ है – पुस्तकों का अध्ययन करना। (सत्य/असत्य)
5. स्वाध्याय अपने बोध को संवारने की प्रक्रिया है। (सत्य/असत्य)

प्रिय विद्यार्थियों, अब तक हमने पिरामिड चिकित्सा और स्वाध्याय चिकित्सा का अध्ययन किया है। अब हम चर्चा करते हैं, अगली चिकित्सा पद्धति **सूर्य किरण चिकित्सा** के बारे में।

2.3.3 सूर्य किरण चिकित्सा –

प्रिय विद्यार्थियों, हम सभी जानते हैं कि हमारे जीवन में सूर्य का अत्यन्त महत्व है। इसकी महत्ता का विवेचन करते हुये वेदों में सूर्य को चराचर जगत् की आत्मा कहा गया है–

''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषष्च'' (ऋग्वेद1/115/1, यजुर्वेद 7/42,अथर्ववेद 13/2/35)

इस प्रकार ऋग्वेद, यजर्वेद एवं अथर्ववेद तीनों में सूर्य की महिमा का गुणगान किया गया है।

प्रश्नोपनिषद के अनुसार– ''प्राण प्रजानाम्''

अर्थात् ''सूर्य मनुष्य का प्राण है।''

आरोग्यता की दृष्टि से सूर्य की महत्ता का विवेचन **मत्स्य पुराण** में भी मिलता है –

''आरोग्यं भास्करादिच्छेत्''

अर्थात् ''यदि निरोगता की इच्छा है तो सूर्य की शरण में जाओ।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण के साथ – साथ समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से भी सूर्य की महिमा का गुणगान प्राचीनकाल से ही किया जा रहा है। इसीलिये भारतीय ऋषि मुनियों द्वारा सूर्य नमस्कार, सूर्योपासना इत्यादि की विधि प्रचलित की गई।

पाठकों, क्या आप जानते हैं कि उदित होते हुये सूर्य का स्वास्थ्य की दृष्टि से कितना महत्व है। इस सन्दर्भ में **अथर्ववेद** में कहा गया है कि –

" उद्यनसूर्यो नुदतां मृत्युपाषान्"। (अथर्ववेद 17/1/30)

अर्थात् "उदित होता हुआ सूर्य मृत्यु के सभी कारणों अर्थात् सभी रोगों को नष्ट करता है।' जिज्ञासु पाठकों, क्या आप जानते हैं कि उगते हुये सूर्य से कौन से रंग की किरणें निकलती हैं? उदीयमान सूर्य से हल्के **लाल रंग की किरणें** (Infrared) निकलती हैं। इन अवरक्त या लाल किरणों में जीवनीशक्ति होती है, जो रोगों को नष्ट करती है। इसी कारण उगते हुये सूर्य के दर्शन करना अत्यन्त लाभदायक माना गया है। इसी का विवेचन करते हुये **ऋग्वेद** में कहा गया है कि –

"उगता हुआ सूर्य ह्रदय के सभी रोगों को, पीलिया और रक्ताल्पता को दूर करता है।"

इसी बात की पुष्टि **अथर्ववेद** में भी की गयी है–

"सूर्य की अवरक्त किरणें ह्रदय की बीमारियों को तथा खून की कमी को दूर करती है।" इसीलिये सूर्योदय के समय पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासना एवं हवन करने की विधि का प्रचलन है क्योंकि ऐसा करने पर उगते सूर्य की हल्की लाल किरणें सीधे वक्षस्थल पर गिरती है, जिसके कारण व्यक्ति हमेशा रोग मुक्त रहता है।

सूर्य चिकित्सा के लिये रोगी को उदित होते हुये सूर्य के सामने खड़े होकर या बैठकर सूर्य की किरणों को सीधे शरीर पर पड़ने देना चाहिये। ऋतु के अनुसार शरीर को खुला रखा जा सकता है अथवा हल्के कपड़े पहने जा सकते हैं, जिससे की सम्पूर्ण शरीर पर किरणों का प्रभाव पड़ सके। कम से कम 15 मिनट तक धूप स्नान लेना चाहिये, किन्तु रोग या रोगी की आवश्यकतानुसार यह अवधि आधे घंटे तक बढ़ायी जा सकती हे। इस सन्दर्भ में यह सावधानी रखनी चाहिये कि उगत हुये सूर्य की किरणों का ही सेवन करना चाहिये, क्योंकि इसके बाद सूर्य की किरणें अत्यधिक तेज हो जाती हैं। अतः अनका विशेष लाभ नहीं होता है। अतः सूर्योदय के समय की किरणों का ही विशिष्ट महत्व माना गया है, जो अन्य किसी समय में संभव नहीं है। ऋग्वेद में कहा गया है कि –

" सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः।" (ऋग्वेद 10/36/14)

अर्थात् – "सूर्य मनुष्य को निरोगता, दीर्घायुस्य और समग्र सुख प्रदान करते हैं।"

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि सूर्य का हमारे जीवन में कितना महत्व है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक प्रत्येक दृष्टिकोण से सूर्य की महिमा अद्वितीय है।

सूर्य किरणों द्वारा चिकित्सा –

सूर्य चिकित्सा को **सूर्य किरण चिकित्सा** तथा **रंग चिकित्सा** के नाम से भी जाना जाता है। इस चिकित्सा पद्धति में सूर्य की किरणों को सीधे शरीर पर लेकर रोग निवारण किया जाता है अथवा सूर्य की किरणों से प्रभावित जल, ग्लिसरीन, तेल, घी अथवा चीनी का विभिन्न रोगों के अनुसार प्रयोग किया जाता है।

सूर्य की सात रंग की किरणें –

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप जानते हैं कि सूर्य की किरणें सात रंग की है। वैदिक साहित्य जैसे कि ऋग्वेद, अथर्ववेद में सूर्य की सात किरणों का उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्च आदि शब्दों से किया गया है।

पाठकों, क्या आप जानते हैं कि सूर्य की ये सप्तकिरणें वैज्ञानिक दृष्टि से कितनी महत्वपूर्ण है। प्रत्येक किरण की गति एवं प्रकृति भिन्न – होने के कारण इसके प्रभाव भी अलग – अलग है। सात रंगों के मिलने से सफेद रंग बनता है। संसार के प्रत्येक पदार्थ को रूप और रंग इन सात रंगों की किरणों से ही प्राप्त होता है। इन सात किरणों को तीन श्रेणियों

में विभाजित किया गया है– उच्च, मध्यम और निम्न अर्थात् गहरा, मध्यम और हल्का। इस प्रकार 7x3=21 प्रकार की किरणें बनती है। इन किरणों का उल्लेख करते हुये **अथर्ववेद** में कहा गया है –

''ये त्रिषप्ताः परियन्ति विष्वा रूपाणिविभ्रतः।।'' (अथर्ववेद 1/1/1)

अर्थात् '' ये 21 प्रकार की किरणें संसार में सर्वत्र फैली हुयी हैं और ये ही सारे रूप रंगों को धारण करती हैं। ''

सप्त किरणों के नाम और प्रभाव –

सूर्य की सात किरणें अपनी प्रकृति के अनुसार अलग – अलग प्रभाव डालती है। इन किरणों की तरंग–दैर्ध्य (wave length) और आवृत्ति (Frequency) अलग – अलग होती है। इन सात किरणों को हिन्दी में **बै नी आ ह पी ना ला** नाम दिया गया है तथा अंग्रेजी में VIBGYOR कहा जाता है।

पाठकों निम्न सारणी से आप इनका अर्थ भली – भॉति समझ सकते है–

नाम	स्केत	नाम	संकेत	प्रभाव
Violet	V	बैंगनी	बै	शीतल, लाल कणों का वर्धक, क्षय रोग का नाशक
Indigo	I	नीला	नी	शीतल, पित्तज रोगों का नाषक, पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	टा	शीतल, पित्तज रोगों का नाषक, ज्वरनाषक
Green	G	हरा	ळ	समशीतोष्ण, वातक रोगों का नाशक, रक्तशोधक
Yellow	Y	पीला	पि	ऊष्ण कफज रोगों का नाशक, ह्रदय एवं उदर रोग नाशक
Orange	O	नारंगी	ना	ऊष्ण, कफज रोगों का नाशक, मानसिक षक्तिवर्धक
Red	R	लाल	ला	अतिऊष्ण कफज रोगों का नाशक, उत्तेजक, केवल मालिश के लिये।

प्रिय पाठकों, यहॉ आपको एक बात जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि उपरोक्त सारणी में गति और प्रकृति के आधार पर नीचे से ऊपर वाली किरणें क्रमशः अधिक प्रभावशाली है। जैसे – लाल से अधिक नारंगी, नारंगी से अधिक पीली, पीली से अधिक हरी, हरी से अधिक आसमानी, आसमानी से अधिक नीली और सबसे अधिक प्रभावशाली किरण बैंगनी है। प्रिय विद्यार्थियों, क्या आप जानते हैं कि बैंगनी से अधिक शक्तिशाली किरणों को **पराबैंगनी किरणें** (Ultraviolet) और लाल रंग की किरणों से कम प्रभावशाली किरणों को अवरक्त किरणें कहते हैं।

वस्तुतः यदि देखा जाये तो मूल रूप से रंग **तीन** ही प्रकार के हैं– **लाल, पीला और नीला**। इन तीन रंगों के मिश्रण से ही अन्य रंग बनते है। जैसे– लाल और नीले के मिलने से

बैंगनी, नीले और सफेद रंग के मिलने से आसमानी, नीले और पीले से हरा और लाल और पीले रंग के मिलने से नारंगी रंग बनता है।
विद्यार्थियों, सूर्य की सात रंग की किरणों को निम्न तीन समूहों या परिवारों में विभक्त किया गया है –

1. पीला, नारंगी, लाल
2. हरा तथा
3. बैंगनी, नीला और आसमानी

औषधि निर्माण विधि – पाठकों सूर्य किरण चिकित्सा से औषधि निर्माण के लिये उसी रंग की काँच की साफ बोतल का प्रयोग किया जाता है। यदि विभिन्न रंगों की बोतल उपलब्ध न हो तो उस रंग का पतला कागज सादी शीशी पर पूरा चिपका देते हैं। औषधि निर्माण के लिये सात शीशी लेने के स्थान पर प्रत्येक समूह या परिवार से एक – एक रंग भी लिया जा सकता है। जैसे – पीला, नारंगी और लाल परिवार से एक रंग की शीशी, एक शीशी हरे रंग की तथा बैगनी, नीला और आसमानी परिवार से एक रंग की शीशी।
इस प्रकार तीन रंग की बोतलों से विभिन्न रोगों के लिये औषधि का निर्माण किया जा सकता है। ये तीन रंग है– 1. नारंगी 2. हरा 3. नीला।
पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि ये तीनों रंग वात–पित्त–कफ के हिसाब से अलग – अलग रोगों के लिये हैं। **इनमें से नारंगी रंग कफ जन्य रोगों के लिये, हरा रंग वातजन्य रोगों के लिये और नीला रंग पित्तज रोगों में लाभदायक है।** विद्यार्थियों इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि सूर्य किरण चिकित्सा द्वारा त्रिदोषज रोगों की चिकित्सा आसानी से की जा सकती है।
अब आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि विभिन्न रंग की बोतलों द्वारा औषधीय जल का निर्माण कैसे किया जाता है ?
सर्वप्रथम बोतलों को अच्छी साफ करके इनमें शुद्ध जल भरा जाता है। बोतलों को पूरा न भरकर इन्हें कम से कम तीन अंगुल खाली रखा जाता है। इसके बाद इन्हें ढक्कन लगाकर बन्द कर देते है। तत्पश्चात् इन्हें 6–8 घंटे तक धूप में रखने पर औषधीय जल तैयार हो जाता हे। बोतलों को धूप में रखने पर यह सावधानी रखनी चाहिये कि एक बोतल की छाया दूसरे रंग की बोतल पर न पड़े तथा रात्रि में बोतल को अन्दर रखना चाहिये। इस प्रकार तैयार जल को एक दिन में 3–4 बार पिलाया जाता है। एक बार तैयार किये गये जल को चार –पाँच दिन तक उपयोग में लाया जा सकता है। 4–5 दिन बाद पुनः दवा तैयार करनी चाहिये। इस विभिन्न रंगों के औषधीय जल को लेने में भी सावधानी बरतनी चाहिये। साधारणतया नारंगी रंग का जल भोजन के बाद 15–30 मिनट के भीतर लेना चाहिये।
हरे और नीले रंग का जल खाली पेट अथवा भोजन से एक घंटे पहले लेना चाहिये।
दवा की मात्रा – प्रिय पाठकों, सूर्य किरण चिकित्सा से तैयार दवा को दो दिन में तीन से चार बार लेना चाहिये। विशेष परिस्थिति जैसे कि तीव्र ज्वर आदि में आवश्यकतानुसार एक – एक घंटे पर भी दवा ली जा सकती है। दवा का प्रयोग आयु के अनुसार चाय वाली चम्मच से एक बार में एक से चार चम्मच तक किया जा सकता है।

सूर्य किरण चिकित्सा के विभिन्न प्रयोग अथवा लाभ

अथवा

(विभिन्न रंगों की बोतलों के पानी का उपयोग)

पाठकों, यह तो बिल्कुल स्पष्ट हो ही चुका है कि रंग चिकित्सा कितनी प्रभावशाली है। अब हम चर्चा करते हैं कि इन भिन्न – भिन्न रंग की बोतलों का प्रयोग किन – किन रोगों में और किस प्रकार किया जाता है।

- **लाल रंग (Red Color)-** प्रिय पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि लाल रंग की बोतल का पानी अत्यन्त ऊष्ण होता है। इसलिये इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानी के साथ करना चाहिये। इस रंग के पानी को पीना वर्जित है, क्योंकि इस पानी के सेवन से उल्टी या खूनी दस्त भी हो सकते हैं। अतः इस रंग के पानी का उपयोग मालिश करने अथवा शरीर के बाहरी भाग में लगाने के लिये किया जाता है।

  लाभ – लाल रंग का पानी सभी प्रकार के कफ रोगों एवं वात रोगों में लाभकारी है। यह रक्त एवं स्नायु को उत्तेजित करने का कार्य करता है।

- **नारंगी रंग (Orange Color)-** बुद्धि और साहस को विकसित करने में नारंगी रंग का पानी विशिष्ट रूप से लाभकारी है। यह मांसपेशियों को स्वस्थ रखने के साथ – साथ रक्त संचार की वृद्धि करता है। यह इच्छा शक्ति और मानसिक शक्ति में भी वृद्धि करता है।

  लाभ – नारंगी रंग का पानी कफजन्य रागों जैसे कि खाँसी इत्यादि तथा उसके साथ – साथ अन्य रोगों जैसे कि बुखार, निमोनिया, क्षयरोग, पेट में गैस बनना, हृदय रोग, गठिया, लकवा, अजीर्ण, एनीमिया, रक्त में लाल रक्त कणिकाओं की कमी इत्यादि में अत्यन्त लाभदायक है। स्तनों में दूध की वृद्धि करने में भी यह रंग अत्यन्त लाभकारी है।

- **पीला रंग (Yellow Color)-** यह रंग शारीरिक स्वास्थ्य के साथ – साथ मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी अत्यन्त लाभकारी है। यह हल्का रेचक होने के कारण पाचन संस्थान के लिये उत्तम है। ऊष्ण प्रकृति का होने के कारण पेचिश इत्यादि रोगों में इसे नहीं लेना चाहिये।

  लाभ – यह पेट दर्द, कब्ज, कृमिरोग, मेदरोग, पेट फूलना, हृदय रोग, यकृत एवं फेफड़ों के रोगों में अत्यन्त लाभप्रद है। इस रंग के पानी के सेवन से युवा पुरूषों को तत्काल लाभ होता है। इस रंग के पानी का प्रयोग भी थोड़ी मात्रा में ही करना चाहिये।

- **हरा रंग (Green Color)-** इस रंग की प्रकृति समशीतोष्ण है। यह शारीरिक एवं मानसिक प्रसन्नता प्रदान करता हैं यह शरीर की माँसपेशियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और उन्हें शक्ति प्रदान करता है। हरा रंग रक्त शोधक होने के साथ – साथ तंत्रिका तंत्र को मजबूती प्रदान करता है।

  लाभ – हरे रंग का पानी सिरदर्द, रक्तचाप, कैंसर, बवासीर, मधुमेह, सूखी खाँसी, जुकाम सभी प्रकार के चर्म रोग, जिगर एवं किडनी में सूजन, टाइफाइड, मलेरिया आदि बुखार, फुन्सी, दाद इत्यादि में अत्यन्त लाभप्रद है।

- **आसमानी रंग (Blue Color)-** इस रंग की प्रकृति शीतल है। अतः पितजन्य रोगों को दूर करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। यह आमाशयिक उत्तेजना एवं प्यास का भी शमन करता है। आसमानी रंग का पानी एन्टीसेप्टिक का काम करता है। इसके साथ ही यह अच्छा पोषक टॉनिक होता है।

लाभ – खाँसी, दस्त, अस्थमा, सिरदर्द, मूत्ररोग, पथरी, चर्मरोग, नासूर, फोड़े–फुन्सी, सभी प्रकार के ज्वर तथा रक्त प्रवाह को रोकने में इस रंग के पानी का प्रयोग किया जाता है। कफजन्य रोगों में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है।

- **नीला, गहरा नीला रंग (Indigo Color)-** इस रंग की प्रकृति भी शीतल है। यह शान्ति और जीवनीशक्ति प्रदान करता है। इस रंग के पानी कि क्रिया शरीर पर अतिशीघ्र होती है।

  लाभ – यह पित्तजन्य रोगों में विशिष्ट लाभदायक है। आमाशय, अण्डकोश वृद्धि, श्वेत प्रदर तथा योनि से संबधित रोगों में विशेष उपयोगी है।

- **बैंगनी रंग (Violet Color)-** इस रंग की पृकृति भी नीले रंग के समान शीतल है।

  लाभ – रक्त कणों की वृद्धि करने में, खून की कमी को दूर करने में, अनिद्रा में एवं क्षय रोग में विशेष उपयोगी है।

  उपरोक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट है कि समग्र स्वास्थ्य के लिये सूर्य किरण चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। अतः इस जगत् की आत्मा होने के कारण आरोग्यता हेतु भगवान् सविता की शरण में जाना अत्यन्त श्रेष्ठ है।

अभ्यास प्रश्न (खण्ड – ग)

सत्य / असत्य

1 लाल रंग की बोतल के पानी को पीना वर्जित है। (सत्य/असत्य)
2 हरे रंग की प्रकृति समशीतोष्ण है। (सत्य/असत्य)
3 कफज रोगों में आसमानी रंग का प्रयोग किया जाता है।(सत्य/असत्य)
4 पाचन संस्थान के रागों के लिये पीले रंग की बोतल का पानी उत्तम है। (सत्य/असत्य)
5 नारंगी रंग इच्छा शक्ति में वृद्धि करता है। (सत्य/असत्य)

सूर्य किरण चिकित्सा की सीमायें –

प्रिय पाठकों, प्रायः प्रत्येक चिकित्सा पद्धति की कुछ सीमायें होती हैं, जिनकों ध्यान में रखना अतिआवश्यक है। सूर्य चिकित्सा का प्रयोग करते समय निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिये–

1. लाल रंग की बोतल के पानी को पीना नहीं चाहिये। रोग निवारण के लिये इसका प्रयोग शरीर के बाहरी भाग में करना चाहिये।
2. कफज रोगों में आसमानी रंग का प्रयोग करना चाहिये।
3. पीले रंग की बोतल के पानी का प्रयोग पेचिश रोग में नहीं करना चाहिये।
4. पीले रंग की बोतल के पानी का प्रयोग थोड़ी मात्रा में ही करना चाहिये।

5. सूर्य किरणों से औषधीय जल तैयार करने के लिये बोतलों को अच्छी तरह साफ करना चाहिये।
6. बोतलों को धूप में इस प्रकार रखना चाहिये, जिससे कि एक बोतल की छाया दूसरे रंग की बोतल पर ना पड़े।
7. बोतलों को पानी से पूरा न भरकर कम से कम तीन अंगुल खाली रखना चाहिये।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यदि कुछ सावधानियाँ रखी जाये तो यह चिकित्सा पद्धति अत्यन्त प्रभावशाली है।

प्रिय पाठकों, सूर्य चिकित्सा के बाद अब हम अध्ययन करेंगे अत्यन्त प्रभावशाली स्वाध्याय चिकित्सा के बारे में।

2.4 सारांश

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवेवन से स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और इसकी व्यापकता समय के साथ बढ़ती ही जा रही है। प्रस्तुत ईकाई में केवल कुछ चिकित्सा पद्धतियों का विवेचन किया गया है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी असंख्य पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं। जैसे – चुम्बक चिकित्सा, संगीत चिकित्सा, हास्य चिकित्सा, मंत्र चिकित्सा, यज्ञ चिकित्सा, अभ्यंग चिकित्सा, इत्यादि। पाठकों, एक बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति की चाहे जो भी उपचार विधि अपनायी जाये, यदि सम्पूर्ण श्रद्धा, अटूट विश्वास एवं सावधानीपूर्वक इनका प्रयोग किया जाता है तो इनसे ऐसे आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न होते हैं, जिनकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते और हमारी समूची जीवनशैली ही बदल जाती है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली –

पूर्वाभिमुख – पूर्व दिशा की ओर मुँह करना।

वक्षस्थल – छाती

विधेयात्मक – सकारात्मक

विकृति – विकार, रोग

इन्द्रियजन्य – इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न होने वाला ।

आध्यात्मवेदता – अध्यात्म को जानने वाला।

सोपान – चरण या सीढ़ी।

अदृष्य – जो दिखाई न दे।

समग्र – सम्पूर्ण।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(खण्ड –क)

1. सत्य 2 असत्य 3 असत्य 4 असत्य 5 असत्य

(खण्ड –ख)

1. असत्य 2 असत्य 3 सत्य 4 असत्य 5 सत्य

(खण्ड –ग)

1. सत्य 2 सत्य 3 असत्य 4 सत्य 5 सत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।

2 आध्यात्मिक चिकित्सा : एक समग्र उपचार पद्धति– डॉ0 प्रणव पण्ड्या, शांतिकुन्ज हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री –

1 वैकल्पिक चिकित्सा – डॉ0 आर0एस0 विवेक। डायमंड बुक्स नई दिल्ली।

2 वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ– राजकुमार प्रुथी। प्रभात प्रकाषन, नई **दिल्ली।**

2.9 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न – 1 – पिरामिड चिकित्सा से आप क्या समझते हैं? व्यावहारिक जीवन में इसका उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है।

प्रश्न – 2– स्वाध्याय चिकित्सा को परिभाषित करते हुये स्वाध्याय चिकित्सा की वर्तमान में उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न – 3– सूर्य किरण चिकित्सा का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई – 3 पूरक चिकित्सा के लाभ एवं सीमायें

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 पूरक चिकित्सा पद्धति के लाभ

3.4 पूरक चिकित्सा पद्धति की सीमायें

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की ईकाई में आपने विभिन्न प्रकार की पूरक चिकित्सा पद्धतियों के बारे में अध्ययन किया है। जैसे **सूर्य चिकित्सा, स्वाध्याय चिकित्सा, पिरामिड चिकित्सा इत्यादि।** पूरक चिकित्सा के विवेचन के इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है – ''**पूरक चिकत्सा पद्धति के लाभ एवं सीमाये।**''

पाठकों, इतना तो आप भली – भाँति समझ ही गये हैं कि **पूरक चिकित्सा पद्धति** का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और वर्तमान समय में इस पद्धति की आवश्यकता सभी महसूस कर रहे हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति जहाँ एक ओर रोगों को दूर करने में असफल साबित हो रही हैं, वहीं दूसरी ओर इसके दुष्प्रभावों के रूप में अनेकानेक ऐसे रोग उत्पन्न हो रहें है, जिनके नाम भी पता नहीं हैं। परिणामस्वरूप स्वास्थ्य का स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा है। आज इतनी अधिक वैज्ञानिक उन्नति होने के बावजूद व्यक्ति पहले से अधिक हैरान परेशान और दुःखी है। निःसन्देह आधुनिक समय में पहले की अपेक्षा भौतिक सुख – सुविधाओं में आश्चर्यजनक वृद्धि हुयी है, तकनीकी विकास हुआ है, किन्तु इसका परिणाम क्या हुआ? इस भौतिक प्रगति से इन्सान को क्या लाभ मिला? भौतिक विकास के सथ – साथ विकसित हुयी हैं, **नयी – नयी बिमारियाँ, रोगों के नये – नये कारण, दुःखी और अषांत जीवन।** इसका मूल कारण यह है कि मनुष्य ने यंत्रों की भाँति स्वयं को भी **यंत्रवत** बनाकर प्रकृति से स्वयं को दूर कर दिया है। जैसे ही उसने प्रकृति से अपना सम्पर्क तोड़ा, प्राकृतिक जीवनशैली की जगह यांत्रिक भौतिक जीवनशैली को प्रश्रय दिया, वैसे ही उसक सुख – चैन छिन गया, परेशानियाँ बढ़ने लगी। परिणामस्वरूप जीवन अत्यन्त दुःखी एवं दयनीय हो गया।

अतः यदि हम भौतिक प्रगति के साथ – साथ **आत्मिक शांति** भी प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें इन दोनों में सामंजस्य बैठाना होगा, पकृति के समीप जाना होगा अर्थात् सुव्यवस्थित अनुशासित प्राकृतिक जीवनशैली को अपनाना होगा। कहा जाता है कि किसी भी समस्या के समाधान भी उसके मूल कारण में नीहित होते हैं। यदि समस्या के मौलिक कारण को ठीक प्रकार से समझ लिया जाये तो उसका निराकरण करना बेहद आसान हो जाता है। अतः जब हम यह बेहतर तरीके से समझ चुके हैं कि हमारी आज की जितनी भी समस्यायें हैं, वे सभी प्रधान रूप से हमारी जीवनशैली से संबधित है। कहने का आशय यह है कि जीवनशैली के असंयमित एवं अव्यवस्थित होने के कारण ही आज इतनी अधिक समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। चाहे इनका स्वरूप **शारीरिक हो, मानसिक हो अथवा भावनात्मक या सामाजिक।** जब तक हमारे रहन – सहन, आहार – विहार में सकारात्मक परिवर्तन नहीं होगे, तब तक स्थायी रूप से इन समस्याओं का दूर करने की कल्पना एक दिवास्वप्न बन कर रह जायेगी। यही कारण है कि आज पूरक चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन अत्यधिक बढ़ गया है। आज विश्व का प्रायः कोई भी देश इनसे अछूता नहीं है, क्योंकि अब सभी लोग इस बात को महसूस करने लगे हैं कि **सुखी, स्वस्थ एवं समृद्ध जीवन** के सूत्र संयमित जीवनशैली में ही नीहित है, जिसके लिये हमें माँ प्रकृति की शरण में जाना होगा और सभी प्रकार की पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ हमें प्राकृतिक, सुव्यवस्थित, अनुशासित जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं।

तो पाठकों, अब हम विस्तार से अध्ययन करते हैं – पूरक चिकित्सा पद्धति के लाभ एवं सीमाओं के विषय में।

3.2 उद्देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

1 पूरक चिकित्सा पद्धति के लाभ एवं उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।
2 पूरक चिकित्सा पद्धति की सीमाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 पूरक चिकित्सा पद्धति के लाभ –

प्रिय विद्यार्थियों, हम सभी जानते हैं कि वर्तमान समय में पूरक चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन अत्यधिक बढ़ा है। प्रत्येक आयु और वर्ग का व्यक्ति पूरे विश्वास के साथ इन पद्धतियों को अपना रहा है। आज विश्व का ऐसा कोई देश नहीं है, जो इनके प्रभाव से अछूता हो। अतः इनका बढ़ता प्रचलन स्वतः इनकी आवश्यकता एवं उपयोगिता को सिद्ध करता है।

प्रिय विद्यार्थियों, तो आइये, जानें कि इस चिकित्सा पद्धति के ऐसे क्या – क्या लाभ है , जिनके कारण इनको अपनाने की आवश्यकता सभी को महसूस हो रही है।

पूरक चिकित्सा पद्धति की उपयोगिता एवं आवश्यता का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

- पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति
- मितव्ययिता
- दुष्प्रभाव नहीं

- कार्यक्षमता में वृद्धि
- सहज – सुलभ पद्धति
- रोगों का समूल नाश
- जीवनशैली में सुधार
- सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों का संरक्षण

पाठकों, इन सभी का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1. **पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति –** पाठको, वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति शरीर के साथ – साथ मन और आत्मा को भी स्वस्थ रखना चाहता है क्योंकि बहुत कुछ हद तक अब यह उसकी समझ में और अनुभव में आ चुका है कि वह केवल शरीर तक ही सीमित नहीं है। शरीर के अतिरिक्त भी कुछ है, वरन् शरीर से अधिक और वही उसका मूल स्वरूप है।

अतः अब वह पूरक चिकित्सा पद्धतियों को अपनाने की आवश्यकता अधिक महसूस करने लगा है, क्योंकि यह चिकित्सा पद्धति उसे शरीर के तल से ऊपर उठाकर मन एवं आत्मा को भी स्वस्थ रखने के लिये प्रेरित करती है और उसी में पूर्ण स्वास्थ्य के सूत्र निहित है, जबकि आधुनिक चिकित्सा पद्धति प्राणी को केवल शरीर मानकर शरीर का ही उपचार करती है और उसे शरीर के तल पर ही सीमित कर देती है। अतः आज एक ऐसी चिकित्सा पद्धति की आवश्यकता सभी के द्वारा महसूस की जा रही है, जो व्यक्तित्व का समग्र विकास कर सके और वह पद्धति हमारी पारम्परिक चिकितसा पद्धति अर्थात् पूरक चिकित्सा पद्धति ही हो सकती है।

2. **मितव्ययिता –** इस चिकित्सा पद्धति का दूसरा मुख्य गुण यह है कि इसमें आधुनिक चिकित्सा पद्धति की तुलना में कम खर्चा आता है। हम सभी जानते हैं कि आज आधुनिक चिकित्सा पद्धति कितनी महंगी हो गई है। उपचार के बहुत सारे आधुनिक तरीके ऐसे है, जिनको केवल धनी वर्ग ही अपना सकता है। ऐसे में गरीब वर्ग बेचारा क्या करें? रोगग्रस्त होने पर भी धन का अभाव होने के कारण रोग को झेलना पड़ता है, जबकि पूरक चिकित्सा की अनेक विधियाँ ऐसी है, जिनको गरीब वर्ग भी आसानी से अपना सकता है और स्वास्थ्य लाभ कर सकता है।
3. **दुष्प्रभाव नहीं –** पाठकों, हम सभी जानते हैं कि एलोपैथी या आधुनिक चिकित्सा पद्धति जहाँ एक ओर रोग के लक्षणों को नियंत्रित करके कुछ समय के लिये शीघ्रता से राहत तो प्रदान करती है, किन्तु इसके साथ – साथ इनका दुष्प्रभाव भी अत्यधिक पड़ता है, जो भविष्य में अनेक नये रोगों को जन्म देता है। इस प्रकार आधुनिक चिकित्सा पद्धति एक तरफ एक रोग को नियंत्रित करती है तो दूसरी तरफ नये रोग को आमंत्रित भी करती है, जबकि पूरक चिकित्सा पद्धति में दुष्प्रभावों की संभावना नगण्य है, लेकिन इस सन्दर्भ में यह सावधानी रखनी चाहिये कि कभी – कभी होम्योपैथिक दवाइयों को अन्य दवाइयों के साथ लिये जाने पर वे अपना दुष्प्रभाव डालती है। इसलिये किसी भी प्रकार की दवाइयों का सेवन चिकित्सक से पूछकर ही करना चाहिये। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धतियों के प्रायः

कोई दुष्प्रभाव नहीं हैं, फिर भी उपचार की प्रत्येक पद्धति की अपनी कुछ सीमायें हैं, जिनका चिकित्सा के दौरान ध्यान रखना अत्यावश्यक है।

4. **कार्यक्षमता में वृद्धि –** प्रिय पाठकों, पूरक चिकित्सा पद्धतियों के विषय में किये गये अनेक शोध अध्ययनों से यह परिणाम निकलकर सामने आये हैं कि इन चिकित्सा पद्धतियों से रोग दूर होने के साथ – साथ लोगों की कार्यकुशलता में भी वृद्धि होती है। इन चिकित्सा पद्धतियों को अपनाने पर व्यक्ति अपने भीतर पहले से भी अधिक ऊर्जा का अनुभव करता है और अधिक उत्साह और उमंग के साथ अपने दिनभर के कार्यो को सम्पन्न करता है तथा कम तनावग्रस्त रहता है। दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन के कारण मानसिक रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।
5. **सहज – सुलभ पद्धति–** पूरक चिकित्सा पद्धति सहज– सुलभ है। कृछ उपचार विधियों को छोड़कर बहुत सारी विधियों का प्रयोग हम घर पर भी कर सकते हैं। इसके साथ ही इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होने के कारण प्रत्येक आयु एवं वर्ग के व्यक्ति के लिये विभिन्न रोगों के अनुसार अनेक उपचार पद्धतियाँ है।
6. **रोगों का समूल नाश–** विद्यार्थियों, पूरक चिकित्सा पद्धति की एक खास बात यह है कि इसमें रोग को जड़ से ही समाप्त कर दिया जाता है, जिसके कारण व्यक्ति को हमेशा के लिये उस रोग से राहत मिल जाती है और उसे बार – बार चिकित्सकों के चक्कर नहीं काटने पड़ते।
7. **जीवनशैली में सुधार–** पाठकों, जैसा कि आप जानते हैं कि पूरक चिकित्सा में रोग को जड़ से समाप्त करने पर बल दिया जाता है और हम इस तथ्य से भी अवगत है कि अधिकतर बीमारियों का मूल कारण हमारे आहार – विहार, हमारी दिनचर्या – रात्रिचर्या का व्यवस्थित न होना है। अतः पूरक चिकित्सा पद्धति में रोगों को समूल नष्ट करने के लिये रोगों के मूल कारण पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है और ऐसे छोटे –छोटे तरीके, आसानी से अपनाये जा सकने वाले उपाय बताये और सिखाये जाते हैं, जिससे व्यक्ति की जीवनशैली में सकारात्मक परिवर्तन होते है। उसकी बुरी आदतों का स्थान अच्छी आदतें ले लेती है, जिससे व्यक्ति स्वयं को भीतर से प्रसन्न महसूस करता है।
8. **सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों का संरक्षण–** प्रिय विद्यार्थियों, हम सभी इस बात से परिचित हैं कि पूरक चिकित्सा पद्धति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। यह हमारी वैदिक संस्कृति की देन है। हमारे ऋषि – मुनियों द्वारा प्राचीनकाल से इनके वैज्ञानिक प्रयोग किये जाते रहे है। यह हमारी अज्ञानता है कि आज इन पद्धतियों को वैज्ञानिक साक्ष्यों के साथ हम पूरी तरह प्रमाणित नहीं कर पा रहे हैं, हालांकि इस क्षेत्र में अनुसंधान निरन्तर जारी है और अनेक पूरक चिकित्सा पद्धतियों की वैज्ञानिकता भी प्रमाणित हो चुकी है, जिसके कारण भी इनका प्रचलन बढ़ा है। कहने का उद्देश्य यह है कि इस पूरक चिकित्सा का सबंध हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं और मूल्यों के साथ अत्यधिक गहरा है। अतः इनको अपनाकर एक प्रकार से हम अपनी सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा करते हैं। एक सर्वेक्षण में भी यह तथ्य सामने आया है कि बहुत सारे लोग अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों में आस्था और विश्वास के कारण इस चिकित्सा पद्धति को अपनाते है।

इस प्रकार प्रिय विद्यार्थियों, आप समझ गये होंगे कि आज के इस यांत्रिक युग में पूरक चिकित्सा की इतनी अधिक आवश्यकता क्यों महसूस की जा रही है।

3.4 पूरक चिकित्सा पद्धति की सीमायें –

पाठको, पूरक चिकित्सा की उपयोगिता के अध्ययन के बाद अब हम चर्चा करते हैं, इसकी सीमाओं के विषय में। वैसे तो पूरक चिकित्सा पद्धति अत्यन्त सहज, सुलभ एवं निरापद है अर्थात् इसके दुष्प्रभाव न के बाराबर हैं और लाभ ही अधिक है, तथापि हर पद्धति की अपनी कुछ सीमायें एवं सावधानियाँ होती है, जिनको उपचार के दौरान ध्यान में रखना अति आवश्यक है।

पूरक चिकित्सा पद्धति की सीमाओं का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. पूरक चिकित्सा पद्धति की पहली सीमा यह है कि ऐसे मामले जिनमें प्राथमिक उपचार के रूप में आधुनिक चिकित्सा (एलोपैथी) की आवश्यकता है। जैसे कि ऑपरेशन, हड्डी टूटना इत्यादि तो वहाँ पर प्रमुखता आधुनिक चिकित्सा पद्धति को देनी चाहिये, और साथ – साथ शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिये पूरक चिकित्साओं को भी अपनाना चाहिये।
2. पूरक चिकित्सा की दूसरी सीमा यह है कि उपचार की ये विधियाँ उतनी शीघ्रता से लाभ नहीं पहुँचती, जितनी की आधुनिक चिकित्सा, क्योंकि इनका प्रधान उद्देश्य रोग को जड़ से ही समाप्त करना होता है। इसलिये रोग ठीक होने में समय लगता है और उपचार के परिणाम धीरे – धीरे परिलक्षित होते हैं।
3. कुछ पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ ऐसी हैं, जिनको मात्र पुस्तकों के अध्ययन से नहीं सीखा जा सकता, वरन् उनको विधिवत् प्रशिक्षण लेना अनिवार्य होता है। जैसे – **प्राणिक हीलिंग एवं रेकी चिकित्सा उपचार की ऐसी** विधियाँ है, जिनका इनके विशेषज्ञों से विधिवत् प्रशिक्षण लेने के उपरान्त ही चिकित्सा की जा सकती है।
4. वैसे तो पूरक चिकित्सा पद्धतियों के प्रायः किसी प्रकार के दुष्प्रभाव नहीं होते हैं किन्तु कभी – कभी कुछ होम्योपैथिक या अन्य दवाइयाँ दूसरी दवाइयों के साथ सेवन करने पर दुष्प्रभाव डालती है। इसलिये किसी भी प्रकार क दवाइयों का सेवन और चिकित्सा का प्रयोग कुशल चिकित्सक की देख – रेख में ही करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न – (सत्य / असत्य)

1. पूरक चिकित्सा पद्धति धीरे – धीरे रोग का समूल नाश करती है। (सत्य / असत्य)
2. पूरक चिकित्सा से केवल शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। (सत्य / असत्य)
3. पूरक चिकित्सा से रोगों का नाश और स्वास्थ्य का संवर्धन होता है। (सत्य / असत्य)
4. पूरक चिकित्सा प्राकृतिक जीवनशैली पर बल देती है। (सत्य / असत्य)

3.5 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप पूरक चिकित्सा पद्धति के लाभ और सीमाओं से भली – भाँति अवगत हो गये होंगे। साथ ही यह भी जान गये होंगे कि इस चिकित्सा पद्धति के लाभ एवं उपयोगिता इसकी सीमाओं से कहीं ज्यादा है। इस पद्धति का बढ़ता

हुआ प्रचलन स्वतः इस बात का प्रमाण है कि आज उपचार की इस विधि की कितनी जरूरत है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ एवं समृद्ध जीवन जीना चाहता है और उसके इस स्वप्न को पूरक चिकित्सा पद्धति साकार कर सकती है। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक युग में पूरक चिकित्सा पद्धति की महती आवश्यकता है।

3.6 शब्दावली –

मितव्ययिता – कम खर्च

पूर्ण स्वास्थ्य – शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक एवं आत्मिक प्रत्येक दृष्टि से स्वस्थ होना।

दिवास्वप्न – दिन में स्वप्न देखना

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 सत्य 2 असत्य 3 सत्य 4 सत्य

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुरु, उत्तरप्रदेश।

2 आध्यात्मिक चिकित्सा : एक समग्र उपचार पद्धति– डॉ0 प्रणव पण्ड्या, शांतिकुन्ज हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 वैकल्पिक चिकित्सा – डॉ0 आर0एस0 विवेक। डायमंड बुक्स नई दिल्ली।
2 वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ– राजकुमार प्रुथी। प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न – 1 – पूरक चिकित्सा पद्धति की उपयोगिता एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 4 एक्युप्रेशर का अर्थ, एक्युप्रेशर का इतिहास

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 एक्युप्रेशर का अर्थ

4.4 एक्युप्रेशर का इतिहास

4.5 भारतीय संस्कृति में वर्णन

4.5.1 कर्ण छेदन परम्परा

4.5.3 हाथों एवं पैरों में आभूषण की परम्परा

4.5.4 गले में हार एवं अन्य आभूषणों की परम्परा

4.5.4 रत्नों को धारण करने की परम्परा

4.5.5 यज्ञोपवित धारण की परम्परा

4.5.6 आभूषणों एवं रत्न धारण परम्परा का प्रभाव

4.6 सारांश

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों, वर्तमान समय में अनेक प्रकार के रोग समाज में फैलते जा रहे हैं। समाज के अधिकांश लोग प्रायः किसी ना किसी रोग से पिडित होते जा रहे हैं तथा इन रोगों से बचने के लिए विभिन्न प्रकार की रासायनिक दवाइयों एवं इन्जकशनों का प्रयोग कर रहे है किन्तु इन दवाइयों एवं इन्जकशनों के प्रयोग से रोग ठीक होने के स्थान पर ओर अधिक गम्भीर स्थिति को प्राप्त होते जा रहे है। इसी कारण रोगों की संख्या एवं रोगियों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। इसके साथ साथ अप्राकृतिक रासायनिक पदार्थो के सेवन से शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता भी घटती जा रही है। इस समय यहां पर एक ऐसी चिकित्सा पद्धति पर विचार करना निश्चित रुप से श्रेयकर होगा जिसका सम्बन्ध हमारे पूवर्जों के साथ है, जो पारम्परिक रुप से अथवा वंशानुगत रुप से पीढी दर पीढी चली आ रही है, जिसके लिए हमें किसी दूसरे पर निर्भर नही होना

पडता, जो रासायनिक पदार्थो, दवाईयों एवं इन्ज्कशनों से पूर्णतया मुक्त है तथा जिसका प्रयोग विभिन्न सामान्य रोगों से लेकर गम्भीर रोगों में अत्यन्त प्रभावी एवं लाभकारी होता है, ऐसी चिकित्सा पद्धति है– एक्यूप्रेशर।

भारतीय समाज में एक्युप्रेशर एक चिकित्सा पद्धति के रुप में नही अपितु मूल संस्कारों के रुप में जुडी हुई है। महिलाओं व पुरुषों द्वारा हाथों में अंगूठियां पहनना, गले में हार पहनना, महिलाओं द्वारा हाथों में चूडियां पहनना, पैरों में पायजेब, नाक में नथ धारण करना आदि क्रियाओं का मूल सम्बन्ध एक्युप्रेशर के साथ है इसके साथ साथ दोनों हाथों को जोडकर प्रणाम करना, प्रातकाल अपने बडों के चरण र्स्पश करना भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप में एक्युप्रेशर के साथ सम्बन्ध रखता है अर्थात एक्युप्रेशर का सम्बन्ध हमारे दैनिक जीवन से लेकर विभिन्न रोगों के उपचार तक है। इस प्रकार एक्युप्रेशर के इस व्यापक स्वरुप को जानने के बाद अब आपके मन में एक्युप्रेशर के अर्थ एवं इतिहास के विस्तृत स्वरुप को जानने की जिज्ञासा उत्पन होनी स्वाभाविक है अतः अब हम एक्युप्रेशर के अर्थ एवं इतिहास का सविस्तार अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- एक्युप्रेशर के अर्थ की विवेचना कर सकेंगे।
- एक्युप्रेशर का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- एक्युप्रेशर को परिभाषित करने में सक्षम हो सकेंगे।
- एक्युप्रेशर के इतिहास का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- एक्युप्रेशर के महत्व को समझाने में सक्षम हो सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

4.3 एक्युप्रेशर का अर्थ

एक्युप्रेशर दो शब्दों – एक्यू एवं प्रेशर से मिलकर बनता है। एक्यू का अर्थ बिन्दु एवं प्रेशर का अर्थ दबाव से होता है अर्थात शरीर में स्थित कुछ विशेष बिंदुओं पर दबाव देने का अर्थ एक्युप्रेशर है। यहाँ पर इन विषेश बिंदुओ का अर्थ हाथों, पैरों, पेट, कमर एवं चेहरे आदि शरीर के अगों पर स्थित ऐसे स्थानों से होता है जहाँ पर दबाने से एक विषेश प्रकार के दर्द की अनुभूति होती है। इन बिंदुओं को एक्यू बिंदु, प्रतिबिम्ब केन्द्र, रिफ्लेक्ट सेंटर आदि नामों से जाना जाता है। इन विषेश बिंदुओं पर दबाव डालकर इन्हे दबाने का अर्थ ही एक्युप्रेशर है। कुछ विद्वान चीनी भाषा के अनुसार एक्यू का अर्थ सुई से एवं प्रेशर का अर्थ दबाव से करते हुए एक्युप्रेशर का अर्थ सुई के द्वारा शरीर के विभिन्न बिंदुओं को सुई के द्वारा भेदन करने से करते हैं। यहाँ पर हाथों एवं पैरों आदि पर स्थित नाडियों के संवेदनशील बिदुंओ का सुई के द्वारा भेदन करने की क्रिया को एक्युप्रेशर की संज्ञा दी जाती है। एक्युप्रेशर का अर्थ गहरी मालिश से भी लिया जाता है। मानव शरीर मे स्थित नाडियों के विशेष स्थानों पर बहरा दबाव डालना ही एक्युप्रेशर है। शरीर की इन नाडियों मे प्राण ऊर्जा का प्रवाह रुक जाने पर अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इन नाडियों पर दबाव डालकर ऊर्जा प्रवाह को सुचारु बनाना ही एक्युप्रेशर है।इस प्रकार एक्युप्रेशर का अर्थ शरीर के विभिन्न अंगों के विशिष्ट स्थानों पर दबाव डालकर दबाने से होता है। एक्युप्रेशर के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए महर्षि सुश्रुत ने रोगों में हाथ की हथेलियों एवं पैरों

के तलवों के विभिन्न बिदुंओं पर पडने वाले दबाव के ज्ञान को प्रतिपादित किया, जिसकी पुष्टि एक्युप्रेशर उपचार में होती है। आधुनिक समय के प्रसिद्ध एक्युप्रेशर चिकित्सक डा0 जे0 पी0 अग्रवाल कहते हैं कि एक्युप्रेशर वह विद्या है जिसमें शरीर के किसी बिदुं पर दबाव देकर ऊर्जा का विनिमय किया जा सके ।

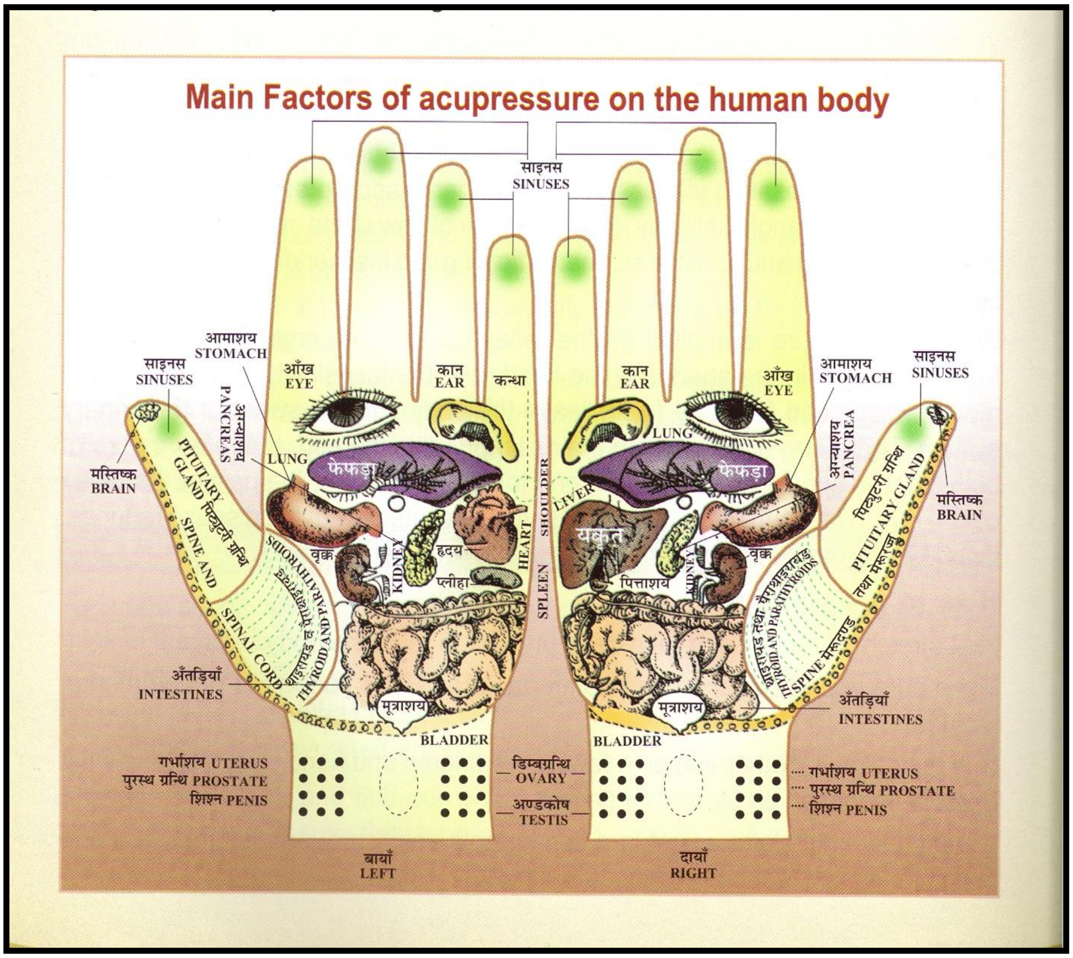

आकृति न0 1

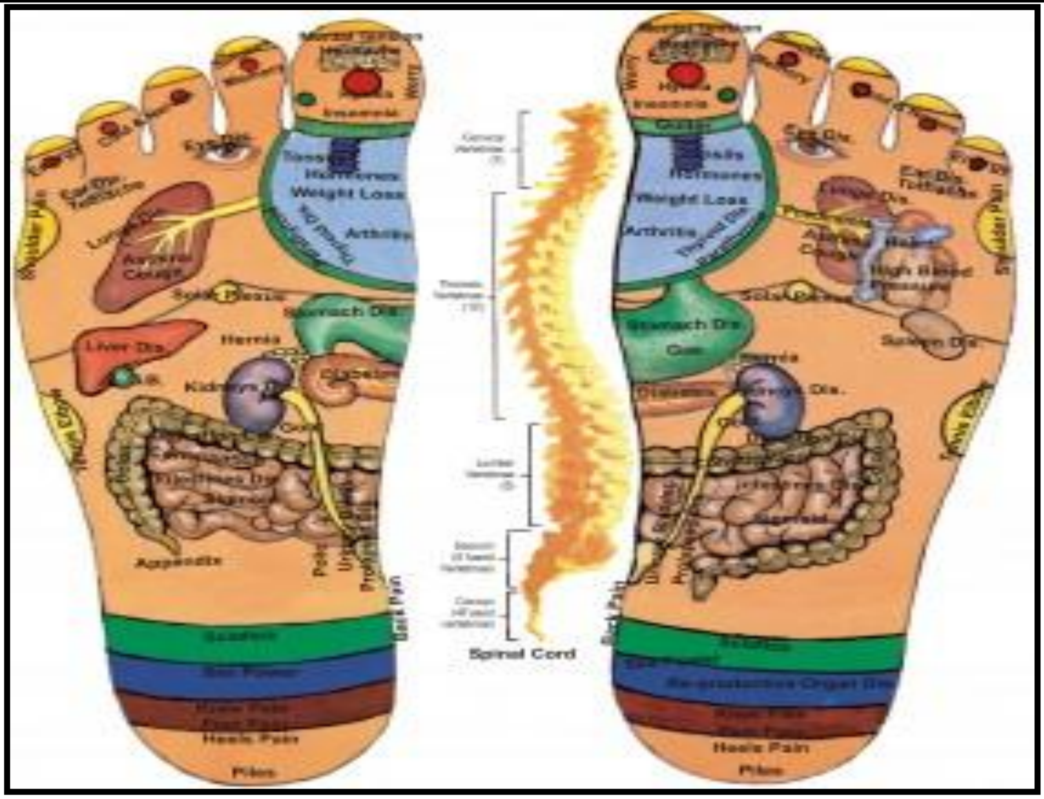

आकृति न0 2

4.4 एक्युप्रेशर का इतिहास –

एक्युप्रेशर का मूल स्थान भारतवर्ष है। इसका स्पष्ट वर्णन भारतीय संस्कृति, परम्परा एवं सभ्यता में प्राप्त होता है। भारतीय आयुर्वेद दर्शन के पुरातन ग्रन्थों में एक्युप्रेशर के ज्ञान का वर्णन मर्म चिकित्सा के रुप में प्राप्त होता है, आयुर्वेद शास्त्र में मानव शरीर में 33 महत्त्वपूर्ण मर्म बिदुओं का उल्लेख किया गया है इसी दर्शन के अनुसार भारतीय समाज में पुरुषों एवं स्त्रियों द्वारा शरीर के अंगों का छेदन–भेदन करवाना, हाथों पैरों व गले में विभिन्न प्रकार के आभूषणों एवं रत्नों को धारण करना एक्युप्रेशर की ओर संकेत करता है। भारतीय समाज में हाथ जोडकर प्रणाम करना, झुककर चरण र्स्पश करने की प्रथा का मूल सम्बन्ध एक्युप्रेशर के साथ ही है। भारतीय समाज में बाल्य अवस्था से लेकर जीवन के अलग अलग अवस्थाओं में एक्युप्रेशर का प्रयोग किया जाता है। इसके अर्न्तगत जनेऊ धारण करना, कर्ण भेदन करना एवं आभूषणों को धारण करना आदि क्रियाएं संस्कार रुप में की जाती है। भारतीय समाज की ये परम्पराएं एक्यूप्रेशर के व्यापक, व्याव्हारिक एवं विस्तारित रुप को प्रकट करती हैं। भारत में ऐसे प्राचीन शिलालेख के रुप में प्रमाण मिलते हैं जिनमें विभिन्न एक्युप्रेशर बिंदुओं को दर्शाया गया है। इन शिलालेखों में एक्युप्रेशर बिदुओं का प्रयोग केवल मनुष्यों पर ही नही अपितु युद्ध आदि में घायल हाथी एवं घोडों पर भी करते हुए दर्शाया गया है। यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि भारत में एक्युप्रेशर का प्रयोग मनुष्यों एवं पशुओं आदि पर अत्यन्त व्यापक रुप में किया जाता था।

आगे चलकर भारत से यह ज्ञान विदेशों में फैलने लगा। बौद्ध भिक्षुओं द्वारा यह ज्ञान श्रीलंका, चीन एवं जापान आदि देशों में पहुचाया गया। इसके साथ साथ विदेशी विद्वानों ने भी भारतवर्ष में आकर इस विद्या का ज्ञान प्राप्त किया एवं इस प्रकार भारत वर्ष से इस विद्या का प्रचार प्रसार सम्पूर्ण विश्व में हुआ। विदेशी भूमि पर भी एक्युप्रेशर के आर्श्चयजनक प्रभाव को देखने के उपरान्त इस पर विचार मंथन एवं वैज्ञानिक शोध अनुसंधान कार्य किया गया। जब विज्ञान की इस कसौटी पर एक्युप्रेशर चिकित्सा खरी उतरी तब इन देशों द्वारा एक्युप्रेशर चिकित्सा को एक मुख्य चिकित्सा पद्धति के रुप में अपनाया गया तथा इस विषय पर ओर अधिक गहराई से चिन्तन किया गया।

भारत वर्ष से यह ज्ञान चीन देश में पहुँचने के बाद इसके लाभों से प्रभावित होकर अनेक चीनी विद्धान इस पद्धति के साथ जुडे। इन विद्धानों द्वारा एक्युप्रेशर को चीन देश में एक मुख्य चिकित्सा पद्धति के रुप में विकसित किया गया। इस प्रकार चीन देश में एक्युप्रेशर चिकित्सा एक मुख्य चिकित्सा पद्धति के रुप में विकसित हुई।

चीन देश में विस्तारित होने के उपरान्त एक्युप्रेशर चिकित्सा का ज्ञान जापान देश में पहुंचा। जापान देश में इस विद्या के एक नया नाम शियात्सु ;ै भ्।ज्ैन्द्ध दिया गया। एक्युप्रेशर चिकित्सा का यह नाम जापानी भाषा के अनुसार अपना अर्थ रखता है, जापानी भाषा में अंगुली को शि तथा दबाव को आतसु कहा जाता है इस प्रकार अंगुलियों से दबाव देकर चिकित्सा करने की विद्या को शियात्सु का नाम दिया गया। इस चिकित्सा के लाभों से प्रभावित होकर जापानी विद्धान भी अधिक से अधिक संख्या में इसके साथ जुडते चले गये ओर इस प्रकार जापान देश में एक्युप्रेशर चिकित्सा शियात्सु के नाम से विस्तारित एवं प्रसिद्ध होती चली गयी।

एक्युप्रेशर चिकित्सा का प्रचार प्रसार यूनान, मिस्र तथा रोम आदि देशों में भी हुआ। प्रसिद्ध पश्चिमी दार्शनिक जुलियस सीजर नाडी रोग से पिड़ित था तथा वह गहरी मालिश अर्थात एक्युप्रेशर के द्वारा ही स्वस्थ हुआ था जिससे इन देशों में भी एक्युप्रेशर चिकित्सा का प्रसार प्रचार हुआ। इन देशों के चिकित्सकों की मान्यता थी कि दबाव के साथ मालिश करने से रक्त संचार तीव्र होता है एवं रोग दूर होते हैं।

इस प्रकार इन देशों में एक्युप्रेशर चिकित्सा के चमत्कारिक प्रभावों एवं लाभकारी परिणामों से प्रभावित होकर अन्य देशों के चिकित्सक एवं विद्धान भी इसके साथ जुडने लगे। चूकिं यह चिकित्सा पद्धति दुष्प्रभावों से रहित एवं सभी स्थानों ;देशोंद्ध के अनुकूल थी अतः इग्लैंड, जर्मनी, कनाडा एवं अमेरिका आदि पश्चिमी देशों के चिकित्सक एवं विद्धान भी इससे प्रभावित एवं आर्कषित होकर इससे जुडने लगे।

प्रिय विधार्थियों, इस प्रकार एक्युप्रेशर चिकित्सा का विस्तार भारतवर्ष से सम्पूर्ण विश्व के धरातल पर हुआ एवं वर्तमान समय में संसार के अधिकांश देशों के चिकित्सक एक्युप्रेशर चिकित्सा का प्रयोग विभिन्न साध्य एवं जीर्ण रोगों के उपचार के रुप में कर रहें हैं।

4.5 भारतीय संस्कृति में वर्णन –

वर्तमान समय में एक्युप्रेशर चिकित्सा का विस्तार सम्पूर्ण विश्व में हुआ है किन्तु यह ज्ञान मूल रुप से भारतवर्ष के साथ जुडा हुआ है। भारतीय समाज के पारम्परिक कार्य एवं रिति रिवाज प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप में एक्युप्रेशर चिकित्सा के साथ सम्बन्ध रखते हैं। भारतीय समाज में अपने बडों को दोनों हाथ जोडकर एवं सिर झुकाकर अभिवादन करने की परम्परा है, रात्रिकाल में सोने से पूर्व घर के वृद्धजनों के पैरों को श्रृद्धाभाव से दबाना भारतीय

संस्कृति का अभिन्न अंग है। बालक के जन्म के एक निश्चित समय पर उसके कर्ण का छेदन करना भारतीय घरों में एक प्रमुख संस्कार के रुप में किया जाने वाला कर्म है। शादी के समय एवं उपरान्त विभिन्न रिति रिवाजों एवं आभूषणों आदि को धारण करने का मूल सम्बन्ध एक्युप्रेशर के साथ ही है।

भारतीय समाज में स्त्रियों में कर्ण छेदन, नासिका में नथ धारण, गले में हार, हाथ में कंगन, कडा, चूडियां व अंगूठियां आदि पहनना, पैरों में पायजेब व चुकटी आदि को पहनने के साथ साथ अन्य आभूषणों को धारण करने की सभ्यता एवं संस्कृति का मूल संबध एक्युप्रेशर चिकित्सा के साथ ही है। स्त्रियों के समान पुरुषों द्वारा हाथ में बाजु बंद का प्रयोग करना, गले में आभूषणों को धारण करना एवं हाथों में अंगूठियों आदि को पहनना एक्युप्रेशर चिकित्सा के ही अनुप्रयोग हैं। यद्यपि ये कर्म पारम्परिक रिति रिवाजों एवं संस्कारों के रुप में किये जाते है किन्तु इसके साथ साथ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा इन क्रियाओं पर शोध अनुसंधान कार्य किये गये तब अनुसंधानों द्वारा भी यह तथ्य सिद्ध हुआ कि इन क्रियाओं का हमारे शरीर, मन एवं स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पडता है। इसके साथ साथ गांवों एवं कबिलों आदि की जातियों विशेष में शारीरिक शक्ति का विस्तार करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण शरीर को गोदने की परम्परा अथवा शरीर के अंग विशेष को गोदने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है जिसके मूल में भी एक्युप्रेशर चिकित्सा के सिद्धान्त ही होते है जो शरीर के ऊर्जा केन्द्रों को सक्रिय कर शारीरिक ऊर्जा का विस्तार करते हैं।

प्रिय विधार्थियों, इस प्रकार इन परम्पराओं एवं रिति रिवाजों के विषय में जानने के उपरान्त अब आपके मन में इस विषय को ओर अधिक गहराई से जानने की इच्छा अवश्य उत्पन्न हुई होगी, अतः अब हम इन भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं एवं रिति रिवाजों का सविस्तार अध्ययन करते हैं–

4.5.1 कर्ण छेदन एवं नासिका छेदन परम्परा –

प्रिय विधार्थियों, भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में आर्यों अर्थात श्रेष्ठ जनों के जीवन में सोलह संस्कारों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इन सोलह संस्कारों में दसवा संस्कार कर्ण भेदन होता है। इस संस्कार में बालक के जन्म के एक निश्चित समय के उपरान्त स्वर्ण सलाई से बालक के कान के स्थान विशेष का छेदन किया जाता है। इस संस्कार का उद्देश्य बालक की सोचने समझने की शक्ति एवं स्मरण शक्ति का विस्तार करना होता है। इस संन्दर्भ में संस्कृतिकारों की मान्यता है कि कर्ण भेदन करने से बालक में प्रखर बुद्धि का विकास होता है एवं निर्णय लेने की क्षमता भी अधिक विकसित होती है। आधुनिक शरीर शास्त्रीयों ने भी मानव शरीर का अध्ययन करने पर पाया कि कर्ण छेदन के स्थान का सम्बन्ध जिह्वा से सम्बन्धित नाडी से होता है। एक्युप्रेशर चिकित्सकों के अनुसार कर्ण छेदन का स्थान जिह्वा का दाब बिन्दु होता है। इस बिन्दु का भेदन करने से जिह्वा भी प्रभावित होती है। प्रायः स्त्रियां अधिक बोलने वाली होती है और इस बिन्दु का भेदन करने से स्त्रियों का वाणी पर नियंत्रण प्राप्त होता है। इसी कारण भारतीय समाज में अधिकांश स्त्रियों में यह कर्ण भेदन की परम्परा पायी जाती है। स्त्रियों में कर्ण छेदन के समान नासिका छेदन की परम्परा भी भारतीय समाज में अत्यन्त व्यापक रुप से प्रचलित है। नासिका के एक स्थान विशेष का छेदन करने से घ्राण शक्ति पर नियंत्रण प्राप्त होता है तथा नासिका, फेफडों एवं त्वचा पर सकारात्मक प्रभाव पडता है।

4.5.2 आभूषण धारण की परम्परा – प्रिय विधार्थियों, यद्यपि आधुनिक समय में सामान्य व्यक्ति आभूषणों को सोन्र्दय प्रसाधन एवं श्रृगांर का साधन मात्र मानते हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नही है अपितु भारतीय संस्कृति में जिस प्रकार कर्ण भेदन को एक संस्कार के रुप अपनाया जाता है, ठीक इसी प्रकार आभूषणों को भी परम्परागत रुप में एवं संस्कारों के रुप में धारण किया जाता है। इसके साथ साथ इस परम्परा के साथ मूल में एक्युप्रेशर के सिद्धान्त भी जुडे होते हैं। हाथों में अंगूठिया पहनने से हाथों में स्थित नाड़ियों पर दबाव पडता है, इन नाािडयों का सम्बन्ध शरीर के आन्तरिक अंगों के साथ होता है अतः अंगूठिया पहनने से शरीर के आन्तरिक अंग भी प्रभावित होते हैं। भारतीय संस्कृति में दुल्हे एवं दुल्हन को शादी के समय एक दूसरे को अंगूठी पहनाने की अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। जिसका सम्बन्ध भी एक्युप्रेशर के प्रभावों के साथ ही है वास्तव में हाथ की अनामिका अंगुली में स्थित नाड़ी का सम्बन्ध हृदय के होता है। इस प्रकार हाथ में अंगुठी पहनाने से हृदय में सकारात्मक भावों का विस्तार होता है। हाथों में कंगन एवं चूडियों को धारण करने के पीछे भी एक्युप्रेशर के प्रभावों का तथ्य छिपा होता है। हाथों की कलाई पर दबाव पडने का सम्बन्ध प्रजनन तंत्र के साथ होता है। इन बिदुंओं पर दबाव पडने से प्रजनन तंत्र स्वस्थ एवं सक्रिय रहता है तथा अन्तःस्रावी तंत्र के हार्मोन्स पर भी इन दाब बिन्दुओं के दबे रहने का सकारात्मक प्रभाव पडता है। इसके साथ साथ हाथों के कंगनों, चूडियों एवं पैरों के पायजेब व चुकटी आदि का प्रभाव मानसिक स्तर को भी प्रभावित करता है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में हाथों में कंगन, चूडियों तथा पैरों में पायजेब व चुकटी आदि को धारण करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है।

एक्युप्रेशर के अनुसार चूडियां मूत्राशय एवं प्रोस्टेट ग्रंथि को प्रभावित करते हैं, पैरों की पायल सियाटिका नाडी एवं लिम्फ ग्रंथियों को प्रभावित करती है। हाथों एवं पैरों की अंगूठियां हृदय, फेफडों आदि आन्तरिक अंगों को सक्रिय बनाए रखने का कार्य करते हैं।

4.5.3 गले में हार, मंगलसूत्र एवं माथे पर बिंदिया धारण की परम्परा –

गले में हार तथा मंगलसूत्र धारण करने के पीछे भी एक्युप्रेशर के लाभों का तथ्य होता है। इससे गले में स्थित थायराइड नामक ग्रन्थि पर प्रभाव पडता है। प्रिय विधार्थियों, थायराइड ग्रन्थि शरीर की चयापचय दर को नियंत्रित करने वाले हार्मोन्स का स्रावण करती है। गले में हार तथा मंगलसूत्र आदि धारण करने से इस ग्रन्थि पर सकारात्मक प्रभाव पडता है तथा इस ग्रन्थि के हार्मोन्स सन्तुलित मात्रा में स्रावित होते हैं।

माथे पर बिंदया धारण करने के पीछे भी एक्युप्रेशर के लाभ छिपे होते हैं। माथे के जिस स्थान पर बिंदिया धारण की जाती है, वह स्थान अग्र मस्तिष्क का महत्वपूर्ण स्थान होता है तथा यही से सोच विचार एवं चिन्तन की क्रिया की जाती है, इस स्थान पर दबाव देने से बौद्धिक सन्तुलन एवं मानसिक सोच विचार की क्रिया सन्तुलित रहती है। इस बिंदु पर दबाव देने से पिटयूटरी नामक मास्टर ग्लैण्ड भी प्रभावित होती है जिसका सकारात्मक प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पडता है।

4.5.4 हाथ में बाजूबंद धारण की परम्परा – जिस प्रकार महिलाएं हाथों में कंगन, चूडियों, पैरों में पायजेब, चुकटी, कानों में झुमर, गले में हार तथा मंगलसूत्र आदि भारतीय सांस्कृतिक एवं पारम्परिक रुप से धारण करती है, उसी प्रकार पुरुष हाथों में बाजूबंद परम्परागत भी प्राचीन काल से चली आ रही है तथा इस परम्परा के पीछे भी एक्युप्रेशर के लाभों का तथ्य होता है। वास्तव में समाज में पुरुषों को स्त्रियों की तुलना में अधिक बाहुबल की आवश्यक्ता पडती है। इस बाहुबल से ही वह अपनी वीरता, शौर्य एवं पराक्रम

को अभिव्यक्त करता है। पुरुषों में बाहुबल वृद्धि करने के उद्देश्य से बाजूबंद धारण किया जाता है। यह बाजूबंद हाथ की मासपंशियों को सक्रिय एवं मजबूत बनाने हेतु उत्तेजित करने का कार्य करता है। इसे धारण करने से भुजाओं में बल की वृद्धि होती है। इसके साथ साथ बाजूबंद धारण करने का पाचन तंत्र पर भी सकारात्मक प्रभाव पडता है, इससे छोटी आंत एवं बडी आंत की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है, इससे शारीरिक शक्ति का विस्तार होता है तथा शरीर हष्ट पुष्ट, सुडौल एवं शक्तिशाली बनता है।

4.5.5 यज्ञोपवित धारण की परम्परा – भारतीय संस्कृति में विद्वान पुरुष अर्थात पंडित द्वारा यज्ञोपवित धारण की परम्परा प्राचीन काल से रही है। यज्ञोपवित कर्णभेदन के उपरान्त किए जाने वाला संस्कार है जिसका उद्देश्य बालक की मनोवृत्ति को ज्ञान की ओर अभिप्रेरित करना होता है, भारतीय समाज में यज्ञोपवित ज्ञान का प्रतीक माना गया है। इस यज्ञोपवित को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देते हुए मान्यता दी जाती है कि कोई भी धार्मिक अनुष्ठान यज्ञोपवित को धारण किए बिना नही करना चाहिए अथवा दूसरे शब्दों में प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान से पूर्व यज्ञोपवित धारण अवश्य करना चाहिए। इस तथ्य के मूल में भी एक्युप्रेशर के प्रभाव ही होते हैं क्योंकि यज्ञोपवित धारण करने से हृदय, मन, मस्तिष्क एवं बुद्धि पर सकारात्मक प्रभाव पडते हैं एवं मन में नकारात्मक ऊर्जा का क्षय व सकारात्मक ऊर्जा का उदय होता है इसीलिए यज्ञोपवित धारण का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि यज्ञोपवित मनुष्य की मानसिक रोगों एवं हृदय रोगों से रक्षा करता है।

4.5.6 रत्न धारण की परम्परा – भारतीय संस्कृति में रत्न धारण करने को भी सविस्तार वर्णन किया गया है जिसके पीछे भी एक्युप्रेशर के प्रभावों का उल्लेख उचित सा प्रतीक होता है। प्रिय विधार्थियों, जिस प्रकार आाभूषण शारीरिक सुन्दरता के साथ साथ आन्तरिक अंगों की ऊर्जा एवं क्रियाशीलता को बढाते हैं, ठीक इसी प्रकार रत्नों को धारण करने से भी शरीर एवं मन की आंतरिक ऊर्जा पर प्रभाव पडता है।

वास्तव में रत्न धारण परम्परा में मान्यता है कि प्रत्येक रत्न को अंगूठी में एक विशेष दिशा अथवा कोण से इस प्रकार देनी चाहिए कि उस मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा का सम्बन्ध ब्राहमाण्डीय ऊर्जा के साथ होने लगे। इस प्रकार ब्राहमाण्डीय ऊर्जा का प्रवेश होने से उसकी शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा अभिवृद्धि को प्राप्त होती है।

4.6 आभूषणों एवं रत्न धारण परम्परा का प्रभाव – भारतीय संस्कृति में आभूषणों एवं रत्न धारण करने की परम्परा अति प्राचीन है। भारतीय समाज में ग्रामीण महिलाओं के चेहरे पर कई स्थानों पर गोदने के निशान प्रायः देखने को मिलते हैं जो एक्युप्रेशर परम्परा की ओर संकेत करते हैं। आभूषणों का यदि वैज्ञानिक अध्ययन किया जाये तो आश्चर्यजनक तथ्य देखने को मिलते हैं। प्रत्येक आभूषण जैसे पैरों में पायजेब, भुजबंद, कमरबंद, नाक व कान की बालिया तथा गले में हार आदि का शरीर के स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। जहां से कान छेदा जाता है, वही अनिंद्रा, पक्षाघात व यादगाश्त का रिक्लेक्स बिदुं पाया जाता है, जहां चूडी पहनी जाती है, वहां मूत्राश्य का रिक्लेक्स बिदुं होता है। जहां पर पायजेब पहनी जाती है वहां सियाटिका नाडी व लिम्फ ग्रंथियों के रिक्लेक्स बिदुं होते हैं। इसी प्रकार बिछुवे पहनने के स्थान पर हृदय, नाक व कान के रिक्लेक्स बिदुं होते हैं। इन सभी स्थानों पर नियमित दबाव पडने से शरीर में ऊर्जा का संतुलन बना रहती है तथा शरीर निरोगी रहता है। यही कारण है कि आज देहात में रहने वाली स्त्री जो कि सभी पारम्परिक आभूषण धारण करती हैं, अधिक संयमित, स्वस्थ एवं निरोगी रहती है जबकि महानगर में रहने वाली स्त्रियां जो इनको धारण करना नही चाहती हैं, वे स्त्रियां प्रायः

असंयमित व रोगों से ग्रस्त रहती हैं। इसी प्रकार पुरुषों में भी जो पुरुष गले में जनेऊ कलाई में धागा, कडा, हाथ में अंगुठी आदि आभूषण धारण करते हैं, वे भी अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ रहते हैं। आभूषणों एव रत्नों के प्रयोग से शरीर मे स्थ्ति विभिन्न एक्युप्रेशर बिन्दुओं पर नियमित दबाव बना रहता है। जिस कारण व्यक्ति को शरीरिक व मानसिक स्वास्थ्य लाभ होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1– सत्य असत्य

क. कर्ण भेदन संस्कार का उद्देश्य बालक की सोचने समझने की शक्ति एवं स्मरण शक्ति का विस्तार करना होता है।

ख. गले में हार एवं मंगल सूत्र धारण करने से माथे में स्थित पिट्यूटरी नामक ग्रन्थि पर प्रभाव पडता है।

ग. चीन देश में विस्तारित होने के उपरान्त एक्युप्रेशर चिकित्सा का ज्ञान भारत देश में पहुंचा।

घ. भारतीय समाज में यज्ञोपवित उत्तम स्वास्थ्य का प्रतीक माना जाता है।

ड़. बाजूबंद हाथ की मासपंशियों को सक्रिय एवं मजबूत बनाने हेतु उत्तेजित करने का कार्य करता है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क. पुरुषों के बाहुबल में वृद्धि करने के उद्देश्य से .... धारण किया जाता है।

ख. भारतीय संस्कृति में विद्वान द्वारा .... धारण की परम्परा प्राचीन काल से रही है।

ग. हाथों की कलाई पर दबाव पडने का सम्बन्ध .... के साथ होता है।

घ. हाथ में अंगुठी पहनाने से .... का विस्तार होता है।

ड़. कर्ण छेदन के स्थान का सम्बन्ध .... से सम्बन्धित नाडी से होता है।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

क. जापान देश में एक्युप्रेशर को किस नाम से जाना गया –

अ. अभ्यंग ब. एक्यूपकंचर

स. शियात्सु द. यिन व यान।

ख. एक्युप्रेशर चिकित्सा में एक्यू का अर्थ होता है –

अ. बिंदु ब. सुई

स. दोनों द. दबाव।

ग. एक्युप्रेशर का मूल स्थान है–

अ. भारत ब. जापान

स. चीन द. इनमें से कोई नही।

घ. कर्ण भेदन करने से बालक में क्या प्रभाव पडता है

अ. बुद्धि का विकास ब. तीव्र स्मरण शक्ति

स. विकसित निर्णयन क्षमता द. सभी।

ड. भारतीय समाज में एक्युप्रेशर के अनुप्रयोग का व्यवहारिक उदाहरण है

अ. कर्ण भेदन परम्परा ब. आभूषण धारण परम्परा

स. रत्न धारण परम्परा द. सभी

4.7 सारांश

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपको यह स्पष्ट हुआ होगा कि एक्युप्रेशर चिकित्सा का मूल उद्‌गम स्थान भारतवर्ष है। भारतवर्ष से यह ज्ञान धीरे धीरे चीन एवं जापान आदि देशों में पहुंचा तथा इस ज्ञान के चमत्कारित प्रभावों से प्रभावित होने के उपरान्त संसार के अधिक से अधिक विद्वान इस विधा के साथ जुडते चले गये। उस प्रकार यह चिकित्सा पद्धति सम्पूर्ण विश्व में फैलती चली गयी। चूंकि एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति दुष्प्रभावों से रहित, सरल, सहज एवं सभी स्थानों पर देने के अनुकूल चिकित्सा पद्धति थी अतः इसके इन गुणों से प्रभावित होकर कुछ देशों में तो इसे एक मुख्य चिकित्सा पद्धति के रुप में अपनाया गया। इन देशों में मुख्य रुप से चीन देश का नाम आता है किन्तु ध्यान देने योग्य एक प्रमुख तथ्य यह है कि एक्युप्रेशर चिकित्सा का ज्ञान भारतवर्ष से ही चीन देश में गया।

भारतवर्ष में एक्युप्रेशर चिकित्सा के अनेकों व्यवहारिक एवं सामाजिक के अनुप्रयोग प्राप्त होते है। भारत वर्ष में बालक के संस्कार रुप में किए जाने वाले कर्मों के मूल में एक्युप्रेशर चिकित्सा का ज्ञान ही समाहित है। कर्ण भेदन संस्कार एवं यज्ञोपवित संस्कारों के मूल में एक्युप्रेशर चिकित्सा का ज्ञान विज्ञान ही है, इसके साथ साथ महिलाओं द्वारा चूडियां, कंगन, नथ, पायजेब, हार, मंगलसूत्र, बिंदिया, टीका, अंगूठियां आदि आभूषण एवं रत्नों के पीछे भी एक्युप्रेशर चिकित्सा का ज्ञान विज्ञान है, जिसका सविस्तार अध्ययन आपने प्रस्तुत इकाई में किया है।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली –

- अभिवृद्धि – अच्छी प्रकार विकसित होना
- उद्‌गम – उत्पन्न होने का स्थान
- संस्कार – एक गुण विशेष
- अनुप्रयोग – व्यवहार में लाना

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1 –

क. सत्य **ख.** असत्य **ग.** असत्य **घ.** असत्य **ड.** सत्य

2 – क. बाजूबंद **ख.** जनेऊ **ग.** प्रजनन तंत्र **घ.** हृदय में सकारात्मक भावों **ड.** जिह्वा

3 –

क. स **ख.** अ **ग.** अ **घ.** द **ड.** द

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एक्यूप्रेशर – डा0 अत्तर सिंह, एक्यूप्रेशर हैल्थ सेटंर, चण्डीगढ।
2. इण्टरनेशनल एक्यूप्रेशर – डा0 वाई0 डी0 गहराना, सुमित प्रकाशन, आगरा।
3. एक्यूप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग – डा0 अमृत गुर्वेन्द्र, ड्रोलिया पुस्तक भण्डार, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) ।

4.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. कल्याण आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर।

2. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान – प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
3. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।
4. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 विवेक, डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली।

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न –

5. एक्युप्रेशर के अर्थ को स्पष्ट करते हुए भारतवर्ष में इसकी व्यवहारिकता एवं महत्व का सविस्तार वर्णन किजिए।
6. एक्युप्रेशर के इतिहास एवं परम्परा पर प्रकाश डालिए।
7. एक्युप्रेशर पर सविस्तार निबन्ध लिखिए।

इकाई – 2 – एक्युप्रेशर के सिद्धान्त, विधि व विभिन्न उपकरण

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 एक्युप्रेशर पद्धति के सिद्धान्त

5.3.1 – एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्वति के मूलभूत आधार

5.3.2 – एक्युप्रेशर के अनुसार रोग के कारण

5.3.3 – एक्युप्रेशर का रोग निवारण सिद्धान्त

5.4 एक्युप्रेशर चिकित्सा की विधि

5.4.1 – विभिन्न एक्युप्रेशर पद्धति

5.4.2 – एक्युप्रेशर पद्धति की प्रयोग विधि

5.5 एक्युप्रेशर उपकरण

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 – प्रस्तावना

एक्युप्रेशर (Acupressure) वह चिकित्सा पद्धति है। जो अधिक प्रभावशाली व प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति इसलिए अधिक प्रभावशाली चिकित्सा पद्धति है, क्योकि इस चिकित्सा पद्धति का सिद्धान्त पूर्ण रूपेण प्राकृतिक है। इस पद्धति के एक अन्य विशेषता यह है कि यह चिकित्सा पद्धति बिल्कुल सुरक्षित चिकित्सा पद्धति है। इस में किसी प्रकार की नुकसान की सम्भावना नही होती है। एक्युप्रेशर के अनुसार समस्त रोगो को दूर करने की शक्ति मनुष्य शरीर में होती हैं, पर इस प्राकृतिक शक्ति को रोग निवारण के लिए प्रयुक्त करने की आवश्यकता होती है। इस पद्धति में शरीर के विकृति से

सम्बन्धित नाड़ी पर केवल दबाव तथा मालिश के द्वारा उपचार किया जाता है। हमारे ऋषि – मुनियो ने बहुत से रोगो के शमन के लिए प्रकृति प्रदत्त चिकित्सा का ही सहारा लिया करते थे। प्रकृति प्रदत्त चिकित्सा पद्धति की एक विशेष पद्धति एक्युप्रेशर है। स्वास्थ्य के सन्दर्भ में शास्त्रों में वर्णन है –

'शरीरामाद्यं खलु धर्म साधनम्।'

अर्थात् स्वास्थ्य को बनाये रखना एक नैतिक एवं धार्मिक कर्त्तव्य है। क्योकि स्वथ्य व्यक्ति ही कोई भी साधना कर सकता है, तथा रोगी व्यक्ति स्वयं में ही उलझ कर कोई भी साधना नही कर सकता है। अतः स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए प्रकृति प्रदत्त चिकित्सा प्रणाली को अपनाया जाए।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप –

- एक्युप्रेशर के सिद्धान्तो को समझ सकेगे।
- एक्युप्रेशर के अनुसार रोगो के कारणो को समझ सकेगे।
- एक्युप्रेशर के रोग निवारण सिद्धान्तो का विश्लेषण का सकेगे।
- एक्युप्रेशर की विभिन्न चिकित्सा विधियों को समझ सकेगे।
- एक्युप्रेशर चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियो को समझ सकेगे।
- एक्युप्रेशर के आधुनिक व पौराणिक उपकरणो को समझ सकेगे।

5.3 एक्युप्रेशर पद्धति के सिद्धान्त

प्रिय विद्यार्थियो एक्युप्रेशर सरल व सुलभ चिकित्सा पद्धति है। इस चिकित्सा पद्धति में सामान्य रोगो के उपचार के लिए केवल हाथो व पैरो, चेहरे, कान, पीठ तथा शरीर के कुछ भाग के प्रमुख केन्द्रों पर प्रेशर देने से ही सारे रोगो को दूर किया जा सकता है। इस पद्धति के सिान्तो के अनुसार मनुष्य शरीर (Physical) तथा भावनात्म (Emotional) रूप से एक अभिन्न इकाई है। दो पृथक इकाई नही है, वरन् एक ही है।

इस पद्धति का द्वितीय सिद्धान्त यह है, कि मनुष्य शरीर की रक्त वाहिकाओ (Blood Vessels) तथा स्नायु संस्थान (Nervous System) की समस्त छोटी बडी नाडियों के आखिरी हिस्से (Nervs Ending) उसके हाथों की हथेली में तथा पैरो के तलवे में होते है। अर्थात हमारे हाथो की तथा पैरों की नाडियो का शरीर के सभी अंगो से सम्बन्ध है।

इस तथ्य को आसानी से इस प्रकार समझा जा सकता है – मनुष्य शरीर को यदि सिर से लेकर पैर तक लम्बे रूप में 10 भागों मे बाँटा जाए, सिर के बीच से दाहिनी तरफ 5 भाग तथा सिर के बीच से बायीं तरफ 5 भाग, बाँटा जाए अर्थात हाथ तथा पैरों की अँगुलियो को आधार मानकर सिर तक शरीर मे 10 समानान्तर लाइने खींचकर देखा जाए तो इससे आसानी से पता लग जाता है, कि शरीर का कौन सा अगं पैरो तथा हाथों के कौन से भाग से सम्बन्ध रखता है। जैसा कि आकृति न0 (1) में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है।

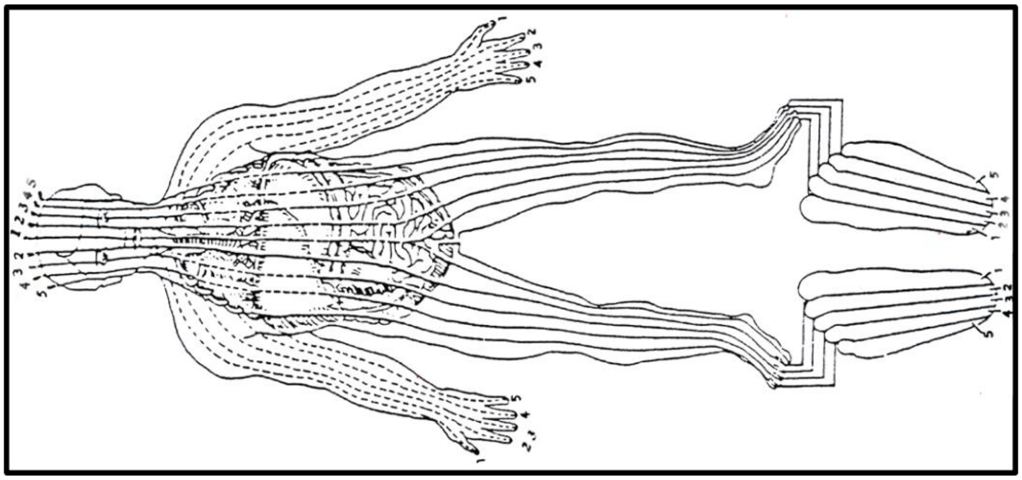

आकृति न0 1

चिकित्सको नें बहुत अध्ययन के बाद शरीर को लम्बाई के रूप में 10 समान्तर भागों मे बाँटा गया है। एक्युप्रेशर में इस थैरपी को 'जोन थैरेपी' (Zone Theraphy) या 'जोन थ्योरी (Zone Theory) कहा जाता है। इस थैरेपी के अनुसार 5 भाग दांयी तरफ तथा 5 भाग बांयी तरफ किये जाते है। इस प्रकार हाथो और पैरो की अगुलियों के आधार मानकर शरीर को दस समान्तर भागो में बॉटा जाये तो जो जिस क्षेज में पड़ते है। उससे सम्बन्धित प्रतिबिम्व केन्द्र पैरो के तलवो तथा हाथों की हथेलियों के उसी क्षेज में स्थिर होते है। जैसा कि चित्र न0 (1) से स्पष्ट होता है। यदि देखा जाए तो जोन थैरेपी ही एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति का मूल आधार है।

5.3.1 – एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति के मूलभूत आधार – एक्युप्रेशर पद्धति के मूलभूत आधार निम्न है –

1) शरीर विज्ञान के अनुसार जब एक्युप्रेशर केन्दो पर दबाव डाला जाता है। उस दबाव में नाड़ी मण्डल में उत्तेजना उत्पन्न होती है। जिसकी प्रतिक्रिया से पीयूष ग्रन्थि (Pitiutary Gland) उत्तेजित होकर एण्डार्फिन नामक एन्जाइम उत्पन्न करती है, जो शरीर में दर्द को कम करने में सहायक है। दर्द अवरूद्ध होने पर उस अंग में ऑक्सीजन रूपी शक्ति पहुॅच जाती है, तथा शरीर में रक्त संचरण भी बढ़ जाता है। जिसके कारण रोग ग्रस्त अंग ठीक हो जाते है।

2) साधारण भाषा में यदि कहा जाए जब प्रतिबिम्व केन्द्रो को दबाव द्वारा उत्तेजित किया जाता है। तब उससे सम्बन्धित नाड़ी तन्त्र भी उत्तेजित हो जाता है, तथा उस अंग के अस्वस्थ होने की सूचना मस्तिष्क तक पहुॅच जाती है। जो कि अब तक अस्वस्थता के कारण मस्तिष्क तक नही पहुॅच पा रही थी। प्रिय विद्यार्थियो हमारे शरीर के सबसे बड़े चिकित्सक (मस्तिष्क) को अपने रोगी (Patiant) के बारे में सूचना प्राप्त हो जाती है। मस्तिष्क अपने रोगी के संभलने के लिए अपने शरीर को आदेश देता है। जिसके फलस्वरूप रूग्णित अंग तक वांछित रक्त आपूर्ति व विटामिन्स पहुॅचा दिया जाते है।

परिणाम स्वरूप रूग्णित अंग स्वस्थ हो जाता है। इस प्रकार कमजोर पड़ गयी रोग प्रतिरोधक क्षमता जाग्रत हो जती है, बड़ जाती है, तथा शरीर स्वस्थ हो जाता है।

3) कई चिकित्सा बैज्ञानिको का मानना है कि शरीर में मांसपेशियों पर डाले गये दबाव से मांसपेशियॉ तनाव मुक्त हो जाती है। जिसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क में एल्फा लहरे उत्पन्न होती है। जिससे शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बड़ जाती है। इस प्रकार यह प्रतिरोधक क्षमता या जीवनी शक्ति के बड़ जाने से कमजोर मांसपेशियाफ शक्तिशाली हो जाती है, तथा मांसपेशियॉ अपना कार्य नियमित रूप से करने लगती है।

4) प्रतिबिम्व केन्द्रो में दबाव देने से शरीर में रक्त संचरण की गति बड़ जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा बड़ जाती है। क्योकि रक्त संचरण के कारण फेफड़े तथा ह्रदय की गतिविधियो में भी तेजी आ जाती है। शरीर में रक्त संचरण से ह्रदय, फेफड़े सभी अंग सुचारू रूप से कार्य करते है, तथा शरीर स्वस्थ हो जाता है।

5) चिकित्सा शास्त्रियो के अनुसार शरीर में रोग की अवस्था में विभिन्न प्रकार के क्रिस्टल रक्त वाहिनियो तथा नाड़ियो के अन्तिम छोर में जमा हो जाते है। जिससे सम्बन्धित अंगो को रक्त आपूर्ति व सूचनाओ की प्राप्ति नही हो पाती है। एक्युप्रेशर के अनुसार जब इन छोरो पर दबाव डाला जाता है, तब ये क्रिस्टल अपने स्थान से हट जाते है, तथा रक्त प्रवाह सुचारू हो जात है। शरीर स्वस्थ होने लगता है।

5.3.2 – एक्युप्रेशर के अनुसार रोग के कारण – एक्युप्रेशर चिकित्सा अनुभव पर आधारित चिकित्सा है – अनुभव के आधार पर रोग के अनेक कारण है। कुछ प्रभावशाली कारणो का वर्णन इस प्रकार से है –

- एक मत के अनुसार मनुष्य रोगी तब होता है, जब किसी अंग से सम्बन्धित स्नायु संस्थान (Nervous System) ठीक से काम नही करता है। तथा किसी अंग विशेष में रक्त का प्रवाह ठीक से नही हो पाता हैं। रक्त वाहिनियो में विकृति के कारण शरीर का वह अंग या तो शीत (Cold) हो जाता है या उष्ण (Over Heated) हो जाते है। इन दोनो ही अवस्थाओ में शरीर में रोग उत्पन्न होते है।
- रोग की अवस्था में कुछ क्रिस्टल में बहुत सुक्ष्म रसायनिक पदार्थ अथवा कण हाथे तथा पैरो में रक्त वाहिनियो के आखिरी हिस्सो में जमा हो जाते हैं। जिस कारण अनेको अंगो में रक्त प्रवाह सही नही रहता है। इन क्रिस्टलो को अपने स्थान पर बने रहने के कारण ही रक्त आपूर्ति में बाधा होती है, जिस कारण रोग उत्पन्न होते है।
- एक अन्य विचार के अनुसार शरीर रोगी तब होता है। जब शरीर के किसी भाग में स्थिर केन्द्रो उष्ण (Hot) शीत (Cold) चेतनाशून्य (Numb) कई शुष्क (Dry) कई चिकने (Oily) तथा कई कठोर (Hard) कई रंगहीन (Discoloured) तथा दुःखद (Painful) हो जाते है। इस तरह के विकार के कारण शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है।

- एक्युप्रेशर के अनुसार सभी अंगो को रक्त की नियमित आपूर्ति बहुत जरूरी है। क्योकि रक्त के माध्यम से शरीर को सभी पौष्टिक तत्वो को आपूर्ति होती है। तथा पौष्टिक तत्व शक्ति प्रदान करती है। शरीर के विभिन्न अंगो से रक्त की अवांछित पदार्थ गुर्दो तक पहॅुचाता है, तथा गुर्दे रक्त को छान कर आवांछनीय पदार्थ को शरीर से बाहर निकाल

देते है। यदि रक्त की सुचारू रूप से प्रवाहित ना हो तो अनेक अवांछनीय अनावश्यक पदार्थ शरीर में ही एकत्र होने लगेगे जिस कारण शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है।

- यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि हमारा शरीर पंचतत्वो अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु आकाश से बना है। इन पॉचो तत्वो का संचालन शरीर की बिजली जिसेबायो इलेक्ट्रिसिटी करती है या (Bio energy) करती है। एक्युप्रेशर के चिकित्सको के अनुसार हाथो पैरो के प्रतिबिम्व केन्द्र जो दबाने पर पीड़ उत्पन्न करे तो उस स्थान से सम्बन्धित अंगो की ऊर्जा लीक कर रही होती है। अर्थात् शरीर से ऊर्जा बाहर जा रही है। जब व्यक्ति इन केन्द्रों पर प्रेशर देते है। तो लीकेज (Leakge) बन्द हो जाती है। तथा सम्बधित सभी अगों को ऊर्जा का प्रवाह सामान्य रूप से होने लगता है।

5.3.3 – एक्युप्रेशर का रोग निवारण सिद्धान्त – एक्युप्रेशर के अनुसार शरीर रोगी तब होता है। जब शरीर मे विजातीय पदार्थ एकत्र हो जाते है, यही सिद्वान्त प्राकृतिक चिकित्सा मे भी लागू होता है। कि रोग का कारण विजातीय द्रव्य है, किटाणु नही।

प्रिय विद्यार्थियों एक्युप्रेशर के सिद्वान्त के अनुसार शरीर मे रोगो को दूर करने की शक्ति हमारे शरीर में हमेशा ही मौजूद होती है। जरूरत हैं उस शक्ति को जाग्रत करने की, इस पद्वति के अनुसार उस जीवनी शक्ति को जाग्रत कर रोगो को दूर किया जाता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्व युनानी चिकित्सक हिप्पोक्रेटीज का कथन है – ''मानव शरीर के भीतर प्राकृतिक शक्तियाँ ही वास्तव में रोग निवारण का काम करती हैं।''

इस प्रकार एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्वति अनको प्रकार के रोगो को दूर करने की आश्चर्यजनक पद्वति है। इस पद्वति में यह शक्ति किस प्रकार जाग्रत होकर अपना कार्य करती है। इस के प्रति कुछ कह पाना सम्भव नही है। पर अनेको पुराने रोग जो कही से भी ठीक हो पा रहे हो, वह रोग इस पद्वति से थोडे ही समय में दूर होते देखे जाते हैं।

5.4 – एक्युप्रेशर चिकित्सा की विधि – प्रिय विद्यार्थितयो एक्युप्रेशर चिकित्सा की विधि जानने से पहले यह चिकित्सा पद्वतियॉ कितने प्रकार की है। यह जानना आवशयक है, अतः सर्वप्रथम एक्युप्रेशर चिकित्सा की विभिन्न पद्वतियों का अध्ययन करना चाहिए – एक्युप्रेशर की विभिन्न चिकित्सा पद्वतियॉ निम्न हैं –

5.4.1 – विभिन्न एक्युप्रेशर पद्धति – प्रिय विद्यार्थितयो एक्युप्रेशर की विभिन्न पद्वतियों को अपनाकर स्वास्थ्य लाभ लिया जा सकता है। एक्युप्रेशर चिकित्सा विभिन्न देशो में अपनायी जाने वाली पद्वति है। तथा इसे हर जगह अलग–अलग नामो से परिभाषित किया जाता है। जैसे–इसे चीन में सुजोक के नाम से जाना जाता है। तथा जापान में शिआत्सु के नाम से तथा भारत मे एक्युप्रेशर आदि, एक्युप्रेशर की विभिन्न पद्वतियों का वर्णन निम्न प्रकार से है–

1– मेरीडियनोलॉजी (Meridianology)

2– जोन थैरेपी (Zone Therapy)

3– सुजोक पद्वति (Sujok)

4– शिआत्सु पद्वति (Shiatsu System)

5– प्रतिबिम्ब केन्द्र पद्वति (Reflexology)

1– मेरीडियनोलॉजी (Meridianlogy) – भारत में जीवनी शक्ति को प्राण ऊर्जा, तेजस शक्ति, चैतन्य शक्ति, आत्म शक्ति या ब्रहमाण्डीय ऊर्जा आदि नामों से जाना जाता है। यह शक्ति सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित होती रहती है। यह शक्ति सम्पूर्ण शरीर में नाड़ियों में प्रवाहित होती हैं। जिन नाड़ियों मे यह शक्ति प्रवाहित होती है। उन्हे चेनल्स अथवा मेरीडियन्स (Meridians) कहते हैं। इन मेरीडियन्स में ऊर्जा का प्रवाह जब सन्तुलित रहता है। तब शरीर स्वस्थ रहता है। परन्तु यदि किसी एक मेरीडियन्स में ऊर्जा का प्रवाह जब कम हो जाता है तब किसी दूसरे मेरीडियन्स मे ऊर्जा का प्रभाव बढ़ जाता है। परिणाम स्वरूप दोनो मेरीडियन्य से सम्बन्धित अंगो में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। प्रिय विद्यार्थियो आइये जाने कि यह मेरीडियन्स में कितने प्रकार के होते है। तथा ऊर्जा जो इन मेरीडियनस में प्रवाहित होती है। वह कितने प्रकार की होती है।

यह जीवनी शक्ति या प्राण ऊर्जा दो प्रकार की होती है। धनात्मक तथा ऋणात्मक इन्हें मेरीडियनोलौजी की भाषा में यांग (Yang) तथा यिन (Yin) कहते है। मुख्य रूप से शरीर में 14 मेरीडियन्स या चैनल्स होते है। जिनमें 6 चैनल शरीर के दाहिने भाग मे तथा 6 चैनल बायें भाग में होते है। व शरीर के आगे की ओर तथा पीछे की ओर 2 चैनल होते है।जो मेरीडियन जिस प्रमुख अंग से संलग्न होता हैं। उसे उस अंग के नाम से जाना जाता है, जैसे– फेफड़ो का मेरीडियन अर्थात लंग (Lung Meridian) मेरीडियन, यकृत मेरीडियन अर्थात लीवर मेरीडियन (Liver Meridian)। इन मेरीडियन्स की शुरूवात शरीर के किसी प्रधान अंग से होती है। तथा दूसरा सिरा चेहरा, कान, हाथ, पैर पर समाप्त होता है। इन अंगो में एक निश्चित समय मे यह जीवन ऊर्जा प्रवाहित होती रहती है।

जीवन ऊर्जा में यदि असन्तुलन हो तब रोग विशेष की स्थिति होती है। तथा असन्तुलन को समाप्त विभिन्न प्रकार के दबाव देकर पुनः ऊर्जा का प्रवाह कर किया जाता है। तथा रोग ठीक होने लगते है। ये 14 मेरीडियनस निम्न है–

यांग मेरीडियन्स (Yang Meridians)

1– वृहदांत्रीय मेरीडियन (Long Intestine Meridian)
2– उदरीय मेरीडियन (Stomach Meridian)
3– क्षुद्रा्त्रीय मेरीडियन (Small Intestinal Meridian)
4– मूत्राशयी मेरीडियन (Urinary Bladdir Meridian)
5– त्रिउष्मीय मेरीडियन (Tripple Warmar Meridian)
6– पित्ताशयी मेरीडियन (Gall Bladder Meridian)

यिन मेरीडियन (Ying Meridians)

7– फुप्फुसीय मेरीडियन (Lung Meridians)
8– प्लीहा मेरीडियन (Spleen Meridian)
9– वृक्क मेरीडियन (Kidney Meridian)
10– ह्रदय मेरीडियन (Heart Meridian)
11– पेरीकार्डियम मेरीडियन (Pericardium Meridian)
12– यकृत मेरीडियन (Liver Meridian)

नियन्त्रक मेरीडियन

13– गवर्निग वेसल मेरीडियन (Governing Vessel Meridian)

14– कन्सेप्शन वेसल मेरीडियन (Conpception Vessel Meridian)

2 – जोन थेरेपी (Zone Therapy) – एक्युप्रेशर चिकित्सा के सिद्वान्तो के अनुसार मनुष्य शरीर भावनात्मक रूप से एक अभिन्न इकाई है। शरीर के प्रथम भाग तक रक्त वाहिकाओं नाड़ियों, तथा लसिकाओ का जाल फैला हुआ है। तथा इन नाड़ियों तथा शिराओं के अन्तिम भाग हाथो तथा पैरो मे होते है। जोन थैरेपी द्वारा इस शरीर को लम्बाई में 10 भागों मे विभाजित किया जाता है। 5 भाग शरीर के दाहिनी ओर के, तथा 5 भाग बायी ओर से मानकर 10 (Zone) माने जाते है। 10 जोन (Zone) में बाटने पर शरीर के प्रतिबिम्ब केन्द्रों (Reflex Center) का सहज ही ज्ञान हो जाता है। कि कौन सा बिन्दु कहॉ पर प्रभाव देता है। ऐसे रिफ्लेक्स (Reflex Points) पाइन्टस हाथ, पैर, कान तथा चेहरे पर पाये जाते है। पैरो तथा हाथों में यही केन्द्र विभिन्न अंगो के प्रतिबिम्ब केन्द्रो (Reflex Center or Response Center) कहे जाते है। कुछ चिकित्सक हाथों, पैरो, कान तथा चेहरे के इन केन्द्रों को रिफ्लेक्स बटन भी कहते है। रिफ्लेक्स बटन इन्हे इसलिए कहा जाता है, क्योकि जिस तरह बिजली के बल्ब को जलाने के लिए बटन कार्य करता है। उसी प्रकार हमारे विभिन्न अगों के प्रतिबिम्ब केन्द्र (Riflex centres) बटन हमारे हाथ, पैर, कान, तथा चेहरे पर होते हैं। इन रिफ्लेक्स सेन्टर को दबाकर रोग ग्रस्त अंगो को सही किया जा सकता है।

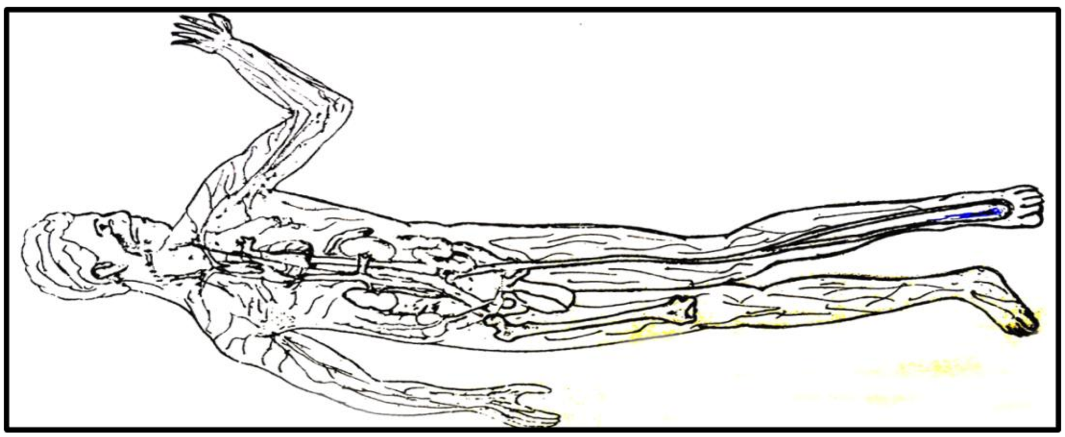

आकृति न0 2

3– सूजोक पद्धति (Suzok System) – सूजोक पद्वति के आविष्कारक **डा0 पार्क** द्वारा प्रतिपादित यह पद्वति अपने आप में अनूठी पद्वति है। यह दबाव इतने जोर से दिया जाता है। यह दबाव इतने जोर से दिया जाता है। कि दबाव शरीर के अन्दर अस्थि तक पहॅुच जाए, इस पद्वति में अस्थिदाब के द्वारा विकृति अंग से सम्बधित अस्थि बिन्दु पर दबाव देकर उसे उत्प्रेरित किया जाता है।

निचे चित्रों में अस्थियों तथा शरीर के अंगो से सम्बधित सूजोक बिन्दुओ को स्पष्ट किया गया है –

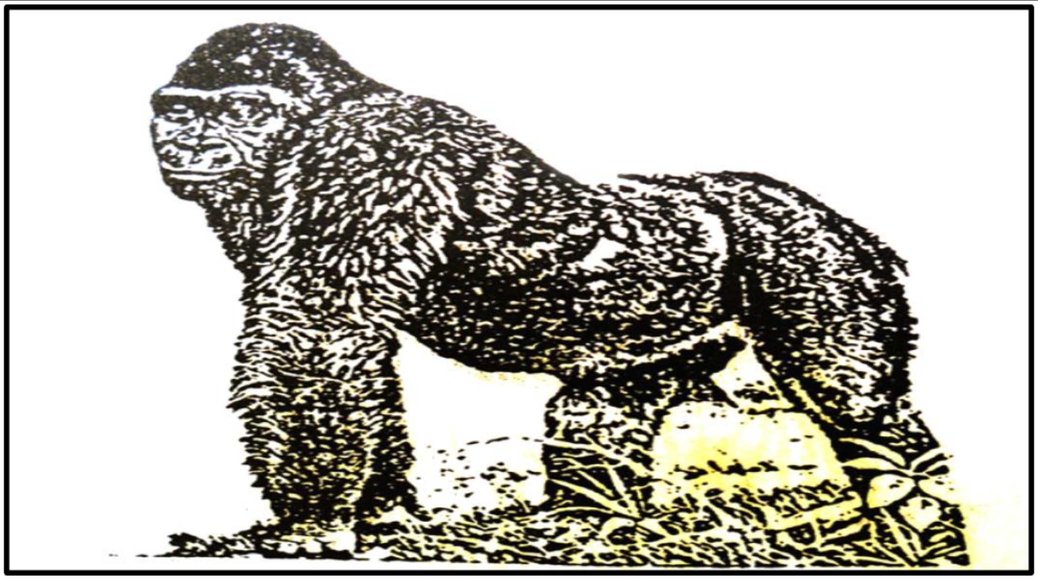

आकृति न0 3

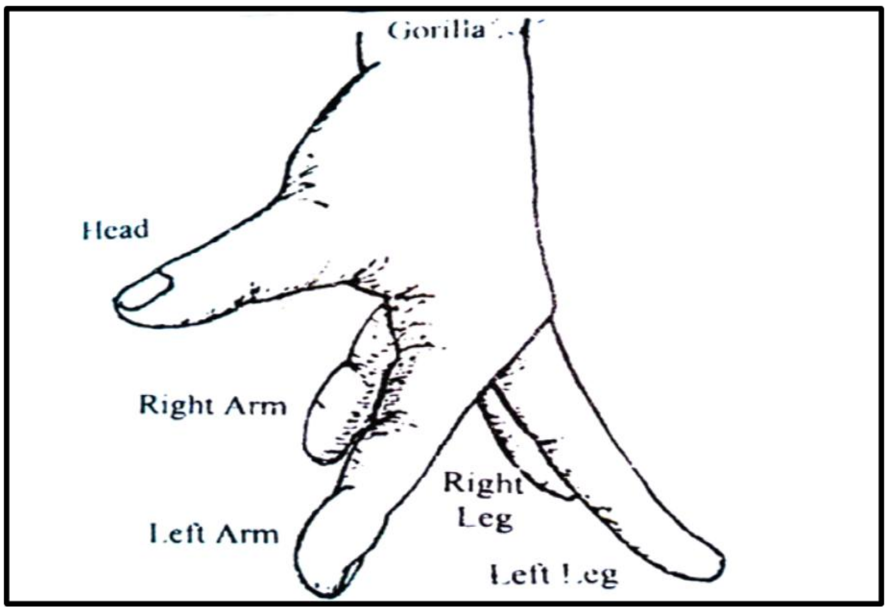

आकृति न0 4

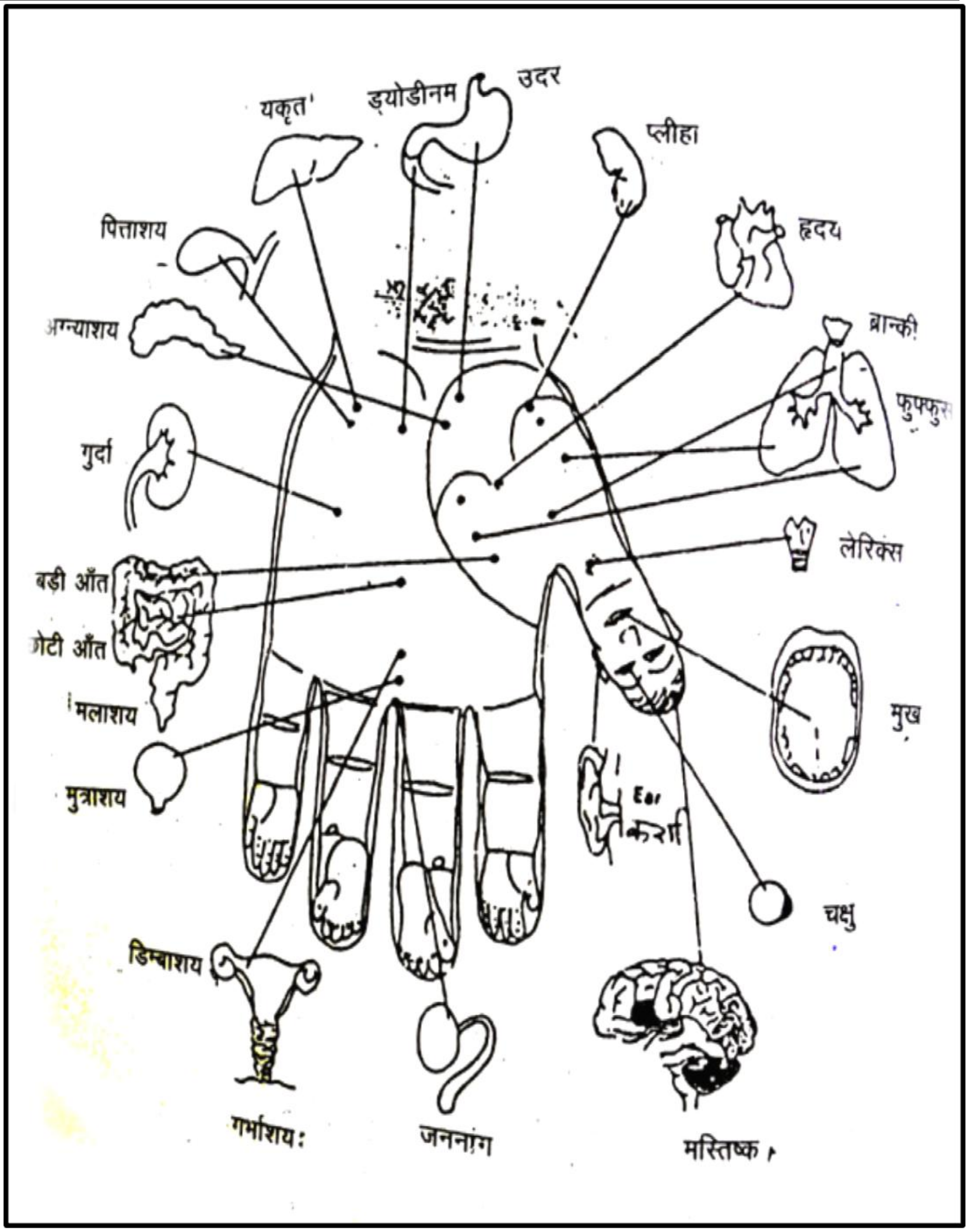
यकृत
ड्योडीनम
उदर
प्लीहा
पित्ताशय
हृदय
अग्न्याशय
ब्रान्की
फुफ्फुस
गुर्दा
लेरिंक्स
बड़ी आँत
छोटी आँत
मलाशय
मुख
मुत्राशय
Ear
कर्ण
चक्षु
डिम्बाशय
गर्भाशय
जननांग
मस्तिष्क

आकृति न0 5

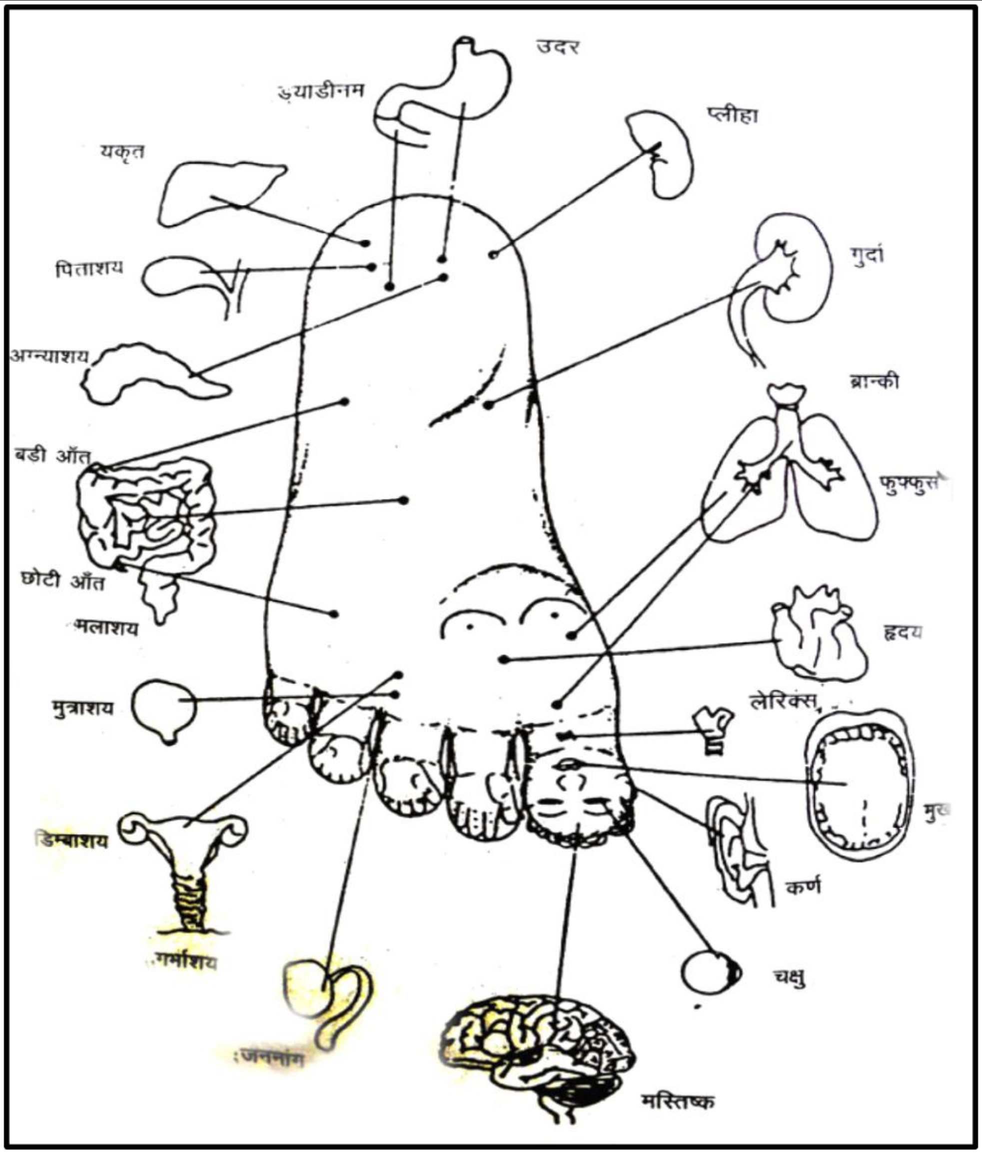

आकृति न0 6

4 – शिआत्सु पद्धति (Shiatsu System) – इस पद्वति का ज्ञान बौद्व भिक्षुओं द्वारा चीन से जापान तक पहुॅचा, जापान मे एक्युप्रेशर को शिआत्सु कहा जाता है। शिआत्सु जापानी भाषा का शब्द है। जो दो अक्षरों से मिलकर बना है। पहला अक्षर 'शि' (SHI) 'शि' का अर्थ (Finger) तथा 'आत्सु' (ATSU) आतसु का अर्थ है – दबाव (Pressure) है। इस प्रकार अगूठे तथा हथेलियों द्वारा दिया जाने वाला दबाव है। क्रियात्मक रूप मे देखा जाए तो शिआत्सु पद्वति एक प्रकार की पेशियो की मालिश है। जिसमें विभिन्न प्रकार की पेशियो की मालिश की जाती है। इस पद्वति से मालिश करने की प्रणाली प्राचीन काल से चली आ रही है। मिश्र के पुरोहित एक विशेष प्रकार की मालिश के द्वारा अनेक रोगो को दूर कर

देते थे। हिप्पोक्रेटस भी इस चिकित्सा पद्धति (मर्दन) का उपयोग करता था। आधुनिक युग में भी सिर दबाने, पैर दबाने, मालिश आदि जैसे उपचारो का प्रयोग सर दर्द, पैर दर्द व अन्य रोगो के उपचार के लिए होता है।

5– प्रतिबिम्व केन्द्र पद्धति – (रिफ्लेक्सोलोजी) Reflexology – शरीर के अंगो के प्रतिबिम्ब केन्द्र शरीर के बहुत से भागों मे होते हैं। उपचार से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि शरीर के किसी हिस्से मे या अंग मे रोग है। उससे सम्बधित प्रतिबिम्ब केन्द्र को खोजकर उस पर दबाव देकर रोग मिटाया जाता है। इसे ही रिफ्लेक्सोलोजी कहा जाता है। रिफ्लेक्सोलोजी सबसे अधिक सुविधाजनक व प्रभावी है। यह रिफ्लेक्सोलोजी फुट, हैण्ड, स्पाइन, ईयर व फेस मे दी जाती है।

1 – फुट रिफ्लेक्सोलोजी – **(Foot Reflexology)** – पैरो के तलवे व ऊपरी हिस्सो में प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देकर उपचार करना फुट रिफ्लेक्सोलोजी है। फुट रिफ्लेक्सोलोजी अधिक प्रभावी होता है। पैरो को एक्युप्रेशर के प्रतिबिम्ब क्षेत्र बडा होता है। इसलिए जीवन शक्ति के प्रवाह को प्रवाहित करता है।

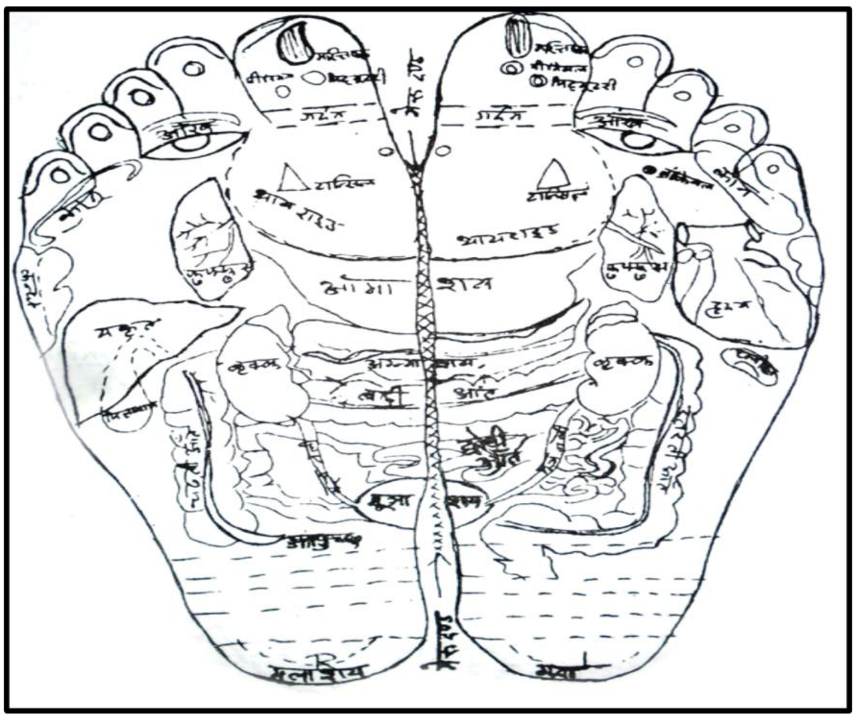

आकृति न0 7

2 – हैण्ड रिफ्लेक्सोलोजी – (Hand Reflexology) – हाथो मे स्थित प्रतिबिम्ब केन्द्र पर प्रेशर (दबाव) उपचार करने की कला को हैण्ड रिफ्लेक्सोलोजी कहते हैं। हैण्ड रिफ्लेक्सोलोजी एक प्राचीन व स्वयं उपचार करने की तकनीक है।

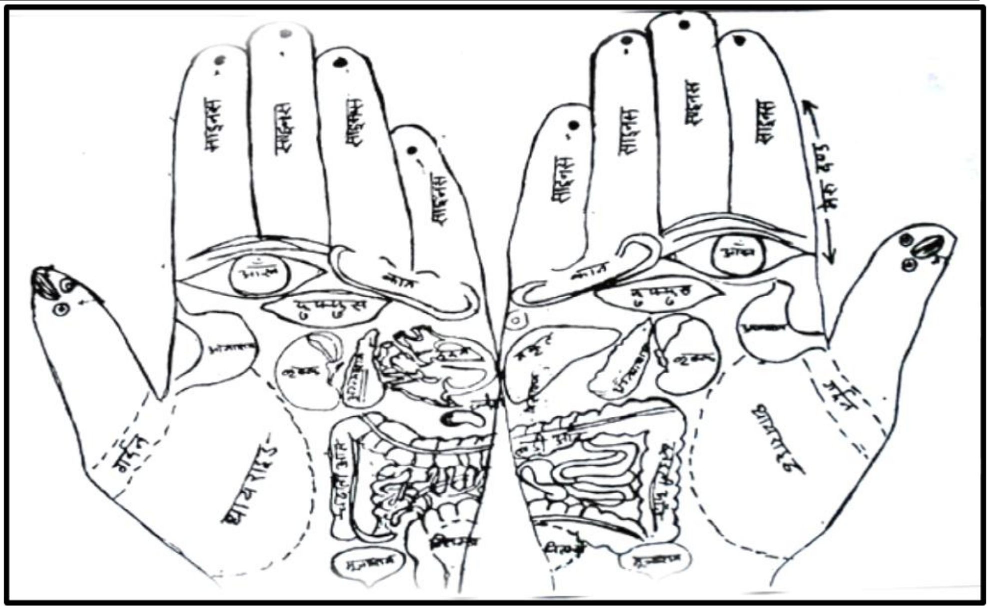

आकृति न0 8

3 – ईयर रिफ्लेक्सोलोजी – (Ear Reflexology) – जिस प्रकार बच्चा मॉ के गर्भ मे उल्टा रहता है उसी को आधार मान कर एक्युप्रेशर केन्द्रो की स्थिति मानी जाती है। कानो मे दिये गये विभिन्न प्रतिबिम्ब केन्द्र शरीर के अंगो से सम्बन्ध रखते है। दायें कान पर लीबर पित्ताशय तथा एपेन्डिक्स के एक्युप्रेशर बिन्दु है। तथा बायें कान पर प्लीहा तथा हृदय के केन्द्र है। इन केन्द्रो पर दबाव देकर रोग दूर किये जाते है।

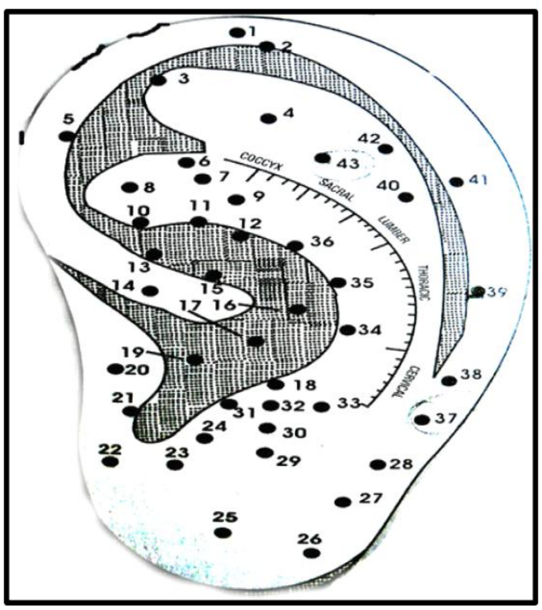

आकृति न0 9

4 – फेस रिफ्लेक्सोलोजी – (Face Reflexology) – चेहरा शरीर का दपर्ण होता है। ऐसा कहा जाता है। परन्तु हमारा चेहरा दपर्ण के साथ–साथ स्विच बोर्ड भी है। क्योकि चेहरे पर विभिन्न बिन्दुओं के दबाने से शरीर के बहुत से अंगो के रोग ठीक किये जा सकते है। चेहरे पर विभिन्न प्रतिबिम्ब केन्द्रों को दबाव देकर की जाने वाली चिकित्सा **Face Reflexology** है।

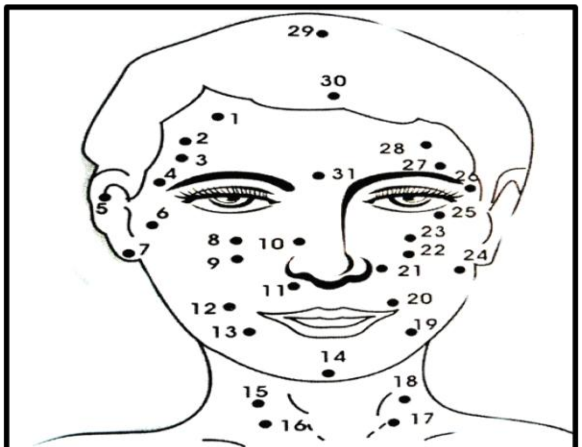

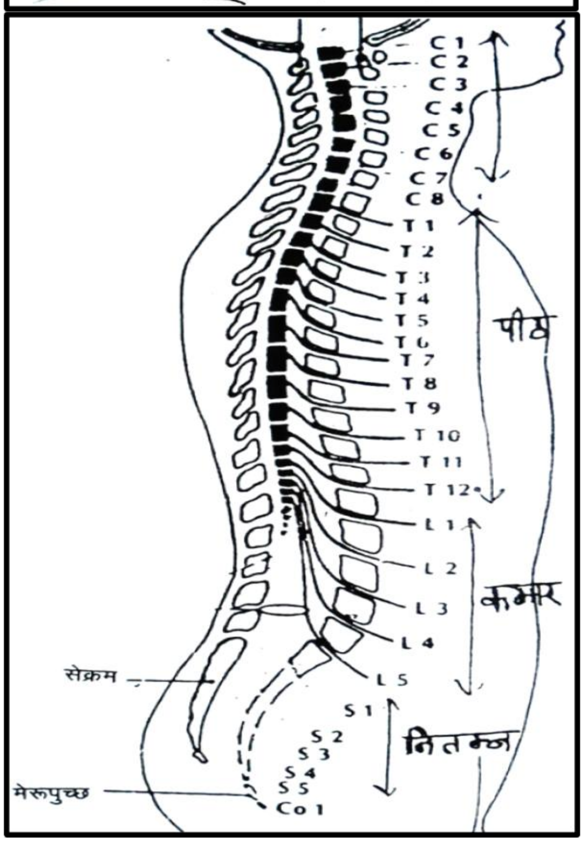

5 – स्पाइन रिफ्लेक्सोलोजी – (Spine Reflexology) – हमारी मेरूदण्ड 33 कशेरूकाओ **(Vertebrac)** से निर्मित है। इन विभिन्न कशेरूकाओ से सम्बधिंत अंगो पर प्रभाव पडता है, तथा उस अंग मे उत्पन्न विकार का उपचार दबाव देकर किया जा सकता है।

5.4.2 – एक्युप्रेशर पद्धति की प्रयोग विधि – प्रिय विद्यार्थियो अभी आपने विभिन्न एक्युप्रेशर पद्धतियॉ व उनके सिद्धान्त का अध्ययन किया, अब एक्युप्रेशर पद्धति में प्रयुक्त प्रतिबिम्ब केन्द्रो का अध्ययन करें –

- **प्रतिबिम्ब केन्द्र –**

एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति आधार प्रेशर (Pressure) तथा गहरी मालिश है। एक्युप्रेशर चिकित्सको का मानना है कि दबाव के साथ मालिश करने से रक्त संचार ठीक हो जाता है। जिस कारण शरीर की शक्ति बड़ जाती है, तथा शरीर मे स्फूर्ति आती है। शरीर मे रक्त संचार सुचारू रूप से होने से शरीर के विभिन्न अंगो मे जमा हुये अवाछनीय पदार्थ, पसीने, मल व मूत्र के द्वारा शरीर से बाहार निकल जाते है। जिससे शरीर निरोग होता है। यह एक्युप्रेशर या गहरी मालिश साधारण प्रकार की मालिश नही है। एक्युप्रेशर (गहरी मालिश) से तात्पर्य पैरो, हाथों, चेहरे तथा शरीर के कुछ विशेष केन्द्रो पर दबाव डालना। इन विशेष केन्द्रो को ही रिफ्लेक्स सैन्टर (Reflex Centres) या रिस्पान्स सैन्टर (Response Centres) कहते है। रिफ्लेक्स सैन्टर या सैन्टर को ही हिन्दी मे प्रतिबिम्ब केन्द्र कहा जाता है। रोग की अवस्था में इन प्रतिबिम्व केन्द्रो पर दबाव देने पर दर्द महसूस होता है। ये प्रतिबिम्व केन्द्र बहुत ही नाजुक (Highly Sensitive) होते है। प्रत्येक रिस्पान्स केन्द्रो का आकार मटर के दाने के बराबर होता है। यह रिस्पान्स केन्द्र पैरो, हाथो, चेहरे तथा शरीर के खास केन्द्र पर होते है। प्रिय विद्यार्थियो इन प्रतिबिम्ब केन्द्रो से रोगो का पता कैसे चलता है। यह अध्ययन करना आवश्यक है। अतः इन केन्द्रो से रोग का पता कैसे चलता है, आइये अध्ययन करें –

- **रोग का दर्पण प्रतिबिम्व –**

प्रिय विद्यार्थियो इन प्रतिबिम्ब केन्द्रो को रोग का दर्पण कहा जाता है। एक्युप्रेशर द्वारा विभिन्न प्रतिबिम्ब केन्द्रो की जॉच करने से आसानी से पता लग जाता है। कि शरीर के कौन से अंग अपना कार्य सुचारू रूप से नही कर पा रहे है। या शरीर के किस भाग में कोई रोग है, या रूकावट है।

प्रिय विद्यार्थियो कई बार आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रयोगशाला के परीक्षण (Laboratory test) भी रोग का सही–सही पता नही लगा पाते है। परन्तु प्रतिबिम्ब केन्द्रो के परीक्षण द्वारा कुछ ही मिनटो में यह पता लग जाता है कि किस अंग में कोई विकृति है। तथा रोग का असली कारण क्या है। क्योकि यह प्रतिबिम्ब केन्द्र दबाने पर दर्द करते है। दर्द करने वाले केन्द्रो से सम्बन्धित अंग ही रोग ग्रस्त होते है।इन प्रतिबिम्ब केन्द्रो को दबाने पर रोग का पता लग जाता है। इसलिए प्रतिबिम्ब केन्द्रो को रोग का दर्पण कहा जाता है।

प्रतिबिम्व केन्द्रो की जॉच – प्रिय विद्याार्थियो एक्युप्रेशर चिकित्सा देने से पहले प्रतिबिम्ब केन्द्रो की जॉच कर लेना आवश्यक है। आइये जाने कि प्रतिबिम्ब केन्द्रो की जॉच कैसे होती हैं –

प्रतिबिम्ब केन्द्रो की जॉच करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस प्रकार सभी व्यक्तियो के शरीर रचना, आकार, प्रकार समान नही होता है। उसी प्रकार प्रतिबिम्ब केन्द्रो का स्थान भी हाथो, पैरो की आकृति के अनुसार थोड़ा बहुत ऊपर–नीचे दाये–बॉये हो सकते है। प्रिय विद्यार्थियो प्रत्येक प्रतिबिम्ब केन्द पर ना तो बहुत अधिक जोर से ही ना ही बहुत धीरे से प्रेशर देकर जॉच करनी चाहिए। यदि किसी केन्द्र पर प्रेशर देने से रोगी असहनीय दर्द अनुभव करता है, तो समझना चाहिए कि उस प्रतिबिम्ब केन्द्र से सम्बन्धित अंग से कोई विकार है। या यह समझना चाहिए कि वह अंग अपना कार्य सुचारू रूप से नही कर रहा। जिन केन्द्रे पर प्रेशर देने से रोगी को दर्द का अनुभव नही हो, तब यह समझना चाहिये कि वे अंग अपना कार्य ठीक से कार्य कर रहे है। यह प्रतिबिम्ब केन्द्र पैरो तथा हाथों पर होते हैं पैरो व हाथो के सभी केन्द्रो पर दबाब देकर जॉच करनी चाहिए।

प्रिय विद्यार्थियो एक्युप्रेशर चिकित्सा देने के लिए सर्वप्रथम एक एक्युप्रेशर चार्ट लेना चाहिए। अब हाथो व पैरो के केन्द्र जो प्रेशर देने से दर्द करते है। उन प्रेशर केन्द्रो की सूची बना लेनी चाहिए। तथा एक्युप्रेशर रोग उपचार चार्ट में जो केन्द्र दर्द करें उन्हे चार्ट में अंकित करें (निशान लगा लें)। चार्ट में लगाये गये निशानो के आधार पर प्रतिदिन प्रेशर देना चाहिए। इस प्रकार किसी रोग विशेष को जानने के लिए बार –बार हाथ व पैरो के प्रतिबिम्ब केन्द्रो की जॉच नही करनी पड़ती है। रोगी अपने हाथ तथा पैरो में इन केन्द्रो की परीक्षा स्वयं भी कर सकता है। किसी अन्य व्यक्तियो से करवा भी सकता है। प्रिय विद्याार्थियो इस पद्धति द्वारा रोग के निवारण में कितना समय लगता है, यह व्यक्ति व रोग पर निर्भर करता है। परन्तु इतना आवश्य है कि इस पद्धति द्वारा पूर्णकालिक आराम ना मिले तो अंशकालिक आराम अवश्य मिलता है।

दबाव के प्रकार –प्रिय विद्यार्थियो इससे पूर्व आपने प्रतिबिम्ब केन्द्रो की जॉच का अध्ययन किया अब आपके मन में प्रश्न उठ रहे होगे कि –

इन प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर कैसे दिया जाये। तथा प्रेशर (दबाव) कितने प्रकार से दिया जाये। प्रिय विद्यार्थियो एक्युप्रेशर चिकित्सा में दबाव रोगी की सहन शक्ति व अंग विशेष पर निर्भर करता है। परन्तु प्रेशर शुरू–शुरू में हल्के–हल्के देना चाहिये तथा बाद में धीरे–धीरे बड़ाना चाहिए। एक्युप्रेशर चिकित्सा में कोमल अंगो पर धीरे से ॲगुलियो, अगूठों से दबाव देना चाहिए। ॲगूठे, ॲगुलियो व हथेली द्वारा दबाव (Pressure) देने के विभिन्न प्रकार निम्न है –

1) सामान्य दाब – रोगी के शरीर पर अगूठे व ॲगुली से उतना ही दबाव देना चाहिए जितना रोगी सहन कर सके।

2) दो ॲगुलियो से दबाव – एक ॲगुली के ऊपर दूसरी ॲगुली रखकर फिर दोनो ॲगुली सक दबाव देना चाहिए।

3) हथेली से दबाव – रोग विशेष की स्थिति में हथेली से दबाव दिया जा सकता है। एक हथेली के ऊपर दूसरी हथेली रख कर दबाव देना चरहिए , तथा पूरे रूारीर पर दोनो हथेलियो द्वारा दबाव दिया जा सकता है।

4) रोटेटिंग – अंगूठे या जिम्मी द्वारा किसी एक दिशा मे घूमाते हुए दबाव देना चाहिए। यह दबाव दो प्रकार से होता है।

(a) **घड़ी की दिशा के अनुसार – (Clock wise)** – किसी भी अंग की ऊर्जा बड़ाने के लिए घड़ी की सूई की दिशा में दबाव दिया जाता है।

(b) **घड़ी के विपरीत दिशा में दबाव** – किसी भी अंग की बड़ी हुई ऊर्जा घटाने के लिए, उस अंग की क्रिया को मन्द करने के लिए घड़ी की विपरीत दिशा में दबाव दिया जाता है।

5) पुश एण्ड पुल – किसी प्रतिबिम्ब केन्द्र पर दबाव देना व छोड़ना तथा इसी क्रिया को दोहराना पुश एण्ड पुल है।

6) स्टेडी एण्ड डीप – किसी प्रतिबिम्ब केन्द्र पर लगातार दबाव देना।

7) माउटिंग – प्रतिबिम्ब केन्द्र पर ऊपर ॲगूठा रख कर दबाव देना।

8) लाइडिंग – अंगूठे या ॲगूली या जिम्मी द्वारा सरकाते हुए दबाव देना लाइडिंग है।

9) राबिंग – किसी प्रतिबिम्ब केन्द्र को घिसते हुए दबाव देना।

10) प्लकिंग – किसी प्रतिबिम्ब केन्द्र पर हल्का पड़ते हुए जैसे फूल चुनते हैं, इस तरह दबाव देना प्लकिंग है।

प्रिय विद्यार्थियो अभी तक आपने एक्युप्रेशर चिकित्सा में प्रयुक्त दबाव के विभिन्न प्रकारो का अध्ययन किया। अब आप एक्युप्रेशक चिकित्सा में उपयोगी विभिन्न उपकरणो का अध्ययन करेंगे।

5.5 – एक्युप्रेशर उपकरण

प्रिय विद्यार्थियो एक्युप्रेशर चिकित्सा में हाथों कि अंगुलियॉ, ॲगूठे तथा हथेलियो द्वारा दबाव देकर चिकित्सा की जाती है। परन्तु रोगियो की संख्या अधिक हो तो ऐसी स्थिति में चिकित्सक की अंगुलियों व ॲगूठे में दर्द होने की सम्भावना रहती है। वही यदि रोगी स्वयं ही एक्युप्रेशर दे रहा हो तो बहुत से स्थानो पर प्रेशर नही दे पाता है। इन्ही कारणो को ध्यान में रखते हुए एक्युप्रेशर के उपकरणो का निर्माण किया गया है। ये उपकरण प्रायः लकड़ी व प्लास्टिक के बने होते है। इनमें से कुछ प्रमुख उपकरणों का विवरण मुख्य है –

1) जिम्मी (Jimmee) – इस उपकरण का आकार आगे की ओर शंकु जैसा होता है। जिम्मी धातु एवं लकड़ी की बनी होती है। इसका प्रयोग प्रतिबिम्ब केन्द्रो को खोजने एवं उसके उपचार के लिए किया जाता है।

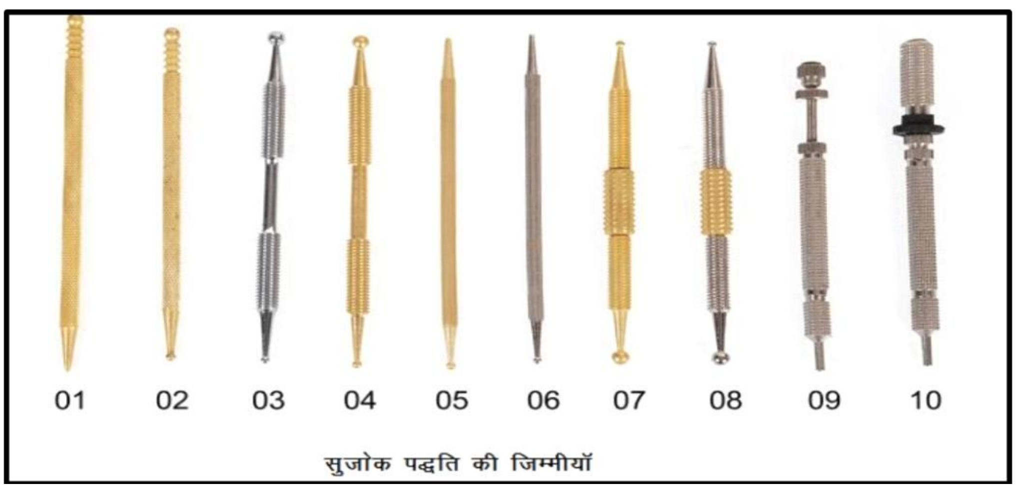

आकृति न0 12

2) रोलर (Rollar) – रोलर तीन प्रकार के होते है।

- **Hand Rollor**
- **Foot Rollor**
- **Spine Rollor**

Hand Rollor – यह लकड़ी का बना करेले की आकृति का यन्त्र है। इसका प्रयोग हथेली के सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब केन्द्रो को खोजने एवं उसके उपचार के लिए किया जाता है।

आकृति न0 13

Foot Rollor – यह उपकरण लकड़ी का बना काटेदार आकृति लिए हुए है। इसका प्रयो पैरो (तलवे) के एक्युप्रेशर पॉइन्टस को जाग्रत करने के लिए करते है। इस पर पैर रख कर आगे पीछे घुमाते है। यह साइटिका, किडनी एवं कब्ज के रोग के लिए विशेष लाभप्रद है।

आकृति न0 14

Spine Rollor – यह लकड़ी का बना हुआ चार पहिये वाला उपकरण होता है। इसके ऊपर एक पकड़ने के लिए दस्ता भी लगा रहता है। इस उपकरण को इस प्रकार चलाया जाता है कि दोनो पहियो के बीच मेरूदण्ड़ रहे। इसका प्रयोग पीठ के सम्पूर्ण सादृश्य विन्दुओ के उपचार के लिए किया जाता है। यह साइटिका, कमर दर्द व किडनी के रोग के लिए विशेष उपयोगी है।

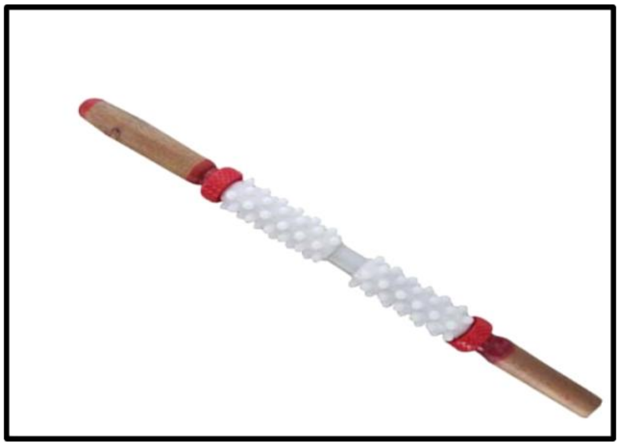

आकृति न0 15

3) मसाजर (Massager) – यह तीन प्रकार के होते है।

- **Face Massager**
- **Finger Massager**
- **Silf Massager**

Face Massager – यह लकड़ी का बना हुआ काटेदार व बेलनाकार आकृति का यत्रं है। इस उपकरण का प्रयोग साहश्य बिन्दुओं के उपचार के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग कील मुहासो, छाई, एंव गोरेपन के लिए किया जाता है।

आकृति न0 16

Finger Massager – यह लोहे की तार परबनी हुयी आकृति का उपकरण है। इसका प्रयोग हाथ व पैर के सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब केन्द्रो के उपचार के लिए हाथ व पैर की अगुलियों पर किया जाता है। यह गठिया व वात जनित रोगो के लिए लाभप्रद है।

आकृति न0 17

Silf Massager – इस उपकरण में माला के रूप में पहियों की जोडिया पिरोयी होती है। इस माला के दोनो छोर दोनो हाथो मे लिया जाता है। तथा पीठ, गर्दन, कमर, पेट, आदि पर आगे पीछे चलाया जाता है। इस प्रकार इन भागों की मालिस की जाती है।

आकृति न0 18

4) Magic Ball – यह लकड़ी की बनी हुयी काटेदार गोलाकार ball इसे जादुयी गेंद भी कहा जाता है। इसका प्रयोग पेट व फेफड़े के सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब केन्द्रो के उपचार के लिए किया जाता है। कब्ज, अस्थमा, मधुमेह व पाचन सम्बन्धी रोगों मे लाभप्रद है।

आकृति न0 19

5) पिरामिड पट्टा – इस उपकरण में लकड़ी के पट्टे पर प्लास्टिक के पिरामिड बने होते है। यह उपकरण सबसे उपयोगी उपकरण है। इस उपकरण के द्वारा पैरो के तलवो के सभी प्रमिबिम्ब केन्द्रो पर दबाव पड़ता है। इस उपकरण से पीठ दर्द, जोड़ो का दर्द, मधुमेह, साटिका, अनिद्रा तथा मोटापा रोग दूर होते है।

आकृति न0 20

6) एक्यू प्वाईंट पैन – यह अत्याधुनिक बिन्दु दाब पैन सैलोद्वारा संचारित होता है। इस पैन में सोने, चादी, लोहे या प्लास्टिक की नोक लगी होती है। पैन को सैलो द्वारा संचालित करके मेग्नेटिकवाइब्रेशन उत्पन्न की जाती है। मेग्नेटिक बाइब्रेसन से एक्यु बिन्दुओ को संवेदित किया जाता है।

आकृति न0 21

7) नर्व फोर्स मशीन – यह मशीन बड़े, मध्यम तथा पाकेट साइज, तीन प्रकार की हैं। इस मशीन के द्वारा भी विभिन्न एक्युप्रेशर प्वाइन्ट को संवेदित करने के लिए प्रयोग किया जाता

है। इलेक्ट्रो मेग्नेटो तरंगे उत्पन्न कर उसे तारो द्वारा शरीर के दाब बिन्दुओ तक पहुॅचाया जाता है।

आकृति न0 22

इस प्रकार एक्युप्रेशर चिकित्सा में स्वयं हाथ से या एक्युप्रेशर के उपकरणों द्वारा प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर दबाव दिया जाता है। ये उपकरण शारीरिक व मानसिक सभी रोगो को दूर करने में समर्थ है। कुछ उपकरणों के द्वारा रक्त संचार सुचारू होता है। जिससे व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ ले सकता है।

अभ्यास प्रश्न –

1– सत्य/असत्य –

क. शरीर रोगी तब होता है, जब शरीर में विजातिय पदार्थ एकत्र हो जाते है।
ख. प्रतिबिम्ब केन्द्रो को रोगो को दर्पण कहा जाता है।
ग. सुजोक पद्धति के आविष्कारक हिप्पोक्रेट्स है।
घ. शियात्सु एक प्रकार से पेशियो की मालिश है।

2– रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए।

क. सेल्फ मसाजर (Self massager) में माला के रूप में...................... पिरोयी होती है।
ख. हेन्ड रोलर (Hand Rollar) ....आकृति का यन्त्र है।
ग. एक्यु प्वाइन्ट पैन...................... द्वारा संचालित होता है।
घ. किसी प्रतिबिम्ब केन्द्र को घिसते हुए दबाव देना...................... है।

3– बहुविल्पीय प्रश्न –

क. शिआत्सु पद्धति में 'शि' का अर्थ है।
(अ) ॲगुली **(ब)** दबाव
(स) हाथ **(द)** पैर

ख. प्रतिबिम्ब केन्द्रो को कहा जाता है।
(अ) रिफ्लेक्स सेन्टर **(ब)** अ व स दोनो

(स) रिस्पोन्स सेन्टर **(द)** इनमें से कोई नही

ग. जोन थेरेपी में शरीर को लम्बाई में कितने भागो में बॉटा जाता है।

(अ) 12 **(ब)** 10

(स) 6 **(द)** 8

घ. शरीर में मुख्य रूप से कितने मेरीडियन्स होते है।

(अ) 10 **(ब)** 6

(स) 14 **(द)** 4

5.6 — सारांश

प्रिय विद्यार्थियो प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप को स्पष्ट हो गया होगा कि एक्युप्रेशर चिकित्सा सबसे प्राचीन तथा प्रभावी चिकित्सा पद्धति है। क्योकि यह चिकित्सा पद्धति प्रकृति के नियमो पर आधारित है। एक्युप्रेशर के अनुसार मनुष्य के शरीर में ही रोग निवारण शक्ति होती है। पर इस शक्ति कर प्रयोग करने की आवश्यकता मनुष्य को होती है। इस शक्ति का प्रयोग कर मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। एक्युप्रेशर के सिद्धान्तो के अनुसार मनुष्य रोगी तब होता है, जब उसके शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्रित हो जाते है, तथा शरीर रोगी हो जाता है। एक्युप्रेशर के अनुसार रोग का मुख्य कारण शरीर के सभी अ ंगो में रक्त की आपूर्ति नही हो पाती हैं। क्योकि रक्त के माध्यम से ही सभी पौष्टिक तत्वो की आपूर्ति होती है। तथा पौष्टिक तत्व शरीर का पौषण करते है व रक्त ही अवांछिन पदार्थो को शरीर से बाहर निकाल देता है। इस प्रकार एक्युप्रेशर चिकित्सा में प्रतिबिम्व केन्द्रो पर दबाव देकर रक्त आपूर्ति द्वारा शरीर निरोग होता है। एक्युप्रेशर चिकित्सा विभिन्न पद्धतियो द्वारा दी जाती है। प्रत्येक पद्धति में दबाव देकर ही चिकित्सा की जाती है। हाथो की ॲगुलियो द्वारा व उपकरणो द्वारा प्रतिबिम्व केन्द्रो पर दबाव देकर की जाने वाली चिकित्सा पद्धति एक्युप्रेशर एक सरल व सहज चिकित्सा पद्धति है।

5.7 — पारिभाषिक शब्दावली —

- पौराणिक — प्राचीन
- आपूर्ति — पूर्ति करना
- अवांछनीय — त्याज्य पदार्थ
- पंच तत्व — पॉच तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)
- मेरीडियन्स — वह नाड़ीयॉ जिससे ऊर्जा प्रवाहित होती है
- रिफ्लेक्स सेन्टर — प्रतिबिम्व केन्द्र
- रिस्पान्स सेन्टर — प्रतिबिम्व केन्द्र

5.8 — अभ्यास प्रश्नो के उत्तर —

1— क. सत्य **ख.** सत्य

ग. असत्य **घ.** सत्य

2— क. पहियो की जोड़ियॉ **ख.** करेले की

ग. सैलों **घ.** रबिंग

3— क. अ **ख.** ब

ग. ब **घ.** स

5.9 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 – सिंह अत्तर, (2005), एक्युप्रेशर। एक्युप्रेशर हेल्थ सेन्टर चंड़ीगढ।
2 – गहराना वाइ0 डी0 (1998), इण्टर नेशनल एक्युप्रेशर। सुमित प्रकाशन आगरा।
3 – कल्याण आरोग्य अंक, गीता प्रेस गोरखपुर।
4 – गुर्वेन्द्र अमृत, (20013), एक्युप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग। ड्रोलिया पुस्तक भण्डार हरिद्वार।

5.10 – सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री

1 – विवेक आर, एस, (2004) वैकल्पिक चिकित्सा। डायमंड पाकेअ बुक्स नई दिल्ली।

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1 – एक्युप्रेशर के सिद्धान्तो को स्पष्ट कीजिए।
2 – एक्युप्रेशर पद्धति में रोग का दर्पण प्रतिविम्ब केन्द्र है, स्पष्ट कीजिए।
3 – एक्युप्रेशर चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियो का सविस्तार वर्णन कीजिए।
4 – एक्युप्रेशर के विभिन्न उपकरणो का सचित्र वर्णन करें।

इकाई 6 एक्यूप्रेशर द्वारा विभिन्न रोगो का उपचार, लाभ, सावधानियॉ

6.1 – प्रस्तावना

6.2 – उद्देश्य

6.3 – एक्यूप्रेशर द्वारा विभिन्न रोगो का उपचार

6.3.1 – श्वसन संस्थान के रोग

6.3.2 – ह्रदय तथा रक्त संचार के रोग

6.3.3 – पाचन तन्त्र के रोग

6.3.4 – आखों के रोग

6.3.5 – गले के रोग

6.4 – एक्यूप्रेशर चिकित्सा के लाभ

6.5 – एक्यूप्रेशर चिकित्सा की सावधानियॉ

6.6 – सारांश

6.7 – पारिभाषिक शब्दावली

6.8 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.9 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.10 – सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री

6.11 – निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 – प्रस्तावना –

प्रिय पाठको, मनुष्य जीवन का मुख्य आधार है, प्राण शक्ति। यह प्राण शक्ति जिसे हम प्राण ऊर्जा, जीवन शक्ति, आधार शक्ति आदि नामो से जानते है। यह शक्ति सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित होती रहती है। हमारे शरीर में यह शक्ति विभिन्न चैनल के माध्यम से संचारित होती रहती है। यदि हमारे शरीर में इस ऊर्जा के संचरण में कमी आ जाए तो शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है, तथा शरीर में अनेको रोग उत्पन्न होने लगते है। रोग होने की स्थिति में मनुष्य कोई भी कार्य सही ढ़ग से सम्पादित नहीं कर पाता है। स्वयं के लिए, समाज के लिए उपयोगी नही रह पाता है। अतः स्वास्थ्य को बनाये रखना व्यक्ति का निजी तथा पारिवारिक हित है। स्वस्थ व्यक्ति ही समाज के लिए, राष्ट्र के लिए हितकारी है।

प्रिय विद्यार्थियो मनुष्य रोगी तब होता है। जब मनुष्य स्वयं ही लापरवाही से गलत आहार – विहार करता है। अस्वच्छता, असन्तुलित आहार, हानिकारक पदार्थो को सेवन, अनियमित दिनचर्या, मानसिक तनाव, व्यायाम व प्राकृतिक संसाधनो के न अपनाने के कारण मनुष्य रोगी होता है। गलत आहार – विहार के कारण ही मनुष्य के तीन दोष (वात, पित्त, कफ) प्रकुपित होते है, असन्तुलित होते है। इसी असन्तुलन के कारण ही शरीर रोगी होता है।
दूसरी अवस्था में मनुष्य रोगी तब होता है। जब मनुष्य अपनी लापरवाही के कारण नही बल्कि प्रदुषित वातावरण, संक्रमण, चोट आदि के कारण, वृद्धावस्था तथा कुछ आनुवांशिक के कारण रोगी होते है। रोग के उपचार के लिए सबसे सरल व सहज चिकित्सा पद्धति यदि है तो वह एक्युप्रेशर ही है। प्राचीन काल से आज तक अनेको चिकित्सा पद्धतियॉ प्रचलित हुयी परन्तु सबसे पुरानी चिकित्सा पद्धति एक्युप्रेशर अधिक प्रभावी चिकित्सा पद्धति है। जिससे रोग निवारण सहज ही हो जाता है।

6.2 – उददेश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- एक्युप्रेशर के द्वारा विभिन्न रोगो के उपचार को समझ सकेंगे।
- एक्युप्रेशर चिकित्सा के लाभ को समझा सकेंगे।
- एक्युप्रेशर चिकित्सा की सावधानियों को समझ सकेंगे।
- एक्युप्रेशर चिकित्सा की सीमाओ को समझ सकेंगे।

6.3 – एक्यूप्रेशर द्वारा विभिन्न रोगो का उपचार –

प्रिय विद्यााथिर्यों एक्युप्रेशर चिकित्सा अनेक प्रकार के रोगों का उपचार करने में समर्थ है। अनेक पुराने रोग जो किसी अन्य पद्धति से दूर नहीं हो पा रहे हो, एक्युप्रेशर द्वारा थोड़े ही समय में दूर हो जाते है।
एक्युप्रेशर चिकित्सा दिये जाने पर यह बात महत्वपूर्ण है कि उपचार करने से पूर्व रिफ्लेक्स केन्द्रों की जॉच भली – भॉति कर ली जाए, तथा सही तरीके से प्रेशर दिया जाए। इस पद्धति द्वारा चिकित्सा किये जाने पर कितना समय लगता है, यह रोग व व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है। लेकिन कुछ समय तक लगातार प्रेशर देने से केवल कुछ ही दिनो में पुराने रोग भी दूर हो जाते है। एक्युप्रेशर द्वारा रोग निवारण हेतु कुछ प्रतिबिम्ब केन्द्रो व रोगो का वर्णन निम्न है –

6.3.1 – श्वसन संस्थान के रोग –

(1). साइनोसाइटिस – संक्रमण के कारण सर्दी लम्बे समय तक बने रहने की स्थिति में वह रोग साइनस में परिवर्तित हो जाता है। जो गाल व माथे में सूजन, श्वास लेने में परेशानी, सिर में भारीपन के रूप में सामने आता है।
साइनोसाटिस का एक्युप्रेशर द्वारा उपचार – एक्युप्रेशर चिकित्सा में जुकाम व साइनोसाइटिस आदि रोगियो को एक्युप्रेशर पद्धति द्वारा बहुत जल्दी आराम मिल जाता है। इस पद्धति द्वारा वर्षो पुराने रोग भी ठीक हो जाते है।

साइनस के प्रतिविम्ब केन्द्र दोनो पैरो तथा दोनो हाथो की सभी ॲगुलियों के अग्रभाग (Tips) में होते है। इन प्रतिविम्ब केन्द्रो की स्थिति व प्रेशर देने का ढंग निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट होते है।

साइनोसाटिस के प्रमुख प्रतिविम्ब केन्द्र –

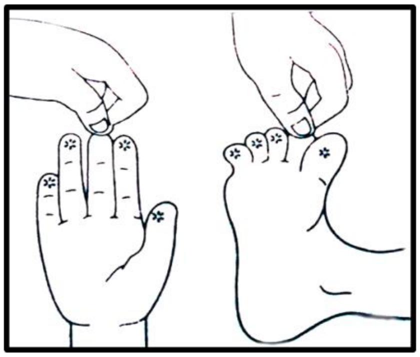

आकृति न0 1

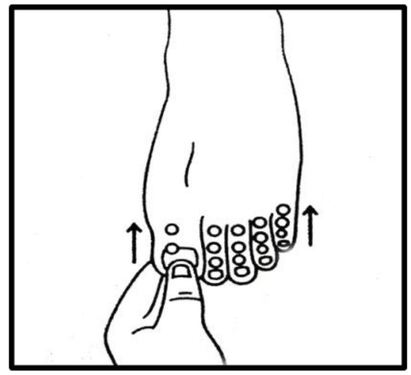

आकृति न0 2

इन प्रतिविम्ब केन्द्रो में निम्न प्रकार से प्रेशर देकर रोग को दूर किया जा सकता है।

सहायक प्रतिबिम्ब केन्द्र – प्रिय पाठ्को साइनस के प्रमुख केन्द्रो पर प्रेशर देने के अतिरिक्त पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pituitary gland), आड्रेनल ग्रन्थि (Adrinal gland), लसीका तन्त्र (Lymphatic system) तथा स्नायु संस्थान (Nervous system) से सम्बन्धित तथा गर्दन वाले भाग से सम्बन्धित प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहिए। जैसा की आकृति न0 3, 4, 5 और 6 में दिखया गया है।

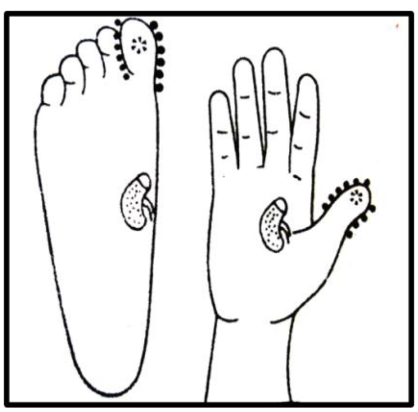

आकृति न0 3

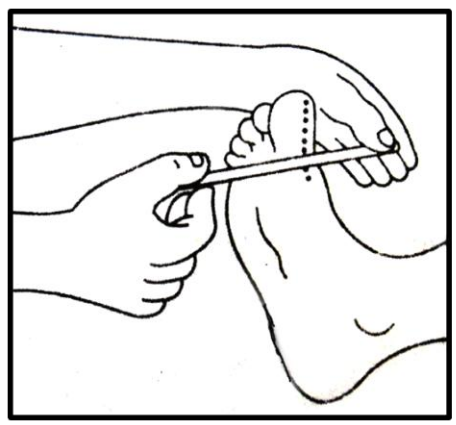

आकृति न0 4

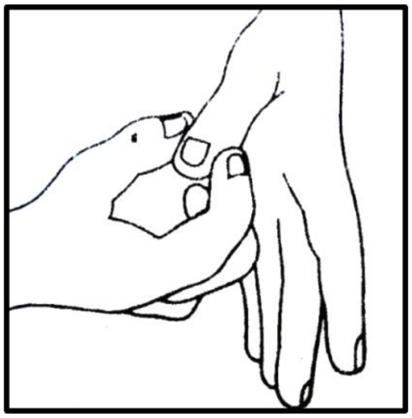

आकृति न0 5

आकृति न0 6

(2). ब्रोकाइटिस (Bronchitis) – यह मुख्य श्वास नली एवं इसकी शाखाओं के संक्रमण तथा सूजन को कहते है। यह अल्प कालीन (एक्यूट) तथा लम्बे समय तक रहने वाले पुराने रोग (क्रॉनिक) दोनो प्रकार का पाया जाता है।

(3). दमा – दमा अथवा अस्थमा एक कष्टप्रद रोग है। इस रोग में बार – बार फेफड़ो की श्वसन नलियो में आकुंचन होता है। जिस कारण सॉस लेने में परेशानी होने लगती है। इसमे खॉसी तथा दम घुटने की अनुभूति इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते है। ब्रोंकाइटिस तथा दमा से सम्बधिंत प्रेशर पाइंटस आकृति न0 7, 8, 9, 10, 11, 12 मे दिखाऐ गये है।

ब्रोकाइटिस तथा दमा व अन्य श्वसन रोगो का एक्युप्रेशर द्वारा उपचार –

आकृति न0 7

आकृति न0 8

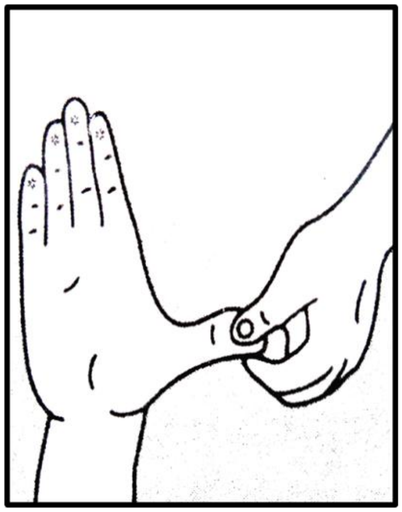

आकृति न0 9

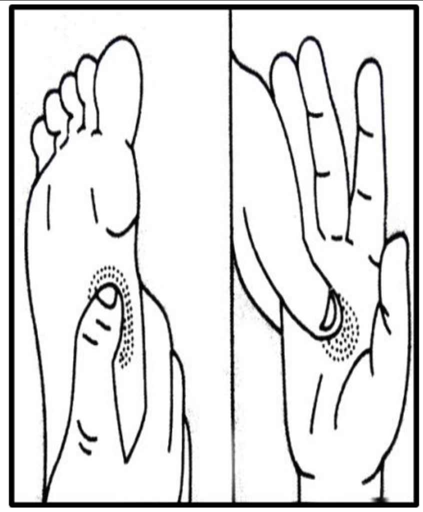

आकृति न0 10

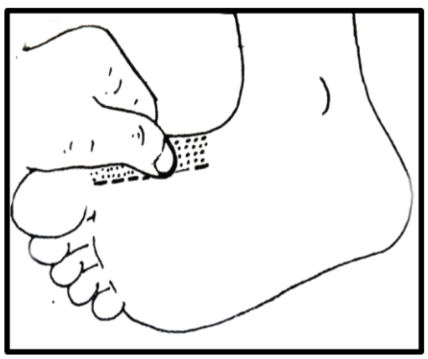

आकृति न0 11

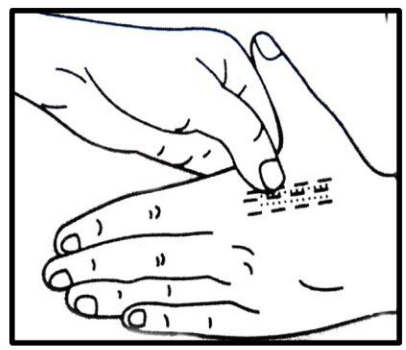

आकृति न0 12

6.3.2 – हृदय तथा रक्त संचार के रोग –

(1). उच्च रक्त चाप (High Blood pressure) – मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर में रक्त परिभ्रमण में धमनियों (Arteries) और शिराओ (Veins) की भूमिका महत्वपूर्ण है। धमनियॉ शरीर में शुद्ध रक्त पहुँचाने का कार्य करती है। शिराए शरीर का अशुद्ध रक्त हृदय तक पहुचाती है। धमनियो व शिराओ में जो रक्त का प्रवाह होता है, उसे रक्त चाप कहते है। जब रक्त के प्रवाह का दबाव सामान्य से अधिक हो जाता है। जिसे उच्च रक्त चाप कहा जाता है।

लक्षण – हृदय की धड़कन बड़ जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा, थकावट, कमजोरी, गर्दन पर ठण्डा, पसीना आदि इसके लक्षण है।

कारण – अधिक मोटापा क्रोध, मानसिक तनाव, नशीले पदार्थो का सेवन, किडनी के विकार आदि के कारण उच्च रक्त चाप हो सकता है।

एक्युप्रेशर द्वारा उपचार – दोनो हाथो तथा बाजुओ में हार्ट मेरिडियन्स के केन्द्र है जैसा कि आकृति नम्बर 13 – 14 में दिखाया है।

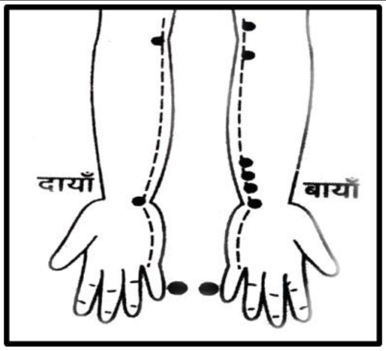

आकृति न0 13

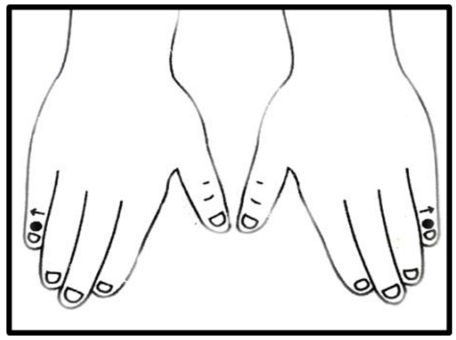

आकृति न0 14

इन केन्द्रो पर 5–7 सेकेन्ड प्रति केन्द्र पर तीन बार प्रेशर देना चाहिए।

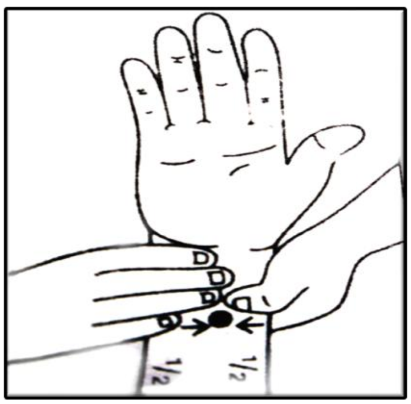

आकृति न0 15

आकृति न0 16

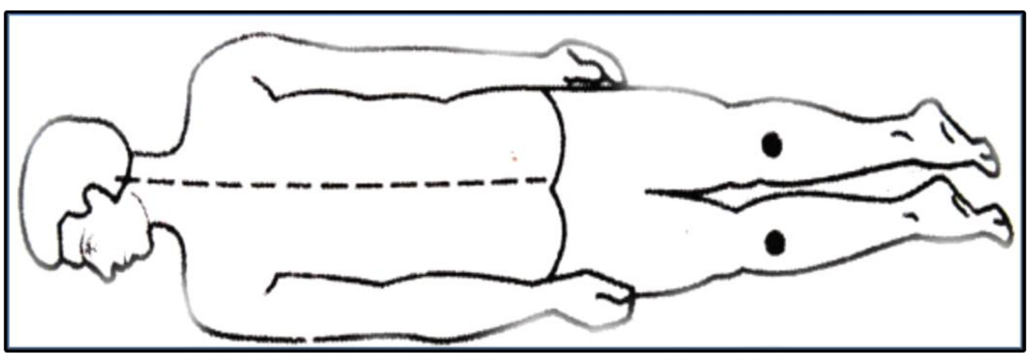

आकृति न0 17

आकृति नम्बर 15–16 में प्रेशर तीन बार 2 सेकेन्ड के लिए देना चाहिए। आकृति 17 में हल्का प्रेशर दिन में 3 बार देना चाहिए।

हाई ब्लड प्रेशर के अन्य प्रतिबिम्ब केन्द्र – इन केन्द्रो पर (आकृति न0 18–19) पर कुछ सेकेन्ड के लिए हल्का प्रेशर देना चाहिए।

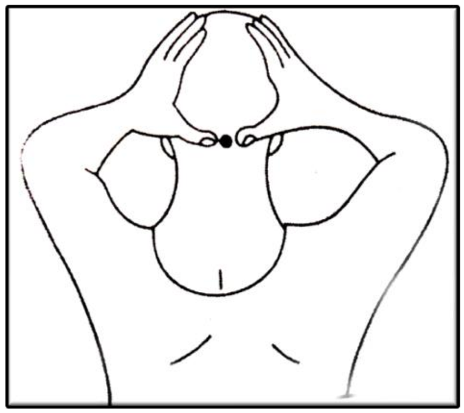

आकृति न0 18

आकृति न0 19

आकृति न0 20

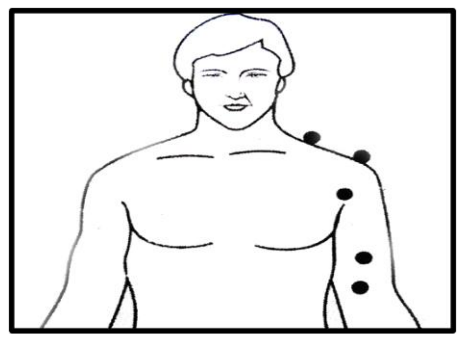

आकृति न0 21

आकृति नम्बर 20–21 पर प्रेशर कुछ सेकेन्ड देना चाहिए, जिससे रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है।

(2). निम्न रक्त चाप (Low Blood pressure) – जब रक्त परिभ्रमण संस्थान में किसी प्रकार की विकृति आने पर रक्त के प्रवाह का दबाव सामान्य से कम हो जाता है, जिसे निम्न रक्त चाप कहते है।

लक्षण – लो ब्लड प्रेशर के रोगियो को घबराहट, छाती में जकड़न, चक्कर आना, कमजोरी, थकान, सिरदर्द आदि लक्षण प्रकट होते है।

कारण – निम्न रक्त चाप के कई कारण हो सकते है। किसी शारिरिक कमजोरी, ह्रदय की बिमारी, क्षय रोग, काफी समय तक बिमार रहने से, पौष्टिक आहार की कमी, श्रम की अधिकता, अनियमित जीवन शैली आदि कारण हो सकते है।

एक्युप्रेशर द्वारा निम्न रक्त चाप का उपचार – निम्न रक्त चाप में आकृति नम्बर 22 में दिखाये गये सभी प्रतिविम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहिए।

आकृति न0 22

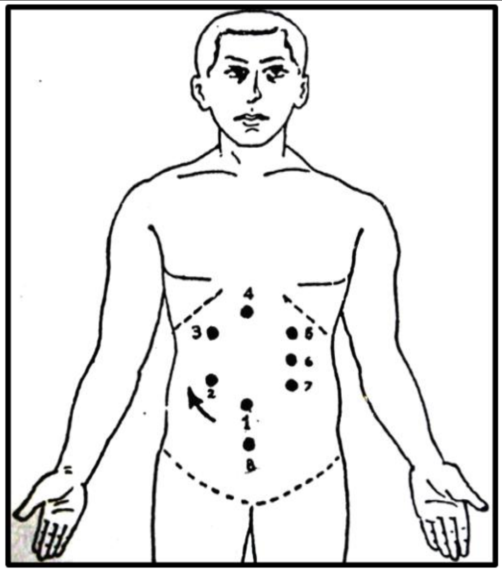

आकृति न0 23

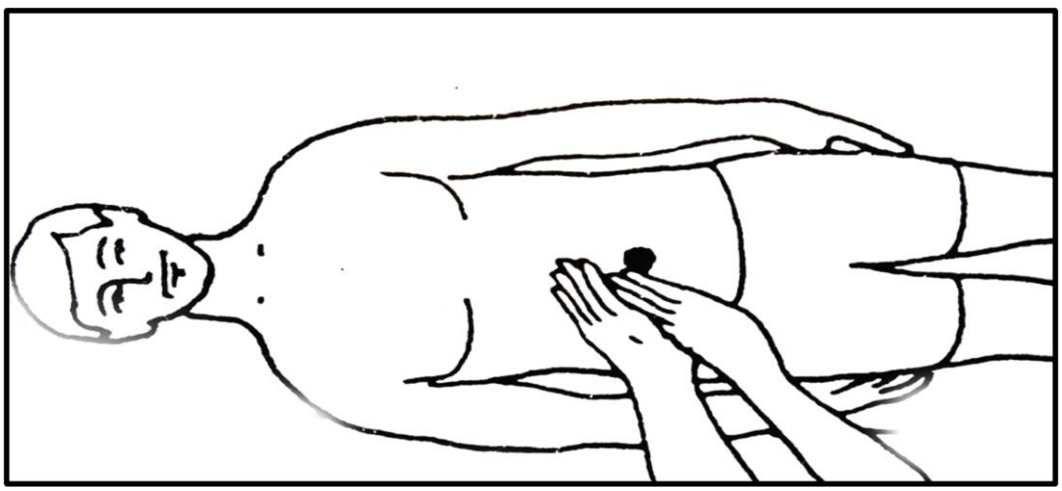

आकृति न0 24

आकृति नम्बर 23 में प्रेशर देने से शरीर में क्षीण शक्ति की प्राप्ति पुनः प्राप्त हो जाती है। ये पॉच पॉइन्टस पॉचो तत्वो (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश) का प्रतिनिधित्व करते है। इन पर प्रेशर देने से लो ब्लड प्रेशर में लाभ मिलता है। इन पर प्रेशर देने का ढंग आकृति नम्बर 24 में दिखाया गया है।

(3). अल्प कालिक हृदय शूल (Angina Pectoris) – हृदय में तीव्र पीड़ा होती है।

लक्षण – बाये हाथ, बाये कन्धे में दर्द तथा सीने में तीव्र दर्द।

कारण – रक्त संचार की कमी से।

(4). वेरीकोजवेन्स (Varicose Veins) – शिराओ का फूल जाना

लक्षण – वेरीकोज वेजन में पैरो में शिराए फूल जाती है। जिससे ज्यादा देर खड़े रहने, चलने में पैरो में दर्द होने लगता है।

कारण – भोजन में अनियमितता के कारण रक्त का विषैला होना, चोट व गलत ढंग से चलना, वैठना व खड़े रहना, अत्यधिक मोटापा इसके कई कारण हो सकता है।

एक्युप्रेशर द्वारा उपचार – वेरीकोज वेन्स के रोग में पैरो तथा हाथो में लीवर, किडनी, आड्रेनल ग्रन्थि, थायराइड तथा पेन्क्रियाज सम्बन्धी सभी केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहिए। इनके अतिरिक्त आकृति नम्बर 25 के अनुसार दोनो पैरो के बाहरी तथा भीतरी भाग पर प्रेशर देना चाहिए।

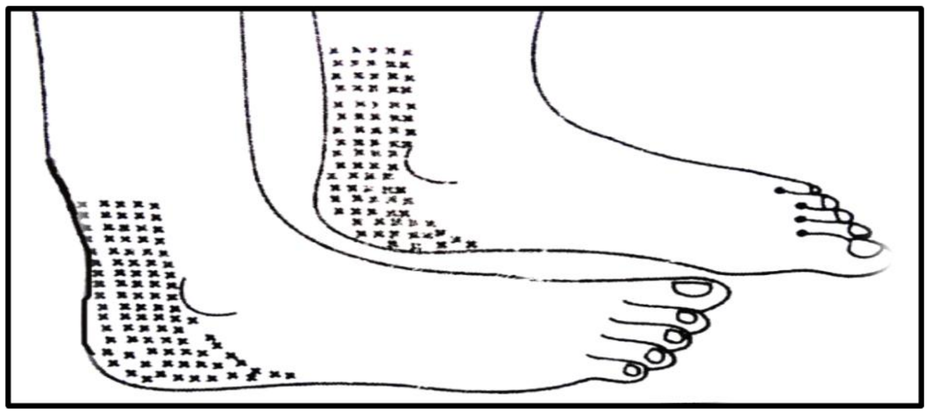

आकृति न0 25

वेरीकोज वेन्स के रोगियो को उचित आहार व्यवस्था व चिकित्स के निर्देशो का पालन कर इन प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर दबाव देना चाहिए।

प्रिय विद्यार्थियो हृदय तथा रक्त संचार सम्बन्धी रोगो का दूर करने के लिए एक्युप्रेशर अत्यन्त ही प्रभावकारी पद्धति है। परन्तु रोग होने की स्थिति में चिकित्सक के निर्देशानुसार उचित औषधियो का सेवन अत्यन्त आवश्यक है।

6.3.3 – पाचन तन्त्र के रोग – हमारे सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए एक स्वस्थ पाचन व निष्कासन संस्थान की आवश्यकता होती है। क्योकि इस संस्थान की लम्बे समय तक गड़बड़ रहने से अनेक रोग उत्पन्न होते है। पाचन संस्थान के रोगो के प्रमुख रोग है –

(1). कब्ज – कब्ज पाचन संस्थान क एक प्रमुख रोग है। इस रोग में शरीर से ठोस मल निष्कासन पूर्णतया नही हो पाता है, या धीमा हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप पाचन क्रिया के अवशेष बड़ी ऑत में एकत्रित होने लगते है। इस प्रकार शरीर में उत्सर्जित पदार्थो के सुचारू निष्कासन ना होने, एकत्रीकरण होने से शरीर रोग ग्रस्त होने लगता है।

लक्षण – कब्ज के कारण व्यक्ति को वैचेनी, पेट दर्द, जी मिचलाना, सिरदर्द, पेट में गैस का बनना आदि शिकायत होने लगती है।

कारण – कब्ज रहने के कई कारण है। कब्ज की अक्रियाशील जीवन शैली, आहार सम्बन्धी गलत आदते व उचित व्यायाम की कमी के कारण होने वाला रोग है। साथ ही कब्ज के अन्य कारणो में मानसिक अवस्था भी कब्ज का कारण बनती है। ऐसे व्यक्ति जिसकी जीवन

शैली अस्त – व्यस्त व निरूत्साहित व निष्क्रिय है, वे व्यक्ति भी कब्ज से पीड़ित पाये जाते है।

एक्युप्रेशर द्वारा उपचार – कब्ज दूर करने के लिए प्रातः काल शौच से निवृत्त होकर भूमि या चारपाई पर सीधा लेट कर नाभि से थोड़ा नीचे आकृति नम्बर 26 के अनुसार हाथो की अँगुलियो से कुछ सेकेन्ड के लिए तीन बार गहरा प्रेशर देकर शौच को जाना चाहिए। आकृति नम्बर 27 व 28 पर कब्ज दूर करने के लिए प्रेशर देना चाहिए। आकृति नम्बर 29 पर बहुत ही प्रभावी केन्द्र है। अतः रोग दूर करने के लिए कुछ सेकेन्ड सख्त प्रेशर देना चाहिए।

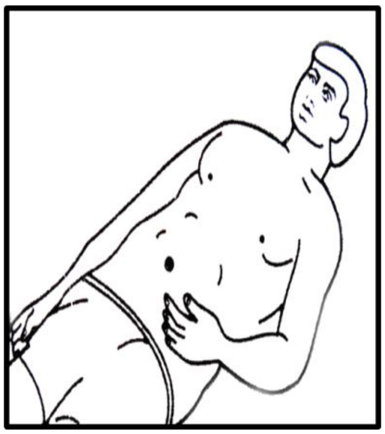

आकृति न0 26

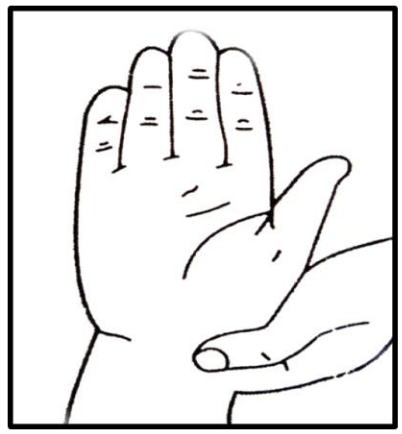

आकृति न0 27

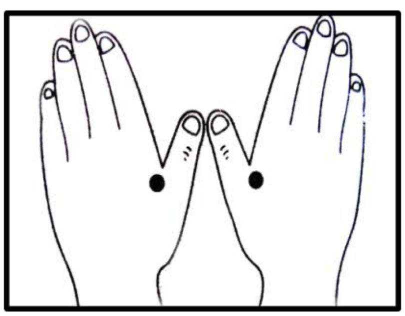

आकृति न0 28

आकृति न0 29

(2). पीलिया, कामला (Jaundice) – पलिया – कामला जिसे वैज्ञानिक भाषा में हिपेटाइटिस कहा जाता है। यह रोग यकृत की संरचना में आयी विकृति के कारण देखने में आता है। यकृत के कार्य में गड़बड़ी विभिन्न प्रकार की औषधियों, विषैले पदार्थो का अधिक सेवन तथा वाइरस के संक्रमण के कारण होता है।

लक्षण – पीलिया में ऑखे पीली, नाखून पीले दिखाई देने लगते है। मूत्र का रंग पीला होने लगता है। वजन कम होना भूख कम लगना, पेट में गैस, ज्वर व शरीर में कमजोरी आदि लक्षण होते है।

कारण – रक्त में लाल रक्त कणों की आयु 120 दिन होती है। किसी कारणवश इनकी आयु कम हो जाए तथा लाल रक्त कण अधिक मात्रा में जल्दी ही नष्ट होने लग जाए तो पीलिया होने लगता है। यकृत की पूरी तरह से कार्य ना करने पर भी पीलिया होता हैं। यकृत कई कारणो से काम करना बन्द करता है। इन सभी में प्रमुख कारण वाइरल इन्फेक्सन है, तथा दूसरा प्रमुख कारण अधिक मादक द्रव्यो का सेवन और रसायनो ंका प्रयोग आदि है।

एक्युप्रेशर द्वारा उपचार – कामला (पीलिया) के रोग में लीवर से सम्बन्धित प्रतिबिम्ब केन्द्र पर प्रेशर देना चाहिए। दाये पैर तथा दाये हाथ में लीवर से सम्बन्धित प्रतिबिम्ब केन्द्र है। (आकृति नम्बर 30 तथा आकृति नम्बर 31) इन प्रेशर पॉइन्ट पर ॲगूठे से प्रेशर देना चाहिए।

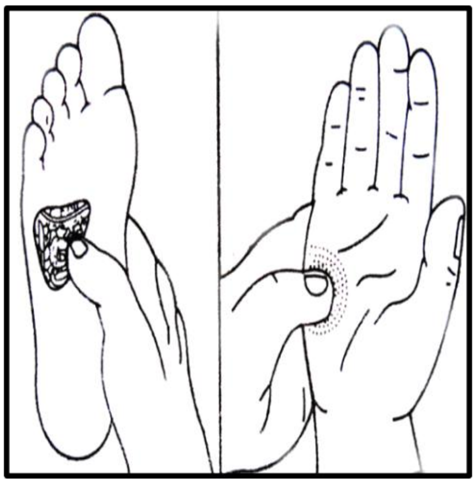

आकृति न0 30, 31

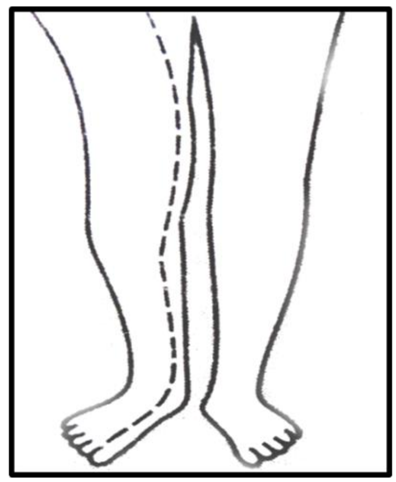

आकृति न0 32

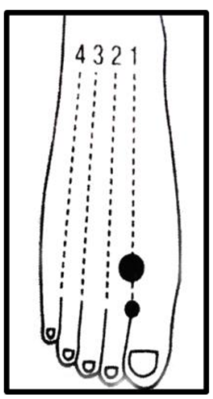

आकृति न0 33

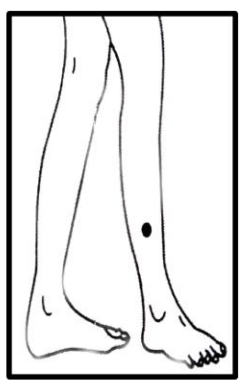

आकृति न0 34

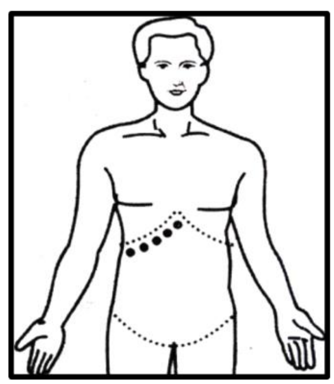

आकृति न0 35

लीवर मेरीडियन दाये पैर के ॲगूठे से शुरू होता है, तथा टॉग के बीच से होकर लीवर तक पहुॅचता है। जैसा कि आकृति नम्बर 32 से स्पष्ट है। लीवर मेरीडियन से सम्वन्धितदो केन्द्र आकृति नम्बर 33 है। प्रत्येक केन्द्र पर कुछ सेकेन्ड तीन बार प्रेशर देना चाहिए।

लीवर के रोगो में आकृति नम्बर 35 किसी सख्त चारपाई या भूमि पर लेट कर पेट के दायीं तरफ पसलियो के नीचे चित्रानुसार दोनो हाथो की अंगुलियो से प्रेशर देना चाहिए। प्रेशर पसलियो के ऊपर नहीं आना चाहिए। सभी केन्द्रो पर एक बार प्रेशर देने के बाद, दूसरी बार तीसरी बार प्रेशर देना चाहिए।

(3). पित्ताशय के रोग – पित्ताशय नाशपाती के आकार का होता है। यह लीवर के दाहिने भाग के समीप स्थित होता है। पित्ताशय के प्रमुख रोगो में पित्ताशय का पत्थर (gallstones) है। ऐसा माना जाता है कि कैल्शियम (Calcium) और कोलेस्ट्रोल (Cholesterol) से यह पित्ताशय की पत्थरी का निर्माण होता है।

लक्षण – गालस्टोन्स की स्थिति में ज्यादा भोजन खाने के बाद या अधिक वसा वाले पदार्थो के खाने के बाद पेट में बहुत दर्द होता है। दर्द कभी बहुत अधिक होता है, कभी कम। इस रोग में दाहिने कन्धे में दर्द होने लगता है। कई रोगियो को कै करने का मन होता है, या उल्टियॉ होने लगती है। भूख कम हो जाती है।

कारण – गालस्टोन्स का रोग पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियो में अधिक होता है। यह उन व्यक्तियो को अधिक होता है। जो चर्बी युक्त वस्तुओ का अधिक सेवन करते है, कैल्शियम की अधिकता के कारण भी तथा कोलेस्ट्रोल से पित्ताशय की पथरी का निर्माण होता है।

एक्युप्रेशर द्वारा रोग निवारण – दायें पैर तथा दाये हाथ में पित्ताशय सम्बन्धी केन्द्र है। इन केन्द्रो पर प्रेशर आकृति नम्बर 36 व 37 की तरह दिया जाना चाहिए, अथवा किसी उपकरण से निम्न प्रतिविम्ब केन्द्र पर प्रेशर देना चाहिए।

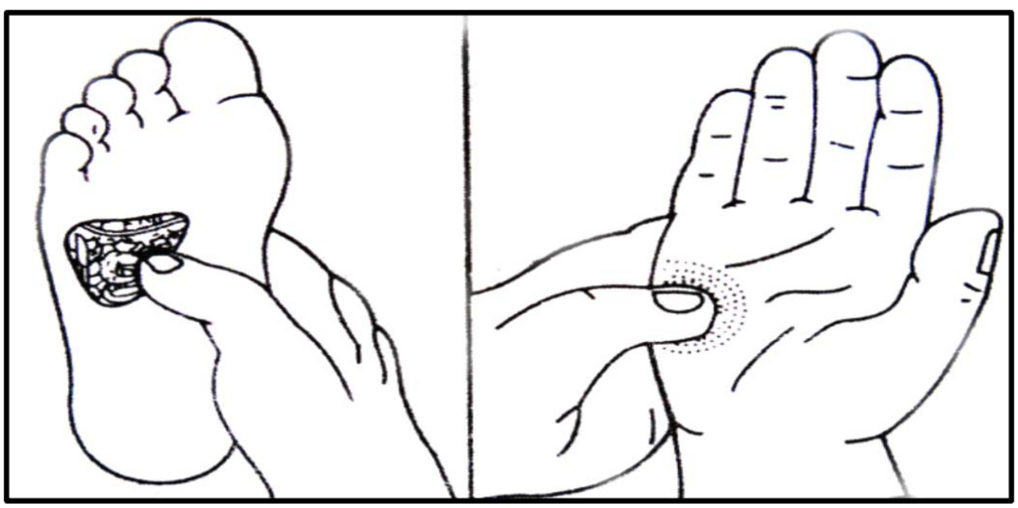

आकृति न0 36, 37

पित्ताशय के रोगो में स्नायु संस्थान के तथा ऑतो के प्रतिविम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहिए, तथा पीठ पर रीढ़ की हड्डी के दोनो तरफ रीढ़ से थोड़ा हट कर, तीन बार ऊपर से नीचे प्रेशर देना चाहिए। आकृति नम्बर 38–39 में ऑतो से सम्बन्धित प्रतिविम्ब केन्द्र में प्रेशर देना चाहिए।

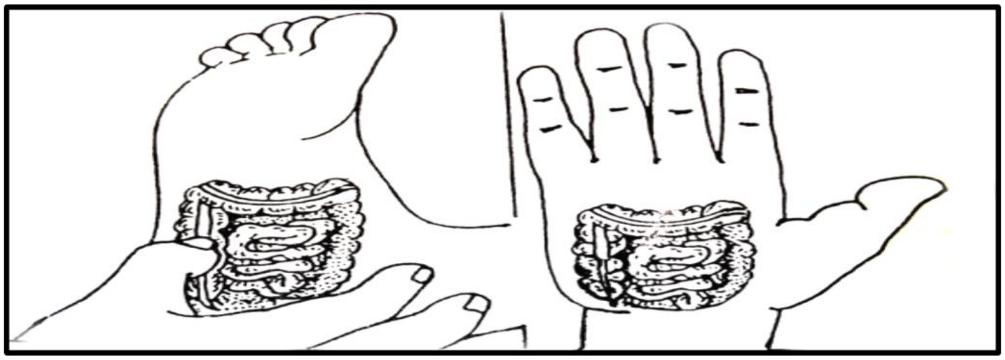

आकृति न0 38, 39

प्रिय विद्यार्थियो गालस्टोन्स यदि छोटे आकार के हो तो वे एक्युप्रेशर द्वारा या अन्य प्राकृतिक उपचार द्वारा निकल ही जाते है। परन्तु यदि उनका आकार बहुत बड़ा है और इन उपचारो द्वारा दर्द कम नही हो रहा हो तब उस स्थिति में पित्ताशय को सर्जरी द्वारा निकालना ही बेहतर उपाय है।

(4). मधुमेह के रोग – (Diabetes Mellitus) – पाचन तन्त्र में इंसुलिन (क्लोमरस) कम बनने या बिल्कुल ना बनने पर यह स्थिति आती है। इन्सुलिन के न बनने से भोजन में ली गयी शक्कर ग्लूकोज में परिवर्तित नही हो पाती, तथा रक्त या मूत्र में उसकी मात्रा बड़ जाने से मधुमेह रोग हो जाता है। इन्सुलिन का स्राव पेन्क्रियाज नामक ग्रन्थि से होता है। इस ग्रन्थि के सही रहने पर ही क्लोमरस (Insulin) नही बन पाता है। इसी लिए रोगी को (Insulin) का इन्जेक्सन भोजन से पूर्व लगाया जाता है। जिससे शक्कर ग्लूकोज में परिवर्तित होकर शरीर को शक्ति प्रदान करती है।

लक्षण – रोगी को जल्दी थकान होना, बार–बार मूत्र आना, जख्म देर से भरना, या विल्कुल ना भरना, किडनी का ठीक से कार्य ना करना, अधिक भूख व प्यास व मानसिक तनाव व कई रोगियो का वजन काफी कम हो जाता है।

कारण – अत्यधिक वसा व कार्बोज युक्त पदार्थो का अधिक मात्रा में सेवन, शारीरिक श्रम की कमी, अत्यधिक मीठे का सेवन, अत्यधिक मोटापा, नशीले पदार्थो का सेवन, मानसिक तनाव, चिन्ता, क्रोध एवं अत्यधिक उत्तेजक औषधियो का सेवन तथा वंशानुगत प्रभाव के कारण भी यह रोग हो सकता है।

एक्युप्रेशर द्वारा रोगोपचार – मधुमेह को नियन्त्रित रखने के लिए सीमित आहार का प्रयोग करना चाहिए तथा चिकित्सक के अनुसार इन्सुलिन का प्रयोग करना चाहिए। एक्युप्रेशर द्वारा मधुमेह को नियन्त्रित किया जा सकता है। मधुमेह रोग में शरीर के अंगो अग्न्याशय, लीवर, आमाशय, ऑतो तथा किडनी व मूत्राशय से सम्बन्धित अंगो पर प्रेशर देना चाहिए। इन अंगो की स्थिति व इनसे सम्बन्धित प्रेशर पाइन्टस आकृति नम्बर 40, 41 में प्रदर्शित है। इन अवयवो से सम्बन्धित प्रेशर पाइन्टस पर प्रेशर देना चाहिए, तथा पाइन्टस 1 में दिया गया प्रतिबिम्ब केन्द्र अग्न्याश्य का है। इन प्रेशर पाइन्टस पर प्रेशर देने से रोग में कुछ ही दिनों में लाभ मिलना शुरू हो जाता है।

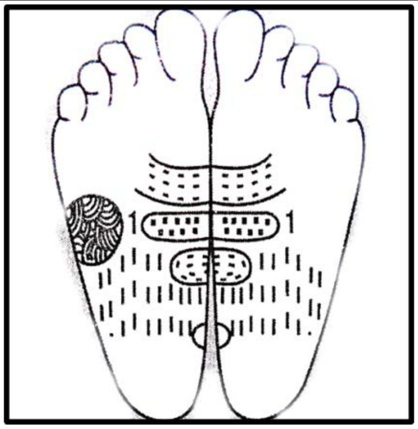

आकृति न0 40

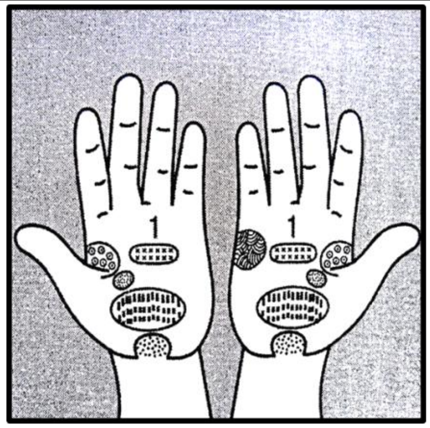

आकृति न0 41

6.3.4 – आखों के रोग – हमारी ज्ञानेन्द्रियों में (कान, नाक, ऑख, जिह्वा, त्वचा) में ऑखों का स्थान सर्वोच्च है। क्योकि ऑखे ही है जो जीवन में प्रकाश करने वाली होती है। अतः सम्पूर्ण जीवन भर ऑखो का स्वस्थ्य रहना आवश्यक हैं। परन्तु मनुष्य के गलत आहार विहार व अन्य कारणो से ऑखो में अनेक रोग हो जाते है। कुछ रोग जो एक्युप्रेशर द्वारा ठीक हो जाते है या उन रोगो में एक्युप्रेशर द्वारा लाभ होता है। ऑखो के वे रोग निम्न हैं

- प्रिय विद्यार्थियो ऑखो के रोगो में दूर दृष्टि (Myopia short sight) – इस रोग में दूर की वस्तुओ की ठीक से पहचान नही हो पाती है। यह रोग प्रायः अधिक पढ़ने लिखने वालो को होता है।
- निकट दृष्टि दोष (Hypermetropia Hyperopa long sight) – इस रोग में नजदीक की वस्तुए ठीक से नही दिखाई देती है, धुंधली दिखाई देती है।
- ग्लोकोमा (Glaucoma) – यह रोग अक्सर 40 वर्ष की ऊपर की आयु के व्यक्तियो को होता है। इस रोग में सिरदर्द रहता है, तथा नेत्रगोलक के अन्दर तनाव व नजर धुंधली रहती है।
- रतौंधि (Night blindness) – इस रोग में व्यक्ति को रात होती ही दिखाई देना बन्द हो जाता है। इस रोग कामुख्य कारण पौष्टिक आहार की कमी होना माना जाात है।
- दिनौधि (Day blindness) – दिनौधि के रोग में रोगी का दिन मे देखेने में कठिनाई आती है।
- डिपलोपिया (Diplopia) – इस रोग में रोगी को एक वस्तु की दो – दो वस्तुए दिखाई देती है।
- रंगो का अन्धापन (Colour blindness) – इस रोग में रोगी को रंगो की ठीक से पहचान नही हो पाती है।

मोतियाबिन्द (Cataract) – यह रोग वृद्धावस्था में होता है। इस रोग में ऑख का पारदर्शी लेन्स धीरे – धीरे अपारदर्शी बन जाता है। यह रोग प्रायः दोनो नेत्रो में एक साथ होने लगता है। कभी एक नेत्र में पहले व दूसरे में बाद में भी हो सकता है। मोतियाबिन्द जब पूर्णतया परिपक्व हो जाता है। तब आपरेशन के बाद ही इससे पुनः देखने की शक्ति प्राप्त होती है। इन प्रमुख रोगो के अतिरिक्त अन्य रोग जैसे – ऑखों से पानी बहना, ऑखो में दर्द, ऑखो में सूजन, ऑखो में खुजली आदि रोग है –

रोग के कारण – ऑखो के रोग होने के कारण अनेक हो सकते है। मुख्यतः यह रोग धूल, धूएँ वाले वातावरण में अधिक रहने, अत्यधिक गरम व नशीले पदार्थो का सेवन, किसी दिमागी परेशानी, चोट, चिन्ता, अत्यधिक रोने, तेज रोशनी में या कम रोशनी में पढ़ने में लगातार कई घण्टे पढ़ने, अधिक समय तक टी0 वी0 देखने, मधुमेह रोग के कारण, देर रात तक जागने, विटामिन 'ए' की कमी से होता है।

एक्युप्रेशर द्वारा रोगोपचार – ऑखो से सम्बन्धित प्रमुख प्रतिबिम्ब केन्द्र दोनो पैरो तथा दोनो हाथो में है। जैसा कि आकृति नम्बर (42, 43, 44, 45) में दर्शाया गया है।

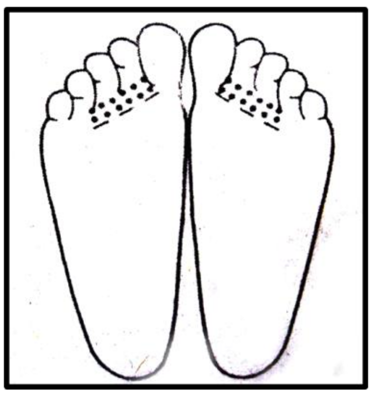

आकृति न0 42

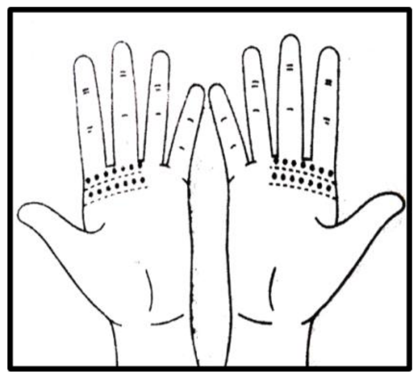

आकृति न0 43

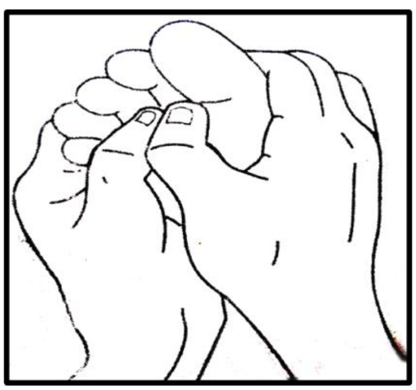

आकृति न0 44

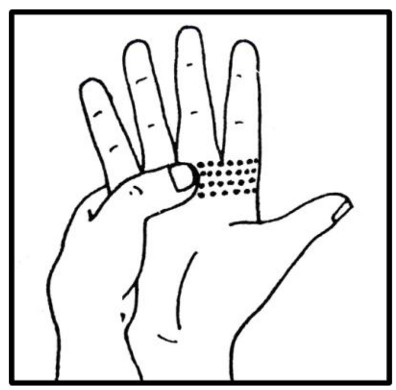

आकृति न0 45

सहायक प्रतिबिम्ब केन्द्र – ऑखो व मस्तिष्क का सम्बन्ध घनिष्ट है। अतः ऑखो के रोगो में मस्तिष्क के प्रेशर पाइन्ट पर प्रेशर देना चाहिए।

आकृति न0 46

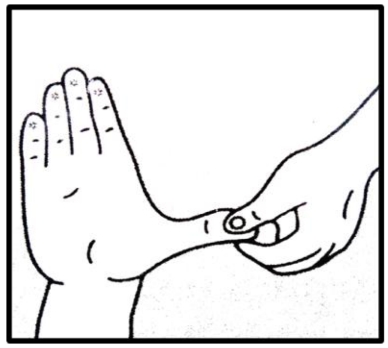

आकृति न0 47

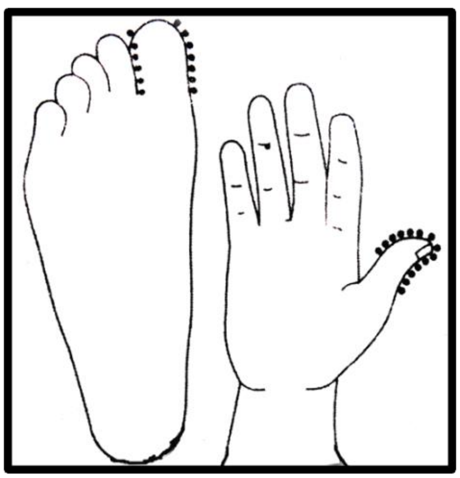

आकृति न0 48

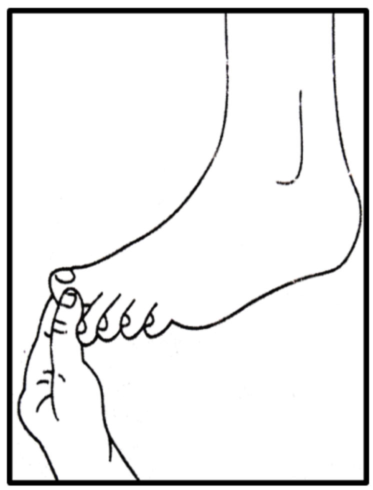

आकृति न0 49

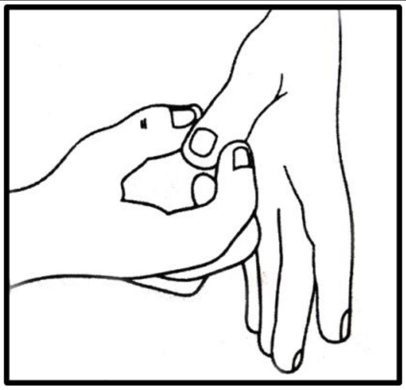

आकृति न0 50

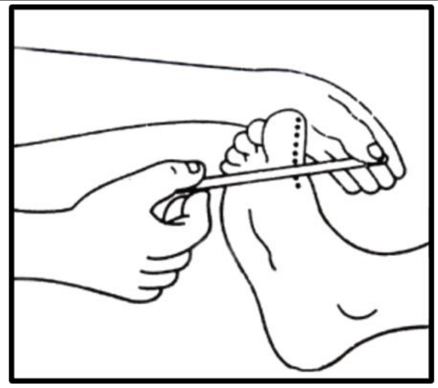

आकृति न0 51

ऑखो का पोषण गर्दन के ऊपर वाले हिस्से से भी होता है। इसलिए पैरो, हाथो के अंगूठे के भीतरी तथा बाहरी हिस्से पर प्रेशर देना चाहिए। जैसा कि आकृति नम्बर (48,49) (50,51) से स्पष्ट है।

ऑखो के अग्र भाग पर बड़ती प्रेशर दने से नेत्र ज्योति बड़ती है, तथा नेत्र रोग दूर होते है जैसा कि आकृति नम्बर (52, 53) से स्पष्ट है। इस प्रतिबिम्ब केन्द्र पर प्रेशर देना चाहिए। ऑखो में किसी तरह के गम्भीर रोग हो, ऑखे लाल रहती हो, ऑखो पर सूजन हो, तो भौंहों तथा पलको पर प्रेशर ना दें। अन्य रोगो में आकृति नम्बर (54, 55, 56) के अनुसार प्रेशर देना चाहिए। नेत्र रोग में डिप्लोपिया (Diplopia) दो दो दिखाई देने वाला रोग, आकृति नम्बर (57) में प्रेशर देने से दूर होता है। इस प्रतिबिम्ब केन्द्र पर धीरे से दो बार 3 सेकेण्ड प्रति बार या दो या तीन बार प्रेशर देना चाहिए।

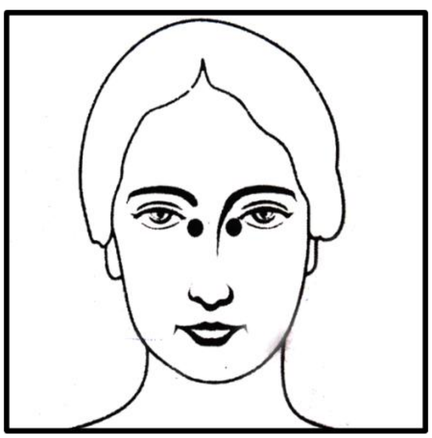

आकृति न0 52

आकृति न0 53

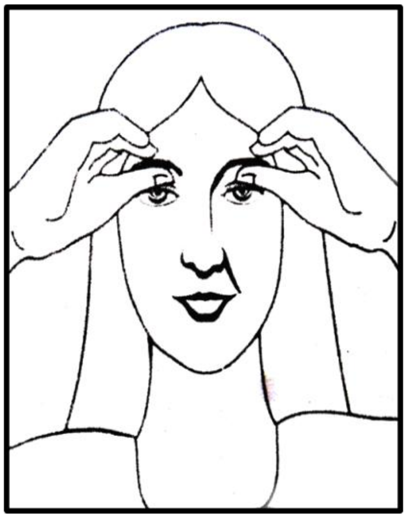

आकृति न0 54

आकृति न0 55

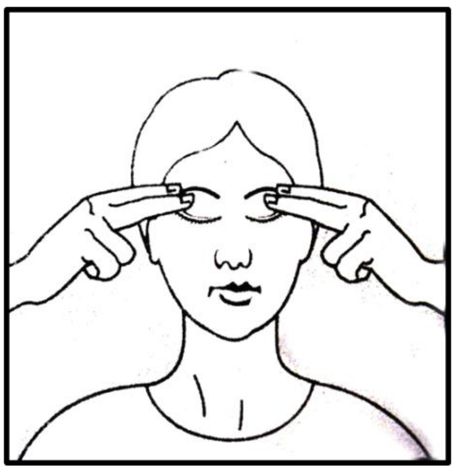

आकृति न0 56

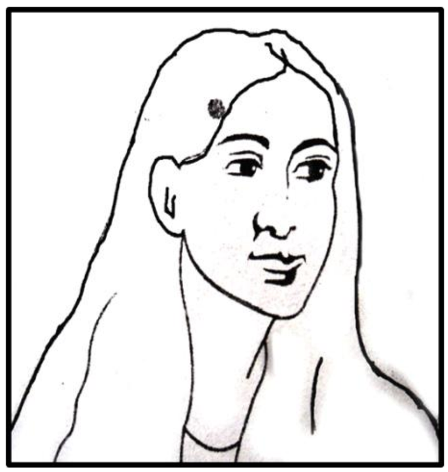

आकृति न0 57

6.3.5 – गले के रोग – गले के रोग में मुख्यतया टॉन्सिल, अडीनोयड, गले की पीड़ा तथा घैंघा आदि रोग होते है। गले के प्रमुख रोग निम्न है –

- **टॉन्सिल (Tonsils)** – टॉन्सिल शरीर को स्वस्थ्य रखने में सहायक है। संक्रमित अवस्था में यह स्वय भी रोग ग्रस्त हो जाते है। टॉन्सिल गले के प्रारम्भ ग्रन्थि में जहॉ श्वास नली व ग्रास नली स्थित है। वहॉ दोनो तरफ यह स्थित होती है। संक्रमण होने की अवस्था में यह आकार में बड़ी व कठोर होने लगती है, तथा गहरे लाल रंग के हो जाते है। जब टॉन्सिल सूज जाते है तब गले में दर्द तथा कोई भी पदार्थ निगलने में परेशानी होती है।

कारण – यह रोग वच्चो तथा व्यस्को को अधिक होता है। यह रोग प्रायः ठंड लगने, अधिक वर्फ व वर्फ के पानी, शर्बत, आइसक्रीम, गरम तथा तले पदार्थ, धूल का संक्रमण आदि कारणो से होता है।

- **अडीनोयड (Adenoids)** – अडीनोयड टॉन्सिल की भॉति नाक के बिल्कुल पिछले भाग श्वास मार्ग, (Naso Pharynx) की झिल्ली से जुड़े हुए मांस के कोमल टुकड़े होते है, ये जब बड जाते है, तब बहुत दर्द होता हैं। सर्दी जुकाम के कारण जब अडीनोयड बड़ जाते है, इनके बडने से सुनने में परेशानी होती है।
- **घैंघा रोग (Goiter)** – घैंघा रोग में गले में गाठे व सूजन हो जाती है। इस रोग का मुख्य कारण आयोडीन की कमी के कारण होना माना गया है। आयोडीन की कमी के कारण थायरॉइड ग्रन्थि पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ता है। यह रोग विशेषकर पहाड़ी लोगो जहॉ पानी स्वास्थ्यकर नही होता है, यह रोग बहुत संख्या में देखने को मिलता है। इस रोग से बचने व रोग हो जाने की स्थिति में प्रथम उपाय आयोडीन युक्त नमक का प्रयोग करना चाहिए।

एक्युप्रेशर द्वारा रोगोपचार – टॉन्सिल, अडीनोयड तथा घैंघा रोग को तथा गले के अन्य रोगो को एक्युप्रेशर द्वारा दूर किया जा सकता है। गले के रोग मे टॉन्सिल, अडीनोयड तथा घैंघा रोग तथा गले के अन्य रोगो से सम्बन्धित हाथो तथा पैरो में तीन प्रमुख केन्द्र होते है। पहला आकृति नम्बर 58 में, दूसरा केन्द्र नम्बर 60 में तथा तीसरा केन्द्र आकृति नम्बर 61 में दिखाया गया है। इन केन्द्रो पर प्रेशर देने से गले के रोगो में लाभ मिलता है।

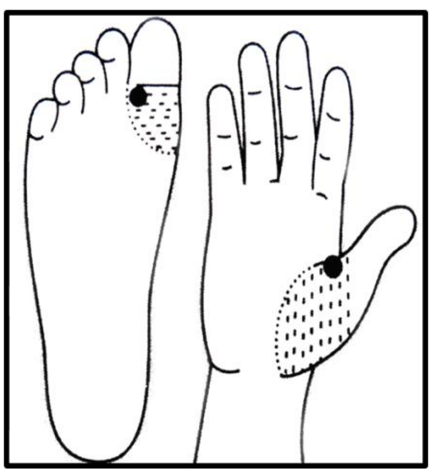

आकृति न0 58

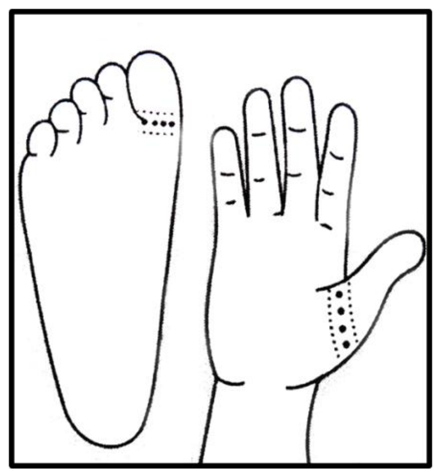

आकृति न0 59

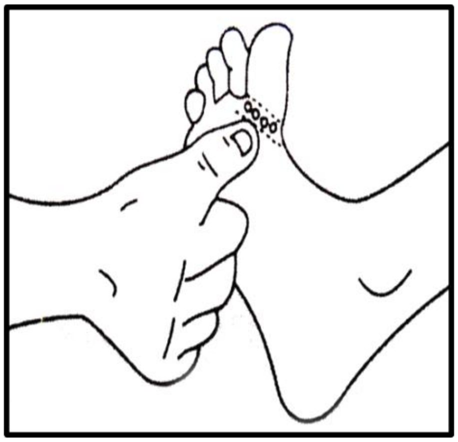

आकृति न0 60

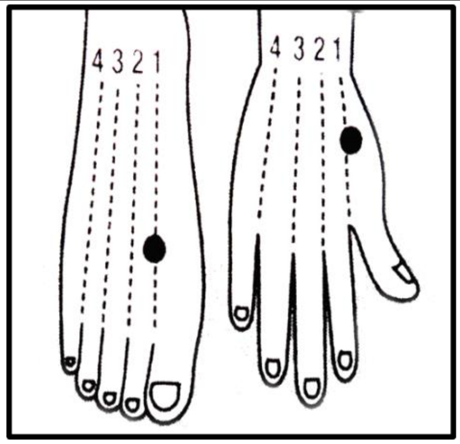

आकृति न0 61

सहायक प्रतिबिम्ब केन्द्र – गले के रोगो में गर्दन से सम्बन्धित प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहिए, गर्दन पर स्नायु संस्थान से सम्बन्धित प्रेशर पाइन्टस है। इन पर प्रेशर देने से लाभ होता है, जैसा की आकृति नम्बर 62 में दिखाया गया है, टॉन्सिल तथा गले के अन्य रोगो में गले के गड्ढे वाले प्वाइन्ट पर भी कुछ सेकेण्ड के लिए हल्का प्रेशर देना चाहिए।

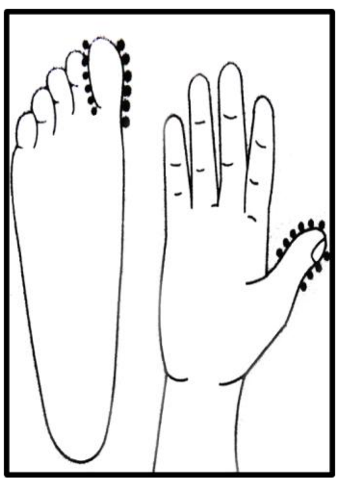

आकृति न0 62

आकृति न0 63

6.4 – एक्यूप्रेशर चिकित्सा के लाभ –

प्रिय विद्यार्थियो, एक्युप्रेशर चिकित्सा अपने आप में विशिष्ट चिकित्सा पद्धति है, इस चिकित्सा पद्धति की विशिष्टता यह है कि यदि कोई अन्य चिकित्सा जैसे ऐलोपैथी चिकित्सा ले रहा हो, उस स्थिति मे वह एक्युप्रेशर चिकित्सा भी ले सकता है। एक्युप्रेशर चिकित्सा पूर्णतया प्राकृतिक नियमो पर आधारित चिकित्सा पद्धति है व विश्वनीय चिकित्सा पद्धति है। इस चिकित्सा पद्धति के लाभ निम्नवत् है –

1. एक्युप्रेशर द्वारा हर प्रकार के रोगो की चिकित्सा सम्भव है।

2. यह कम खर्चीली तथा बिना औषधी (दवाई) की चिकित्सा है।
3. यह चिकित्सा सर्व सुलभ व प्रतिप्रभाव से मुक्त है।
4. यह चिकित्सा पूर्णतया प्राकृतिक चिकित्सा है।
5. एक्युप्रेशर चिकित्सा सरल व सहज चिकित्सा है।
6. सभी प्रकार के रोगो की चिकित्सा एक्युप्रेशर में सम्भव है।
7. इसमें किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नही होती, बच्चे भी इसे सीख सकते है।
8. पीड़ा रहित एवं सुरक्षित चिकित्सा पद्धति है।
9. शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता बड़ती है।
10. शरीर में आवश्यक तत्वो की आपूर्ति कर मांसपेशियो के तन्तुओ में स्फुर्ति आती है।
11. एक्युप्रेशर चिकित्सा से शरीर के सम्पूर्ण तन्त्र सुचारू रूप से कार्य करने लगते है।
12. एक्युप्रेशर चिकित्सा में धन व समय की बचत होती है।
13. एक्युप्रेशर द्वारा व्यक्ति स्वयं की चिकित्सा कर सकता है।
14. एक्युप्रेशर चिकित्सा द्वारा लाभ तुरन्त ही मिल जाता है।
15. एक्युप्रेशर चिकित्सा द्वारा चिकित्सालय ले जाने तक प्राथमिक चिकित्सा के रूप मे उपचार किया जा सकता है, जिससे की रोगी को तुरन्त लाभ मिल सके।

6.5 – एक्यूप्रेशर चिकित्सा की सावधानियॉ –

एक्युप्रेशर चिकित्सा देने में कुछ सावधानियॉ अवश्य रखनी चाहिए जिससे कि चिकित्सा का पूर्ण लाभ लिया जा सके, सावधानी से सम्बन्धित निर्देश निम्न प्रकार है –

1. एक्युप्रेशर चिकित्सा देने के लिए स्थान साफ, हवादार, शान्त व अनुकूल होना चाहिए।
2. चिकित्सक का व्यवहार शान्त, सात्विक, सुविचार से युक्त व चिकित्सक को रोग मुक्त होना चाहिए।
3. चिकित्सा देते समय रोगी व चिकित्सक दोनो आरामदायक स्थिति में हो तथा रागी को तनाव रहित करें।
4. एक्युप्रेशर पद्धति में प्रेशर के साथ–साथ पौष्टिक भोजन व हल्का व्यायाम का भी ध्यान रखना चाहिए।
5. प्रेशर देने से पहले चिकित्सक को यह देख लेना चाहिए कि कही नाखून तो बड़े हुए नहीं है।
6. रोगी के हाथो पैरो तथा विभिन्न प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देने से पहले रोगी के शरीर पर पाउडर या कोई तरल पदार्थ लगा लेना चाहिए, जिससे त्वचा पर कोई छाला न पड़े।

7. एक्युप्रेशर चिकित्सा में किसी भी रोग की चिकित्सा करने पर मस्तिष्क तथा स्नायु संस्थान (Nervous System) से सम्बन्धित प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर अवश्य देना चाहिए, जैसा कि आकृति न0 (3,4,5,6) में दर्शाया गया है।
8. एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार शरीर एक अखण्ड इकाई है। किसी भी रोग से सम्बन्धित प्रेशर प्वाइन्ट पर प्रेशर देने से अतिरिक्त हाथो तथा पैरो के सभी प्रेशर प्वाइन्टस पर प्रेशर देना चाहिए।
9. गर्भावस्था में प्रेशर नही देना चाहिए।
10. हड्डी के टूटे भाग पर भी प्रेशर नही देना चाहिए।
11. एक्युप्रेशर केवल शारीरिक रोगो में ही उपयोगी नही है। अपितु यह चिकित्सा चिन्ता व मानसिक तनाव को भी कम करती है।
12. यदि रोगो चिरकाल से हृदय रोग से पीड़ित हो, वह पेशमेकर अथवा अन्य कृत्रिम रूप से शक्ति देने वाला यन्त्र प्रयोग कर रहा हो ऐसी स्थिति में एक्युप्रेशर चिकित्सा नही लेनी चाहिए।
13. कैंसर व मधुमेह के गम्भीर रोगियो के लिए तथा बहुत कमजोर व्यक्तियो के लिए भी एक्युप्रेशर पद्धति का प्रयोग उचित नही है।
14. एक्युप्रेशर चिकित्सा भोजन करने के एक घण्टे बाद ही देनी चाहिए, या एक्युप्रेशर चिकित्सा देने के एक घण्टे बाद भोजन लेना चाहिए। यदि पेय लेना हो तो वह ठण्डा नही होना चाहिए।
15. चिकित्सा काल में यदि रोगी ठण्डी वस्तुये जैसे कोल्डड्रिंक, आइसक्रीम, जूस, लस्सी आदि पदार्थ और खट्टे पदार्थ जैसे अचार, नीबू आदि खट्टे फल का सेवन ना करे तो रोगी को शीघ्र लाभ मिलता है।
16. रोगी को आरामदायक स्थिति में लिटाकर या बिठाकर दबाव देना चाहिए।
17. प्रेशर देने का समय एक बार में 10 से 15 सेकेण्ड से डेढ़ मिनट तक होना चाहिए। उदर तथा मूत्राशय पर 3 सेकेण्ड से अधिक दबाव देना चाहिए।
18. एक दिन में दो बार प्रातः सायः ही प्रेशर देना चाहिए।
19. प्रेशर देते समय रोगी को टॉगे तथा भुजाएँ क्रास ना करने दें।
20. रोगी को चिकित्सा के प्रति यह विश्वास दिलाये कि वह शीघ्र स्वस्थ हो जायेगा, सेवाभाव प्रेम पूर्वक दी गयी चिकित्सा अवश्य फलवती होती है।
21. प्रेशर देने के लिए जिम्मी का प्रयोग, हाथो की हथेली, पैरो के तलवे व मॉसल स्थान पर ही करना चाहिए, उदर पर हड्डियो वाले स्थान पर जिम्मी से प्रेशर नही देना चाहिए।
22. चिकित्सक को प्रेशर देने के लिए अंगुली, अंगूठे, हथेली, जिम्मी, रोलर व अन्य उपकरणो का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार करना चाहिए।

एक्युप्रेशर की सीमाएं –

1. एक्युप्रेशर चिकित्सा किडनी में पथरी (Stone) होने की दशा में लाभकारी नही है।
2. हड्डी टूट जाने व फैक्चर होने की दशा में लाभकारी नहीं है।
3. अधिक गम्भीर रोग जैसे ह्रदय रोग, कैंसर आदि में लाभकरी नही है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1. **रिक्त स्थान भरिए –**

क. .... श्वसन संस्थान के रोग है।
ख. साइनस के प्रतिबिम्ब केन्द्र दोनो हाथो तथा पैरो के .... पर होते है।
ग. गालस्टोन पुरूषो की अपेक्षा .... में अधिक होता है।

2. **सत्य/असत्य बताइये –**

क. एक्युप्रेशर चिकित्सा देते समय स्थान साफ, हवादार, शान्त व अनुकूल होना चाहिए।
ख. एक्युप्रेशर अधिक खर्चीली तथा औषधीय चिकित्सा है।
ग. एक्युप्रेशर चिकित्सा द्वारा रोग प्रतिरोधक क्षमता बड़ती है।
घ. एक्युप्रेशर चिकित्सा द्वारा व्यक्ति स्वयं की चिकित्सा नहीं कर सकता।

3. **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

क. मधुमेह रोग से होता है?
अ. इन्सुलिन की कमी से **ब**. विटामिन की कमी से
स. थॉयराइड की कमी से **द.** इनमे से कोई नहीं

ख. रात में न दिखाई देना, इस रोग को क्या कहते है?
अ. दिनौधि **ब.** रतौधि
स. डिप्लोपिया **द.** ग्लोकोमा

ग. दिन में न दिखाई देना, इस रोग को क्या कहते हैं?
अ. रतौधि **ब.** दिनौधि
स. ग्लोकोमा **द.** इनमें से कोई नहीं।

6.6. सारांश –

प्रिय विद्यार्थियो एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति पुरातन से लेकर आधुनिक समय तक जितनी भी चिकित्सा पद्धति है, उन सभी में एक्युप्रेशर चिकित्सा सबसे पुरातन तथा सबसे प्रभावशाली चिकित्सा है। यह चिकित्सा इसलिए प्रभावशाली है, क्योकि यह चिकित्सा पूर्ण रूप से प्राकृतिक सिद्धान्त पर कार्य करती है। इस चिकित्सा में किसी प्रकार के दुष्प्रभाव नही होते है। यह चिकित्सा पद्धति स्वस्थ्य व्यक्ति को पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करती है, तथा रोगी व्यक्ति के विकार को प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देकर उन रोगो का उपचार करती है। सभी रोगो में रोग से सम्बन्धित अंगो के प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देकर रोग को दूर किया जा सकता है। एक्युप्रेशर चिकित्सा कुछ नियमो का पालन कर जैसे भोजन करने के एक घण्टे बाद भोजन देना चाहिए। एक्युप्रेशर द्वारा ह्रदय संस्थान, रक्त संचरण संस्थान, पाचन संस्थान, गले व ऑखो के रोगो का उपचार सम्भव है। साधारण से साधारण मनुष्य भी थोड़ी बहुत जानकारी रख कर प्रतिबिम्ब केन्द्रो को खोजकर अनेको रोगो का इलाज स्वयं ही कर सकता है, व दूसरो को भी लाभ पहुॅचा सकता है।

6.7 शब्दावली –

- क्लोम रस – इन्सुलिन, जिसका स्राव पेन्क्रियाज से होता है।
- गालस्टोन – पित्ताशय (गालब्लैडर) में स्टोन्स।
- डिप्लोपिया – इस रोग में रोगी को दो–दो वस्तुएँ दिखाई देती है।
- रतौधि – रात को ना दिखाई देना।
- दिनौधि – दिन में ना दिखाई देना।

6.8 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1 – क. साइनोसाइटिस, ब्रोकाइटिस, दमा **ख.** अग्रभाग पर **ग.** स्त्रियो
2 – क. सत्य **ख.** असत्य **ग.** सत्य **घ.** असत्य
3 – क. अ, **ख.** ब, **ग.** ब,

6.9 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 – सिंह अत्तर, (2005), एक्युप्रेशर। एक्युप्रेशर हेल्थ सेन्टर चंड़ीगढ।
2 – गहराना वाइ0 डी0 (1998), इण्टर नेशनल एक्युप्रेशर। सुमित प्रकाशन आगरा।
3 – कल्याण आरोग्य अंक, गीता प्रेस गोरखपुर।
4 – गुर्वेन्द्र अमृत, (20013), एक्युप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग। ड्रोलिया पुस्तक भण्डार हरिद्वार।

6.10 – सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री –

1 – विवेक आर, एस, (2004) वैकल्पिक चिकित्सा। डायमंड पाकेअ बुक्स नई दिल्ली।

6.11 – निबन्धात्मक प्रश्न

1 – एक्युप्रेशर चिकित्सा के लाभ व सावधानियॉ बताइये।
2 – एक्युप्रेशर द्वारा गले व ऑखे के रोगो का उपचार का वर्णन कीजिए।

3 – एक्युप्रेशर द्वारा हृदय व रक्त परिसंचरण के रोगो का उपचार का सचित्र वर्णन कीजिए।

4 – श्वसन संस्थान व पाचन संस्थान के विभिन्न रोग व उनका उपचार एक्युप्रेशर द्वारा बताइये।

इकाई – 7 एक्युपंक्चर का अर्थ एवं इतिहास

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 एक्यूपंक्चर का अर्थ एवं परिभाषा
7.3.1 एक्युपंक्चर का अर्थ
7.3.2 एक्युपंक्चर की परिभाषा
7.4 एक्युपंक्चर की अवधारणा इतिहास
7.5 एक्युपंक्चर का इतिहास
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

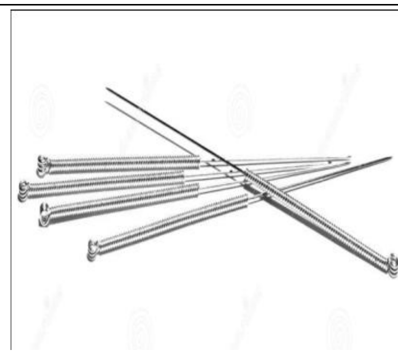

एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर स्व उपचार की एक सहज विधा है तथा उपचार बहुत ही सरल, सस्ता तथा उपयोगी है। इस उपचार का कोई खास प्रति प्रभाव भी नहीं है। एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर के द्वारा सभी प्रकार के रोगों का उपचार संभव है। भारत एक गरीब एवं उन्नतशील देश है। देश की एक तिहाई जनता अर्थात् 45 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं। ये लोग बीमार होने पर बिना उपचार के कष्ट पाने को अभिशप्त है। देश की एक तिहाई जनता मध्य आय वर्ग की है। ऐसे में एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर उपचार सबको स्वास्थ्य प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्रस्तुत इकाई में एक्युपंक्चर के अर्थ एवं विभिन्न ग्रन्थों के परिभाषाओं से परिचित होंगे। एक्युपंक्चर के बृहद् स्वरूप का अवलोकन होगा तथा एक्युपंक्चर के तात्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें एक्युपंक्चर के सिद्धान्तों का निर्माण करने वाले पृथक्–पृथक् तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा। हमें उम्मींद है कि एक्युपंक्चर के इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर आपको एक्युपंक्चर के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1. एक्युपंक्चर के शाब्दिक व गूढ़ अर्थो का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
2. एक्युपंक्चर के विभिन्न परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।

3. विभिन्न ग्रन्थों में एक्युपंक्चर के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।
4. एक्युपंक्चर के तात्त्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

7.3 एक्युपंक्चर का अर्थ एवं परिभाषा

एक्युप्रेशर में शरीर के कुछ बिन्दुओं पर दबाव देकर उपचार करते हैं। इन बिन्दुओं को Acupoints कहते हैं। इन्हीं बिन्दुओं पर जब सुई डालकर उपचार किया जाता है तो उसे Acupuncture कहते है। इन्हीं बिन्दुओं पर जब मेथी दाना और अन्य seed लगाकर उपचार करते हैं तो इसे Seed therapy कहते हैं। इन्हीं बिन्दुओं पर जब छोटे–छोटे magnet लगाकर उपचार करते हैं तो उसे Magnet therapy कहते हैं। इन्हीं बिन्दुओं पर जब colour लगाकर उपचार करते है तो इसे Colour therapy कहते हैं। उपचार का तरीका कोई भी हो उपचार इन्हीं Acupoints पर दिया जाता है।

एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति पुरातन भारत वर्ष में पैदा हुई, चीन में पली बढ़ी तथा पाश्चात्य जगत में आधुनिक काल में लोकप्रिय हुई। भारत वर्ष में जहाँ महिलायें बिन्दी लगाती हैं, जहाँ माँग भरती है, जहाँ नाक, कान छेदे जाते हैं, जहाँ बिछिया, अणत, चूड़ियाँ आदि पहने जाते हैं ये सब एक्युपंक्चर उपचार के महत्वपूर्ण बिन्दु हैं। महावत का छोटा सा लड़का विशालकाय हाथी का नियंत्रण अंकुश द्वारा हाथी के Acupoints को दबाकर करता है।

विगत पांच हजार वर्षों से चीन में एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति से सफलतापूर्वक उपचार किया जा रहा है। समय–समय पर एक्युपंक्चर के विद्वानों ने शोध ग्रन्थ लिखे। ये शोध ग्रन्थ आधुनिक एक्युपंक्चर चिकित्सा का आधार है। चीन में 2500 वर्षों पूर्व Huang Di नामक सम्राट हुए। सम्राट Huang Di एक्युपंक्चर के मर्मज्ञ थे। सम्राट अपने Court physian Bo से एक्युपंक्चर पर चर्चा किया करते थे। ये चर्चाएं अकबर बीरबल संवाद की तरह चीन में बहुत प्रसिद्ध हुई। सम्राट Huang Di चीन में Yellow Emperor के नाम से विख्यात हुए एवं court physion Bo के संवादों को चीन की गीता रामायण के समान है। इसी प्रकार एक्युपंक्चर के विद्वानों ने समय समय पर अपने अनुभवों को ग्रन्थ रूप में लिखा। भारत वर्ष में Ayurvedic Acupuncture पर चरक, सुश्रुत आत्रेय आदि विद्वानों ने महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी । वेदों में भी एक्युपंक्चर यानि मर्मभेदन का विशद् वर्णन मिलता है। Acupoints को आयुर्वेद में मर्म बिन्दु कहते हैं। ऊर्जा प्रवाह पथ (Meridian) को आयुर्वेद में नाड़ी कहते हैं।

चीन में 1950 के दशक में चेयरमैन माओं ने लाखों लोगों को एक्युपंक्चर का प्रशिक्षण दिलवाया तथा एक्युपंक्चर किट देकर चीन के गांव–गांव में उपचार करने को भेज दिया। इन एक्युपंक्चर के डाक्टरों के पास पहनने को जूते तक न थे। पाश्चात्य देशों के लोग इनको Bare footed doctors के नाम से पुकारते थे। 1962 में अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन ने चीन की यात्रा की। महामहिम राष्ट्रपति के साथ गये एक पत्रकार के पेट में appendicitis का भयंकर दर्द होने लगा। राष्ट्रपति के डाक्टरों ने पत्रकार के एपेन्डिक्स का तत्काल आपरेशन करने की सलाह दी। चीन के प्रधानमंत्री की सलाह पर पत्रकार को एक्युपंक्चर का उपचार दिया गया। $St36^{1/2}$ बिन्दु पर दाहिने पैर में एक सुई डालते ही पत्रकार का एपेन्डिक्स का दर्द आश्चर्यजनक रूप से ठीक हो गया। राष्ट्रपति निक्सन प्रभावित हुए। लेडी निक्सन ने यात्रा के बाकी तीन दिनों तक एक्युपंक्चर के बारे में विस्तृत जानकारी ली। अमेरिका लैटते समय राष्ट्रपति निक्सन कुछ एक्युपंक्चर विद्वानों को

अमेरिका अपने साथ ले गये। इसके बाद धीरे–धीरे चीनी एक्युपंक्चर का ज्ञान पाश्चात्य देशों में फैल गया। अंग्रजी में एक्युपंक्चर की पुस्तकें लिखी जाने लगी। एक्युपंक्चर का विशेष साहित्य पाश्चात्य देशों के माध्यम से भारत में भी आने लगा।

प्राचीन काल से ही हमारे देश में एक्युप्रेशर, एक्युपंचर पद्धति का उपयोग स्वास्थ्य अर्जन हेतु किसी न किसी रूप में सदियों से होता रहा है। ऋषि मुनियों द्वारा शरीर के विभिन्न बिन्दुओं पर दबाव देकर अथवा मालिश द्वारा उपचार किया जाता रहा है। इन बिन्दुओं का उल्लेख हमारे प्रचीन ग्रंथ आयुर्वेद में 'मर्म' के रूप में हुआ है। कालांतर में सुची भेदन के द्वारा भी उपचार होता रहा, बाद में यह पद्धति बौद्ध धर्म के अनुयायी द्वारा लंका, चीन व जापान ले जाई गई और इसका सम्पूर्ण एवं सम्यक् विकास चीन देश में हुआ। आज विभिन्न देशों जैसे–अमेरिका में रिफलेक्सोलॉजी, जापान में शियात्सु, चीन में एक्युपंचर, जर्मनी में इलेक्ट्रो एक्युपंचर, कोरिया एवं रूस में सर पार्क जी द्वारा प्रतिपादित सुजोक एक्युपंचर के रूप में।

एक्युपंचर दो शब्दों के योग से बना है। एक्यु = सूचिका एवं पंचर = भेदन। अर्थात् शरीरस्थ विभिन्न बिन्दुओं का सूचिका भेदन द्वारा स्वास्थ्य अर्जित करना। इन बिन्दुओं पर अंगुलियों का प्रयोग करके पंचर के स्थान पर दबाव दिया जाना एक्युप्रेशर कहलाता है तथा इन्हीं बिन्दुओं पर केवल रंगों का प्रयोग कर उपचार करना ही रंग चिकित्सा है।

परिभाषाएँ :– विभिन्न विद्वानों ने एक्युप्रेशर की अलग–अलग परिभाषायें प्रस्तुत की है, जो निम्न है :–

डॉ. पार्क जे.वु. :– अपनी पुस्तक 'सुक्ष्म अभिनव एक्युप्रेशर–एक्युपंचर' में लिखते हैं कि प्रकृति ने हमारे हाथों एवं पैरों की संरचना इस ढ़ग से की है कि उनमें शरीर के सभी अंगों एवं अवयवों से सादृश्यता है। इन सादृश्य केन्द्रों पर दबाव देकर या अन्य माध्यमों से शरीर की ऊर्जा शक्ति को उद्वेलित करके शारीरिक असहजता का निवारण किया जा सकता है।

डॉ0 फिट्जजेराल्ट :– इनका मानना है कि पैरों के तलुवों और हथेलियों में स्थित ज्ञान तन्तु ढक जाते हैं जिससे शरीर की विद्युत चुम्बकीय शक्ति का भूमि से सम्पर्क नहीं हो पाता, किन्तु इस विधि के उपचार से ज्ञान तन्तुओं के छोर पर हुआ जमाव दूर हो जाता है। और शरीर की विद्युत चुम्बकीय तरंगों का पुनः मुक्त संचरण होने लगता है।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य :– शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जीवनी शक्ति एक विशेष अदृश्य रेखाओं से आती है जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण शरीर से है। उन बिन्दुओं पर सुई का स्पर्श (एक्युपंचर) या थोड़ा सा दबाव (एक्युप्रेशर) से दर्द या रोग तुरंत समाप्त हो जाता है। जटिल शल्य चिकित्सा से उत्पन्न दर्द को भी इन दबाव से आराम मिल सकता है।

(प्राणशक्ति एक दिव्य विभूति पृ. 4.30)

डॉ. जे. पी.अग्रवाल :– 'एक्युप्रेशर/एक्युपंचर वह विधा है जिसमें शरीर के किसी बिन्दु पर उपचार देकर ऊर्जा का विनिमयन किया जा सके।' (चरक आयुर्वेदिक एक्युप्रेशर)

एम.पी. खेमका जी :– शरीर के रक्त (Blood), व Body fluids के स्थानान्तरण की विधा को एक्युप्रेशर/एक्युपंचर कहते हैं।

शरीर के किसी निश्चित बिन्दुओं पर उपचार देकर ऊर्जा के रुकावट को नियमित करना व ऊर्जा को सन्तुलित कर शरीर को ठीक करने की विधा को एक्युप्रेशर/एक्युपंचर कहते हैं।

(Advance Acupressure/Acupuncture - I)

अभ्यास प्रश्न – क

1. सम्राट ……….. चीन में …………. के नाम से विख्यात हुए।
2. शरीर के रक्त (Blood), व Body fluids के स्थानान्तरण की विधा को ....कहते हैं।
3. एक्युपंक्चर में 'एक्यु' का अर्थ है –

   क. जीमी ख. रोलर

7.3.1 एक्युपंक्चर का इतिहास –

जब से मनुष्यता का सभ्य समाज के रूप में विकास हुआ है तब से ही चिकित्सक लगातार इस कोशिश में हैं कि अधिक से अधिक प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों तथा औषधियों की खोज की जाए ताकि मनुष्य लम्बे समय तक निरोग रह सके और अगर रोगग्रस्त हो भी जाए तो शीघ्र स्वस्थ हो सके। पुरातन काल से लेकर आधुनिक समय तक शरीर के अनेक रोगों तथा विकारों को दूर करने के लिए जितनी चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हुई है उनमें एक्युप्रेशर–एक्युपंक्चर सबसे पुरानी तथा सबसे अधिक प्रभावशाली पद्धति है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति का उद्भव स्थल या प्रथम अविष्कारक भारतवर्ष ही है। प्राचीन काल से ऋषि–मुनि इस चिकित्सा पद्धति का प्रयोग करते रहे हैं। एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति पूर्णतया प्राकृतिक चिकित्सा है। मर्म चिकित्सा या नाड़ी शास्त्र हमारी संस्कृति की अनुपम देन है, इनमें नाड़ियों या मर्म बिन्दुओं के अंतिम, मध्य तथा आरम्भिक बिन्दुओं पर दबाव डालकर नाड़ी तंत्र को उत्तेजित व अनुत्तेजित कर सभी प्रकार के रोगों का इलाज किया जाता था। मालिश चिकित्सा पद्धति का मूल आधार एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा को ही माना जाता है। इतिहास विदों का मानना है कि भगवान बुद्ध के समय में यह चिकित्सा पद्धति अपनी उन्नति के चरम पर थी। बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के साथ इसका भी विस्तार चीन, जापान, कोरिया आदि पूर्वोत्तर देशों में हुआ। तथा वे वहाँ के लोगों के रहन–सहन में रस बस गई जो कि एक्युपंचर के नाम से प्रसिद्ध है। यही कारण है कि एक्युपंचर में उन्हीं बिन्दुओं का प्रयोग किया जाता है जो एक्युप्रेशर के मूल में विद्यमान है। विद्वानों का मत है कि लगभग 4000 वर्ष पूर्व यह चिकित्सा भारत वर्ष में अपने सर्वोत्तम विकास पर थी तथा यहाँ से इस चिकित्सा का विकास पूर्वोत्तर देशों में पफैला जहाँ पर इसे आधुनिक विकास के साथ जोड़कर एक्युपंचर का नाम दे दिया गया। डॉ. एंटन जयसूर्या के अनुसार इस चिकित्सा पद्धति के श्रीलंका तथा भारत में ऐसे शिलालेख तथा प्रमाण मिले हैं जो लगभग 2000 वर्ष से 4000 वर्ष पुराने हैं। ये शिलालेख विभिन्न एक्युपंचर बिन्दुओं को दर्शाते हैं तथा इन शिलालेखों के माध्यम से न केवल मानव मात्र की चिकित्सा के प्रमाण मिलते हैं बल्कि पशुओं की चिकित्सा के भी प्रमाण मिलते हैं जिन्हें युद्ध में घायल हाथी, घोड़ों की चिकित्सा के लिए प्रयोग किया जाता था। (एक्युप्रेशर चिकित्सा एवं सिद्धांत – डा. हरजीत सिंह)

एक्युपंक्चर पद्धति कितनी पुरानी है तथा इसका किस देश में अविष्कार हुआ, इस बारे में अलग–अलग मत हैं। आयुर्वेद की पुरातन ग्रन्थों में प्रचलित एक्युपंक्चर पद्धति का वर्णन है, इसे आयुर्वेद में सुचिभेदन के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में चीन से जो यात्री भारतवर्ष आए, उनके द्वारा इस पद्धति का ज्ञान चीन में पहुँचा जहाँ यह पद्धति काफी प्रचलित हुई। चीन के चिकित्सकों ने इस पद्धति के आश्चर्यजनक प्रभाव को देखते हुए इसे व्यापक तौर पर अपनाया और इसको अधिक लोकप्रिय तथा समृद्ध बनाने के लिए काफी प्रयास किया। यही कारण है कि आज सारे संसार में यह चीनी चिकित्सा पद्धति के नाम से मशहूर है। डॉ. आशिमा चटर्जी, भूतपूर्व एम.पी. ने 2 जुलाई 1982 को राज्य सभा में यह रहस्योद्‌घाटन करते हुए कहा था कि एक्युपंक्चर का अविष्कार चीन में नहीं अपितु भारतवर्ष में हुआ था। इसी प्रकार 10 अगस्त, 1084 को चीन में एक्युपंचर सम्बन्धी हुई एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में बोलते हुए भारतीय एक्युपंचर संस्था के संचालक डॉ. पी.के. सिंह ने तथ्यों सहित यह प्रमाणित करने की कोशिश की थी कि एक्युपंक्चर का अविष्कार निश्चय ही भारतवर्ष में हुआ था।समय के साथ जहाँ इस पद्धति का चीन में काफी प्रचार बढ़ा, भारतवर्ष में यह पद्धति लगभग लुप्तप्राय सी हो गयी। इसके कई प्रमुख कारण थे। विदेशी शासन के कारण जहाँ भारतवासियों के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन में काफी परिवर्तन आया वहाँ सरकारी मान्यता के अभाव के कारण एक्युपंक्चर सहित कई अन्य प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धतियाँ पुष्पित–पल्वित न हो सकी। यद्यपि आधुनिक युग में चिकित्सा के क्षेत्र में कई नई पद्धतियाँ प्रचलित हो गई है पर चीन में एक्युपंक्चर काफी लोकप्रिय पद्धति है। गत कुछ वर्षों में चीन से इस पद्धति का ज्ञान संसार के अनेक देशों में पहुँचा है। भारत सहित कई देशों में चिकित्सक इस पद्धति का चीन से ज्ञान प्राप्त करके आए हैं।

ऐसा अनुमान है कि छठी शताब्दी में इस पद्धति का ज्ञान सम्भवतः बौद्ध भिक्षुओं द्वारा चीन से जापान में पहुँचा। जापान में इस पद्धति को शियात्सु (SHIATSU) कहते हैं। शियात्सु जापानी शब्द है जो दो अक्षरों 'शि' 'SHI' अर्थात् अँगुलि तथा 'ATSU' आतसु अर्थात् दबाव से बना है। शियात्सु पद्धति के अनुसार केवल हाथों के अँगूठों अथवा अँगुलियों के साथ ही विभिन्न मान्यता 'शियात्सु' केन्द्रों पर प्रेशर दिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति का उद्‌भव स्थल या प्रथम अविष्कारक .... ही है।
2. आयुर्वेद में एक्युपंक्चर को किस नाम से जाना जाता था।

   क. मालिस ख. सूचिभेदन

   ग. एक्युपंक्चर घ. मर्म चिकित्सा

7.6 सारांश –

एक्युपंक्चर चिकित्सा की एक ऐसी आश्चर्यजनक चिकित्सा पद्धति है। जिसमें चिकित्सा औषधि रहित होती है और इस औषधि रहित चिकित्सा पद्धति में कई रोगों का उपचार आश्चर्यजनक रूप से प्राप्त हुआ है। यह एक वैकल्पिक चिकित्सा विधा की शाखा है।जिसके अन्तर्गत शरीर के विभिन्न बिन्दुओं पर वैज्ञानिक विधि द्वारा पंक्चर कर चिकित्सा की जाती है।

एक्युपंक्चर चिकित्सा में हमारे शरीर के निर्दिष्ट बिन्दुओं पर निश्चित दबाव देकर ऊर्जा प्रवाह का संतुलन स्थापित किया जाता है। इसके द्वारा रोगग्रस्त अंग के ऊर्जास्तर को घटा–बढ़ाकर रोगों का उपचार सहज स्वाभाविक रूप से किया जाता है। अतः यह चिकित्सा पद्धति एक निरापद व प्रतिप्रभाव मुक्त है।

7.7 शब्दावली

अंकुश – लोहे का छोटा सा हथियार जो कि महावर के पास होता है।

सम्यक् – ठीक–ठीक ।

सादृश्यता – समरूप, के समान, वैसा ही, प्रतिरूप, तुलनात्मक।

शिलालेख – प्राचीन काल में पत्थरों पर लिखा गया वाक्य या शब्द।

विनिमयन – आदान–प्रदान।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क 1. Huang Di , Yellow Emperor 2. एक्युप्रेशर/एक्युपंचर 3. सुई

अभ्यास प्रश्न – ख 1. भारतवर्ष 2. सूचिभेदन

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. एक्युप्रेशर चिकित्सा एवं सिद्धांत – डा. हरजीत सिंह
2. एक्युप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग– डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
3. एडवांस एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर भाग 1 – माता प्रसाद खेमका
4. एक्युप्रेशर, जीर्ण रोगों का सफल प्राकृतिक उपचार – डॉ एल.एन.कोठारी, डॉ अमृत गुर्वेंद्र

7.10 निबन्धात्मक प्रष्न

1. एक्युपंक्चर क्या है ? एक्युपंक्चर के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2. एक्युपंक्चर के अर्थ एवं विभिन्न परिभाषाओं का सविस्तार वर्णन करें ?
3. एक्युपंक्चर के मूल उत्पत्ति स्थान को सुस्पष्ट करें ?
4. एक्युपंक्चर के इतिहास का सविस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ?

इकाई – 8 एक्युपंक्चर के सिद्धान्त व विधियाँ

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 एक्युपंक्चर के सिद्धान्त
8.3.1 यिन–यांग सिद्धान्त
8.3.2 पंचतत्व का सिद्धान्त
8.4 एक्युपंक्चर द्वारा रोग निदान विधि
8.4.1 एक्यु बिंदु मापन विधि
8.4.2 उपचार विधि
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर का जन्मस्थल भारत देश को ही माना जाता है। अत्यन्त प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में इसके सूत्र बिखरे हुए मिलते हैं। जहाँ एक ओर उपचार से सम्बन्धित प्राचीन गन्थों में **''मर्मभेदन''** शब्द का प्रयोग एक्युपंक्चर की ओर संकेत करता है वहीं महाभारत काले के प्रसिद्ध प्रसंग **''भीष्मपितामह का शरशय्या पर लेटकर इच्छा मृत्यु का वरण करना''** इस बात का द्योतक है कि इस समय तक यह विधा उपचार की एक सक्षम विधा के रूप में व्यवस्थित हो चुकी थी। इन सब महत्वपूर्ण उद्धरणों के होते हुए भी प्राचीन काल में उपचार की एक व्यवस्थित विधा के रूप में एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर भारत में प्रचलित नहीं रहा। इस विधा को उपचार की एक व्यवस्थित विधा के रूप में अपनाकर इसे जीवन्त बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य चीन देश के विद्वानों/उपचरकों ने किया। आज जिस रूप में एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर पूरे विश्व में पुनः प्रसारित हो रहा है उसके मूल में चायनीज एक्युपंक्चर का वह व्यवस्थित रूप है जो सैकड़ों वर्षों तक चीन में उपचार की एकमात्र विधा के रूप में प्रतिस्थपित रहा। अतः आधुनिक चिकित्सा जगत में एक्युप्रेशर/ एक्युपंक्चर का आधार परम्परागत चायनीज औषधि (Traditional Chinese Medicine) ही है। उपचार की इस विधा को समझने के लिए परम्परागत चायनीज औषधि (T.C.M.) का विस्तृत अध्ययन करना अनिवार्य है।

प्रस्तुत इकाई में एक्युपंक्चर के सिद्धान्त व विधियों से परिचित होंगे। एक्युपंक्चर के विभिन्न सिद्धान्तों का अवलोकन होगा तथा उनके विधियों का तात्त्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। इसमें एक्युपंक्चर के यिन–यांग एवं पंचतत्वो का निर्माण व विध्वंस करने वाले पृथक्–पृथक् तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि एक्युपंक्चर के इन विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन कर आपको इसके विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1. एक्युपंक्चर के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
2. एक्युपंक्चर के विभिन्न तत्वों से परिचित हो सकेंगे।
3. निर्माण व विध्वंस चक्रों के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।
4. एक्युपंक्चर के तात्त्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

8.3 एक्युपंक्चर के सिद्धान्त –

एक्युपंक्चर विज्ञान एक निश्चित नियमों एवं सिद्धान्तों पर आधारित है। इनमें प्रथम सिद्धान्त है – यिन–यांग की चिकित्सा का।

8.3.1 यिन–यांग सिद्धान्त :– चायनीज एक्युपंक्चर के अनुसार सम्पूर्ण बह्माण्ड का संतुलन स्थूल रुप से दो परस्पर विरोधी स्वरुप के होते हुए भी एक दूसरे के पूरक बलों पर आधरित है। इसे यिन यांग की संज्ञा दी है। सृष्टि की सर्जना किसी भी धर्म के अनुसार दो परस्पर विपरीत बलों के समागम के फलस्वरुप हुई है। यह प्रकृति नियमन का प्रमुख नियम है। सृष्टि के प्रत्येक वस्तु को हम यिन–यांग (Yin Yang) के अन्तर्गत विभाजित कर सकते हैं। यिन और यांग चीनी भाषा के दो शब्द हैं। ये दोनों शब्द कुछ विशिष्ट गुणों को अभिव्यक्त करते हैं। यिन शब्द लगातार, क्रमिक, अंधेरा, ज्ञात होना, छुपा रहना आदि एक समान गुणों वाले समूह को व्यक्त करता है किन्तु यांग इसके विपरीत प्रवृत्तियों के समूह जैसे–अनियमित, अज्ञात, अचानक, खुला हुआ, दिन आदि को व्यक्त करता है। यिन–यांग दो ऐसी विपरीत प्रवृत्तियाँ हैं जिनके बिना प्रकृति का नियमन संभव नहीं है। जैसे दिन के बाद रात का होना।

चायनीज एक्युपंक्चर के अनुसार यिन वह बल है जो क्षमता के रूप में किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति में विद्यमान है दूसरी तरफ यांग वह बल है जो कार्य के रूप में अथवा अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट हो चुका है। यिन–यांग एक सापेक्ष अवधारणा है। प्रकृति में निरपेक्ष रूप से केवल यिन अथवा निरपेक्ष रूप से यांग का अस्तित्व संभव नहीं है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अथवा व्यक्ति में इन दोनों बलों का किसी न किसी अनुपात में रहना अनिवार्य है। चायनीज एक्युपंक्चर में इस स्थिति को व्यक्त करने के लिए सृष्टि को निम्न चित्र के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है।

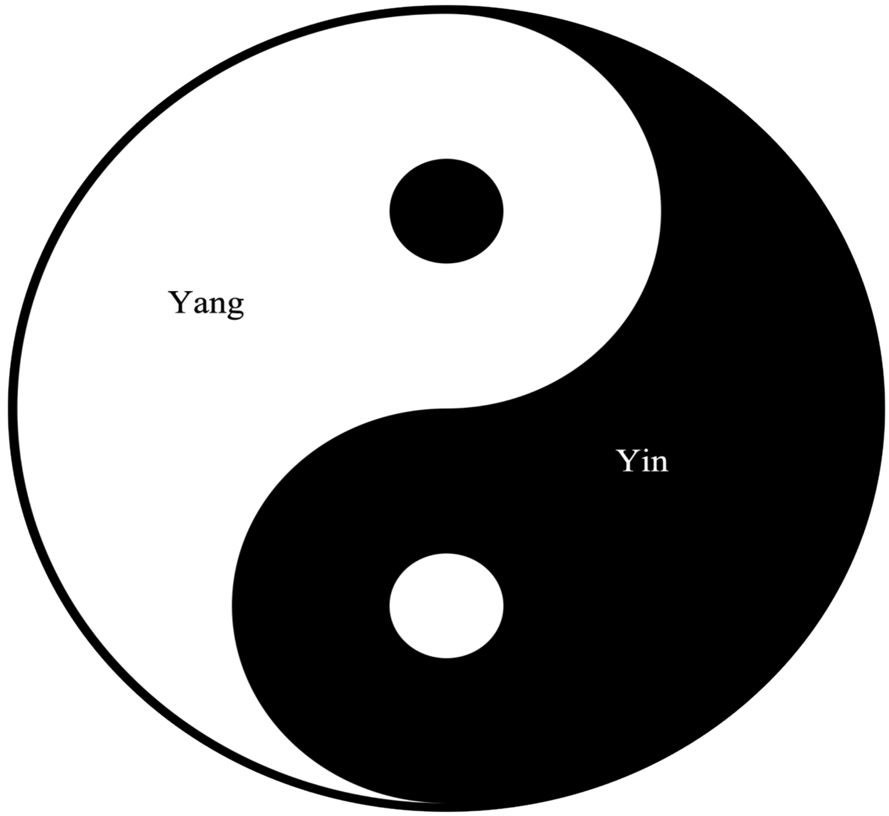

अतः सम्पूर्ण जगत् के भौतिक एवं पराभौतिक गतिविधियों को निम्न प्रकार Yin Yang के रूप में जान सकते हैं।

यिन और यांग में अन्तर

	यिन (Yin)	**यांग** (Yang)
1.	इसमें ठोस अंग (Solid Organ) आते हैं।	इसमें खोखले अंग (Hollow Organ) आते हैं।
2.	मादा (Female)	नर (Male)
3.	जीर्ण अवस्था (Chronic)	तीव्र अवस्था (Acute)
4.	हाथ तथा पैर में अन्दर की तरफ स्थित रहते हैं।	इसमें बाहर की तरफ स्थित रहते हैं।
5.	रात या काला	दिन या सफेद
6.	निर्बल	बलवान
7.	नीचे	ऊपर
8.	स्थिर	अस्थिर
9.	क्षैतिज	उर्ध्व
10.	दांयें	बांयें
11.	शीततर	ऊष्णतर

यिन और यांग के अंग

	यिन		यांग
1.	जिगर, यकृत	(Liver)	पित्ताषय (Gall Bladder)
2.	हृदय	(Heart)	छोटी आंत (Small Intestine)
3.	प्लीहा	(Spleen)	जठर (Stomach)
4.	फेफड़े	(Lung)	बड़ीआंत (Large Intestine)
5.	मूत्रपिंड गुर्दा	(Kidney)	मूत्राषय (Urinary Bladder)
6.	हृदयावरण	(Pericardium)	तीनखाली जगह(Triple Warmer)

ऊपर लिखित यिन तथा यांग अवयवों का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रहता है। यिन–यांग दो परस्पर विपरीत संज्ञाएँ हैं परन्तु एक–दूसरे के पूरक भी हैं। इन्हें हम चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं। यिन काला हिस्सा तथा यांग सफेद हिस्सा दर्शाता है। अतः यिन या यांग सम्पूर्ण रूप से रह नहीं सकता। प्रत्येक यिन में कुछ यांग होता है और प्रत्येक यांग में कुछ यिन होता है। तभी इस सृष्टि का संतुलन संभव है। उदाहरण : मौसम में सर्दी यिन है और गर्मी यांग है। अतः यदि निरन्तर सर्दी/गर्मी बनी रहे तो प्रकृति असंतुलित हो जायेगी। इसी प्रकार हमारे शरीर में यिन–यांग समान रूप में विद्यमान हैं। जैसे अमाशय यांग क्योंकि वह तभी काम करता है जब भोजन आता है परन्तु वह निरन्तर खून के दौरे से प्रभावित रहता है, उसकी संरचना निश्चित रहती है। अतः वह यिन है। किसी भी व्यक्ति/वस्तु के कार्य को यांग दर्शाता है और उसके आकार को यिन दर्शाता है।

जैसे – Stucture is Yin & Function is Yang

यिन–यांग के सिद्धान्त को हम दो के सिद्धान्त से भी समझ सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति/वस्तु एक समय पर यिन हो तो दूसरी व्यक्ति/वस्तु के सापेक्ष वह यांग हो जाती है। जैसे कुर्सी, पलंग की तुलना में यांग है और पलंग बड़े आकार के कारण यिन है। अतः बड़ा यिन और छोटा यांग। इसी कुर्सी को यदि हम एक डिब्बे से तुलना करें तो कुर्सी यिन और डिब्बा यांग होगा। अतः एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु की तुलना में यिन या यांग हो सकती है।

इसी प्रकार हम अपने शरीर में Yin Yang Duality के सिद्धान्त को पहचान सकते हैं। उदाहरण हृदय का कार्य है रक्त को पूरे शरीर में संवितरित करना जो हृदय की यांग क्रिया है। साथ ही हृदय रक्त को पूरे शरीर से वापस एकत्र करता है अतः ये यिन क्रिया भी दर्शाता है। हृदय में हम दोनों क्रियाओं को देख सकते हैं परन्तु मुख्यतः हृदय निरन्तर कार्य करता है अतः यह एक यिन अंग है। यदि हृदय की वास्तविक संरचना में कोई

परिवर्तन आता है तो उसका यिन प्रभावित है और यदि उसके क्रियाशीलता या कार्य में अनियमितता आई तो उसका यांग प्रभावित हुआ है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति/वस्तु में यिन और यांग अपना स्थान बदलता रहता है। इसका उपचार सरल रूप में प्रतिबिम्ब केन्द्रों द्वारा किया जाता है। मनुष्य की स्वस्थ अवस्था में 'ची' अर्थात जीवनीय शक्ति का बिना किसी रुकावट के शरीर में अविरत संचार होता रहता है। इसकी शुरूआत फेफड़ों से होती है। ये शक्ति सभी मेरेडियान में बहती रहती है। 'ची' के संचार में रुकावट होने से ही रोग उत्पन्न होते हैं।

यिन और यांग का शरीर में संतुलित स्थिति में रहना ''स्वास्थ्य'' है और इनमें से किसी एक का कम होना और दूसरे का अधिक प्रमाण में रहना ''रोगावस्था'' कहलाती है। एक्यूप्रेषर और एक्यूपंचर के द्वारा इस जीवनीय शक्ति के संचार को संतुलित किया जाता है।

यिन–यांग सिद्धान्त का प्रयोग हम अनेक बीमारियों के उपचार में कर सकते हैं। जैसे यिन – लगातार काम करने वाले अंग यकृत, हृदय, मस्तिष्क, प्लीहा, फेफड़े, गुर्दा आदि हैं। वैसे ही कभी–कभी काम करने वाले अंग यांग कहलाते हैं जैसे– पित्ताशय, छोटी आंत, रीढ़, आमाशय, बड़ी आंत, मूत्राशय आदि। इनका उपचार इन प्रतिबिम्ब केन्द्रों पर दबाव देकर करते हैं। यदि यकृत के सादृश्य पर दबाव देने से दर्द हो तो यकृत (Liver) का रोग हो सकता है। इसी प्रकार यदि गुर्दा (Kidney) के सादृश्य बिन्दु पर दबाव देने से दर्द महसूस हो तो गुर्दे के रोग की सम्भावना होती है। अतः इन बिन्दुओं पर नियमित दबाव देकर हम किसी भी गम्भीर यिन रोग के प्रवेश से बच सकते हैं। अतः यिन और यांग हमारे शरीर में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि यांग तकलीफ या बिमारी पर नियन्त्रण न पाया गया तो वह यिन में परिवर्तित होकर एक गम्भीर रूप धारण कर लेती है। जैसे – साधरण सर्दी–खांसी यांग रूप में होती है परन्तु यदि ये नियमित बनी रहे तो यिन अंग फेफड़े की बिमारी में परिवर्तित होकर टी.बी., अस्थमा आदि बन जाती है।

अभ्यास प्रश्न – क

1. यिन–यांग एक .... अवधारणा है।
2. यिन ऊर्जा की प्रकृति है –

   क. ठण्डा ख. गर्म
3. पित्ताशय किस प्रकार के अंग है –

   क. यिन ख. यांग

8.3.2 पंचतत्व का सिद्धान्त :– एक्युपंक्चर एवं एक्यूप्रेशर के सिद्धान्त के अनुसार हमारा शरीर ही नहीं बल्कि समस्त संसार पंच तत्वों से निर्मित है। शरीर के प्रमुख 12 अवयव भी इन्हीं पंच महाभूतों से निर्मित है। चीन का ग्रन्थ Nei Jing के अनुसार ये पंच तत्व हैं, लकड़ी (Wood) अग्नि (Fire), पृथ्वी (Earth), जल (Water) एवं धातु (Metal)। इन्हीं पंच तत्वों से सृष्टि के सारे पदार्थ निर्मित हैं। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ इन पंच तत्वों में से एक या अनेक से सम्बन्धित रहते हैं।

भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में भी पंच तत्वों का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। ये पंच तत्व वायु, अग्नि, जल पृथ्वी और आकाश है। इन पंचतत्वों का वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद में निम्न प्रकार से मिलता है।

आत्मनो आकाशः सम्भूतः। आकाशत वायुः।
वायोरग्निः अग्नेः आप । अदभ्यः पृथ्वी ।
प्रथिव्यो औषधयः। औषधीभ्योन्नं। अन्नात् पुरुषः।।

अर्थात् आत्मा से आकाश पैदा हुआ तथा आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न तथा अन्न से पुरुष मात्र की उत्पत्ति हुई। अर्थात् यह सम्पूर्ण मानवीय देह इन पंच महाभूतों का ही संधात याने समन्वित रूप है।

पंच तत्त्व सिद्धान्त ,एक्युप्रेशर उपचार पद्यति का प्रमुख आधार है। ये पांच तत्त्व, शरीर के नियामक है। इन तत्त्वों से बना शरीर यिन–यांग के सिद्धान्त एवं इन तत्त्वों से सम्बन्धित ऊर्जाएँ – वायु (चंचलता), उष्णता, आद्रता, भावुकता (रूखापन) एवं शीतलता पर आधारित है। चीन देश के दार्शनिकों ने पंच तत्त्वों में थोड़ा सा परिर्वतन करके वायु के स्थान पर काष्ठ (Wood) तथा आकाश (Space) के स्थान पर धातु (Matel) प्रस्थापित किया है। इन पांचों ऊर्जाओं के समवेद स्वरूप को जैव ऊर्जा (Bio energy) कहते हैं जो विभिन्न देशों में विभिन्न नामों जैसे– चीन में 'ची', जापान में 'की', भारत में 'प्राण' तथा पाश्चात्य देशों में 'Vital force' से जाना जाता है। इस प्रकार एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्यति पूर्णतया प्रकृति के सिद्धान्तों पर आधरित है।

इस चक्र द्वारा तत्त्व व ऊर्जा दो विभिन्न यिन–यांग रूपों में प्रकट होती है। प्रत्येक वस्तु अथवा व्यक्ति जिस तत्त्व से निर्मित हैं, वही ऊर्जा प्रकट करते हैं। अतः हम कह सकते हैं **'तत्त्व'** यिन गुण है और **'ऊर्जा'** यांग गुण है। जहाँ तत्त्व किसी वस्तु के **निर्माण** (Structure) का ज्ञान कराता है वहीं ऊर्जा उसकी **क्रियाशीलता** (Function) दर्शाती है। अतः तत्व–ऊर्जा यिन–यांग सिद्धान्त के समरूप हैं व पंचतत्व सिद्धान्त का प्रकृति संतुलन में विशेष भूमिका प्रमाणित करते हैं।

पंच तत्त्व सिद्धान्त का सार –

1. हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित है।
2. पंच तत्त्वों की सम्यावस्था ही स्वास्थ्य है।
3. इनमें से किसी एक या एक से अधिक तत्वों के असंतुलन ही रोग का कारण है।

प्राचीन समय से ऐसा माना जाता है कि मनुष्य का शरीर पांच तत्वों से मिलकर बना हुआ है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश। प्रत्येक तत्वों का हमारे शरीर में अपनी तरह से अलग–अलग प्रभाव है। प्रत्येक व्यक्ति में इन पांच तत्वों में से किसी एक तत्व का प्रभाव ज्यादा होता है। इसलिये प्रभावी तत्वों का असर उस व्यक्ति के गुण व्यवहार में दिखाई देते

हैं। जब इनमें से कोई भी तत्व शरीर में असंतुलित हो जाता है यानि उस तत्व विशेष की मात्रा शरीर में आवश्यकता से कम अथवा अधिक हो जाती है तो शरीर बीमार हो जाता है और व्यक्ति असहज महसूस करने लगता है। ऐसे में असंतुलित तत्व को यदि संतुलित कर दिया जाये तो बीमारी पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यदि शरीर में जल तत्व बढ़ जाये तो शरीर के विभिन्न अंगों में सूजन आ सकती है। और उन अंगों को दबाने से वहाँ गड्ढा पड़ने लगता है। इसका उपचार शरीर में जल तत्व की मात्रा को घटाकर और संतुलित कर शरीर के अंगों की सूजन को मिटाया जा सकता है। इसी प्रकार यदि शरीर में पृथ्वी तत्व बढ़ गया है तो व्यक्ति मांसल तथा मोटा हो जाता है। ऐसे में पृथ्वी तत्व का संतुलन कर मोटापा घटाया जा सकता है। आवश्यकता है जानने की उन एक्युप्रेशर–एक्युपंक्चर बिन्दुओं की, जिन पर उपचार कर इन पाँच तत्वों को संतुलित किया जा सके। इसी का सम्यक् ज्ञान कराता है – पंच तत्वों का सिद्धान्त (Five Element Theory)

आवश्यकता है जानने की, हमारे शरीर के उन अवयवों की, जो इन पांच तत्वों से सम्बन्ध रखते हैं। इन Organs का उपचार कर हम शरीर में पाँच तत्वों का संतुलन स्थापित कर सकते है। साथ ही उन अन्तःग्रन्थियों की जो इन पाँच तत्वों का हमारे शरीर में Hormonal स्राव द्वारा संतुलन बनाये रखती है।

इन पाँच तत्वों के संतुलन से हम शरीर की पुरानी तथा घातक बीमारियों का उपचार कर सकते हैं। भविष्य में बीमारी न आये, इसके लिये रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास भी कर सकते है। यहाँ तक कि आने वाली शताब्दी की घातक से घातक बीमारियों उपचार भी इस पंच तत्व नियमन सिद्धान्त में समाहित है। आवश्यकता है इन तत्वों को भली भांति जानने की तथा शरीर संचालन में इनकी महत्ता को समझने की। उन लक्षणों को जानना जरूरी है जिनसे पता चल कि कौन सा तत्व हमारे शरीर में असंतुलित हुआ है ? असंतुलन कितना है ? असंतुलन किस प्रकार का है ? क्या यह असंतुलन पुराना है अथवा नया ? अगर असंतुलन पुराना है तो क्या उपचार होगा तथा अगर असंतुलन Acut है तो क्या उपचार होगा।

चीन में पाँच तत्व जिनसे स्वर्ग, पृथ्वी और मनुष्य बने हैं वे इस प्रकार है जल (Water), काष्ठ (Wood), अग्नि (Fire), पृथ्वी (Earth), और धातु (Metal) । इसमें आकाश तत्व को धातु के रूप में एवं वायु तत्व को काष्ठ के रूप में माना गया है। इसमें काष्ठ तत्व को प्रधान तत्व माना जाता है। अब हमें यह जानना है कि हमारे शरीर का कौन सा Organ इन पांच तत्वों में किससे संबन्धित है।

इसकी तालिका निम्न प्रकार है –

Yin Organs	Yang Organs	Related element
1 Liver	Gall Bladder	Wood
2 Heart	Small Intestine	Fire
3 Spleen/Pancreas	Stomach	Earth
4 Lungs	Large Intestine	Metal
5 Kidney	Urinary Bladder	Water

लीवर Wood Element (काष्ठ) है। इसलिये इसे Master of Metabolic Organ कहा गया है। लीवर ही अपने आप में एक ऐसा अंग है जिससे पुनर्उत्पन्न शक्ति (Regenerative Power) है।

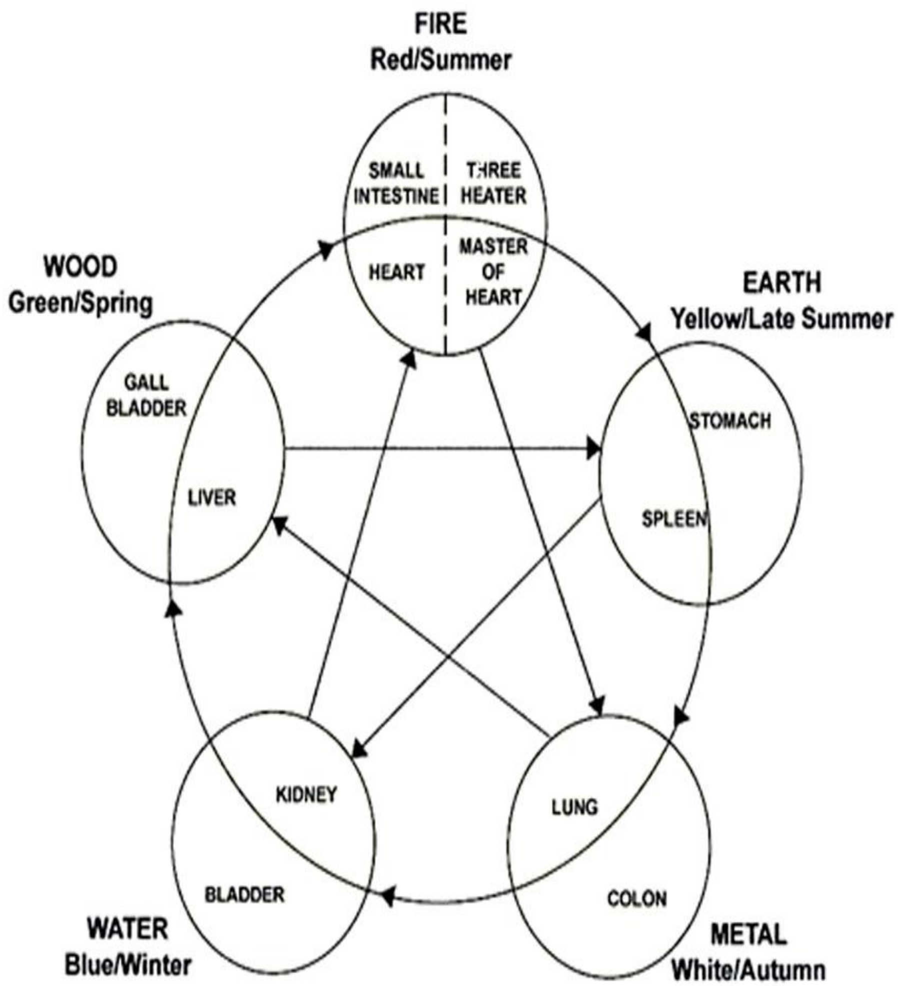

चीन में Wife Organ को Yin कहते है तथा Husband Organ को Yang कहते है। ये Wife Organ जिन्हें Solid Organ भी कहते है वे इस प्रकार हैं – Heart, Spleen, Lungs, Kidney & Liver, ये Organs मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक अनवरत बिना रूके कार्य करते रहते है और जब ये Organs कार्य करना बंद कर देते है तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। जैसे हृदय–जब हम पैदा हुए थे, तब से हमारे हृदय ने धड़कना प्रारम्भ कर दिया था तथा यह लगातार धड़कता रहता है और जब यह धड़कना बंद कर देता है तब हम मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। यानि हृदय एक ऐसा Organ है जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त बिना रूके चौबीसों घंटे लगातार प्रतिपल कार्य करता रहता है।

जो Husbend Organ उन्हें Hollow Organs भी कहते है। ये इस प्रकार हैं, Stomach, Large Intestine, Urinary Bladder आदि। इन Husbend organs के पास जब जब कार्य करने को आता है तो यह कार्य करते है और जब कार्य करने को नहीं रहता है तो ये विश्राम करते है। जैसे जब हम भोजन करते हैं तो वह पेट में पाचन के लिये जाता है। पेट उसे चार घंटे ते पचाने का कार्य करता है और इसके बाद उसे आगे Small Intestine में भेज देता है तथा स्वयं पेट विश्राम करने लगता है। फिर हम खाते हैं तो फिर पेट काम करने लगता है। जिस दिन हम उपवास करते हैं उस दिन पेट विश्राम करता है इस प्रकार इन Husbend organs के पास काम आया तो कर दिया और अगर काम नहीं आया तो विश्राम करते हैं।

इन पाँचों तत्वों में दो प्रकार के चक्र होते हैं –

1. निर्माणकारी चक्र (Creative Cycle)
2. विनाशकारी चक्र (Destructive Cycle)

इन चक्रों द्वारा तत्व, ऊर्जा, और अंग का संबंध बतलाया गया है

5 Elements - Wood, Fire, Earth, Metal, Water

5 Energy - Wind, Heat, Humidity, Dryness, Coldness

5 Pairs of Organs _ Liv/GB, H/Si, Sp/St, Lu/Li, K/UB

1 निर्माणकारी /सृजनात्मक चक्र (Creative Cycle) :– प्रत्येक तत्व में सृजन की क्षमता या Creative Power होता है। जिसे अंतः स्थित ऊर्जा कहा गया है। यह विशेष गुण हर एक तत्व, ऊर्जा व अवयव का होता है। इन पाँचों तत्वों का आपस में एक दूसरे से संबंध हैं, इस चक्र में एक तत्व से दूसरे तत्व उत्पन्न होता है। जैसे काष्ठ अग्नि से जलकर राख बनता है। राख अर्थात् पृथ्वी तत्व के अन्दर धातु तत्व होते हैं और धातु उच्चतम ताप पर गर्म होकर द्रव में परिवर्तित हो जाते है। जो पौधे की पोषण एवं विकास के लिये आवश्यक होता है। इस प्रकार से ब्रह्माण्ड में यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। इसे Creative Cycle अथवा Generative Cycle (उत्पादक चक्र) कहते हैं। Creation Cycle के अनुसार Wood या काष्ठ तत्व अग्नि तत्व को जन्म देता है। अतः Wood को Fire की माता कहा गया और Fire को Wood तत्व का पुत्र। इससे माता–पुत्र या Mother-Son Low की स्थापना हुई। ये चित्र नं. 2. में दर्शाया गया है।

चिकित्सकीय उपयोग :– एक्यूपंचर तथा एक्यूप्रेशर के सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा की दृष्टि से इस रचनात्मक चक्र का उपयोग किया जाता है। रोगों की जीर्ण अवस्था में रचनात्मक चक्र का उपयोग करते हैं। रोगों को जीर्ण अवस्था में रचनात्मक चक्र का उपयोग करते हैं। उदाहरण जीर्ण दमा रोग (Chronic Asthma) यह फेफड़े का रोग है। फेफड़े अवयव धातु के अन्तर्गत आते हैं। धातु तत्व का निर्माण पृथ्वी तत्व से होता है। इसलिए इस चक्र के अनुसार लंग मेरीडियान के धातु प्वाइंट (Earth Point i.e. Lu.9.) का प्रयोग किया जाता है।

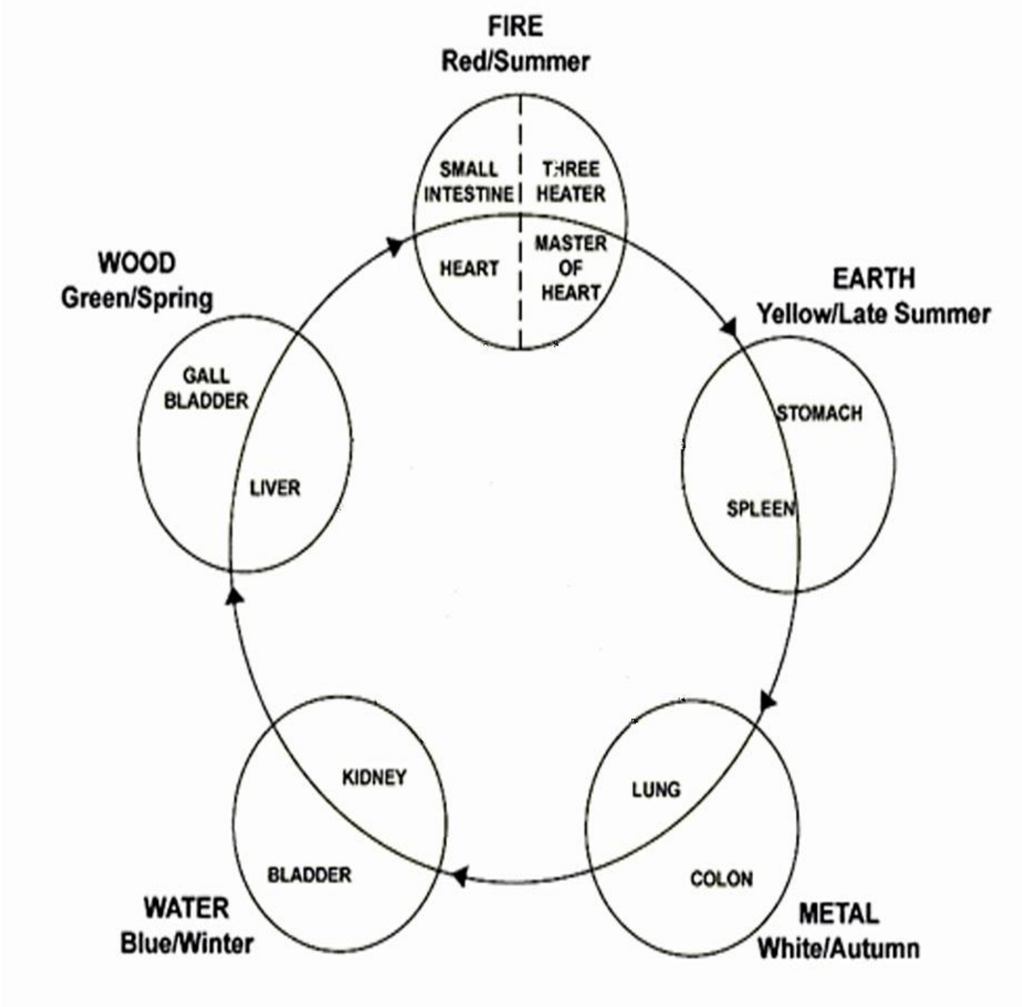

2 **विनाशकारी चक्र (Destructive Cycle) :–** इन पाँच तत्वों में कुछ तत्व एक दूसरे के नियंत्रक हैं। जल अग्नि को बुझा देता है, अतः जल अग्नि का नियन्त्रक है। अतः जल तत्व से संबंधित organs kidney तथा urinary bladder अग्नि तत्व से संबंधित organs heart एवं small intestine के नियन्त्रक है।

इसी प्रकार पेड़ (काष्ठ) पृथ्वी को ढक लेते है। अतः काष्ठ पृथ्वी का नियन्त्रक है। अतः काष्ठ तत्व से संबंधित organs, liver &gall bladder पृथ्वी तत्व से संबंधित organ, spleen,& stomach के नियन्त्रक है।

अग्नि धातु को गला देती है। अतः Fire is controller of Metal.

धातु की आरी पेड़ को काट देती है अतः Metal is controller of Wood.

पृथ्वी से जल (नदी) पर बाँध बाँधा जाता है अतः Earth is the controller of Water.

।इन पाँचों तत्वों का संबंध चित्र नं. 3 पर दिखाया गया है।

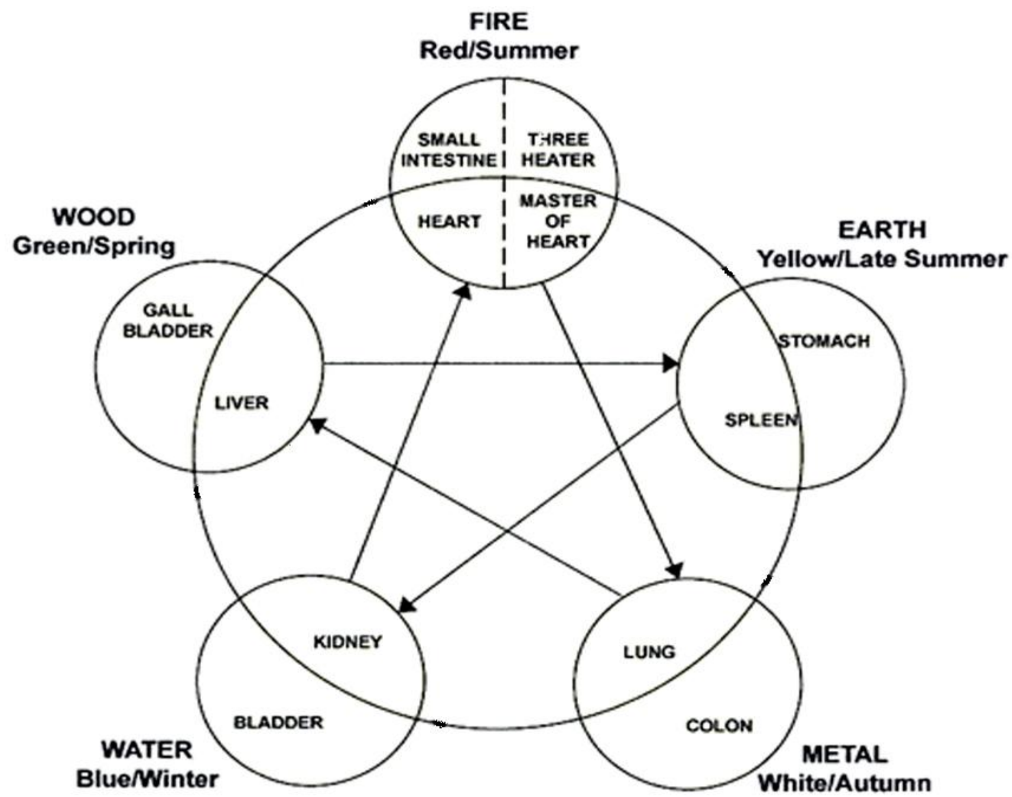

चिकित्सकीय उपयोग :– रोग की तीव्र अवस्था (Acute Disease) में विनाशकारी चक्र का उपयोग किया जाता है। उदाहरण दमा की तीव्र अवस्था में विनाशकारी चक्र का प्रयोग करते हैं। दमा फेफड़े से सम्बन्ध रखता है और फेफड़े यह अवयव धातु तत्व के अन्तर्गत आते हैं और धातु का विनाश अग्नि से होता है। इसलिए तीव्र दमा में फेफडे के अग्नि बिन्दु (Fire Point i.e. Lu. 10) का प्रयोग करते हैं।

THE FIVE ELEMENT POINTS IN THE YIN CHANNELS

Five Element Point	Wood	Fire	Earth	Metal	Water
Lung	Lu.11	Lu.10	Lu.9	Lu.8	Lu5
Pericardium	P.9	P.8	P.7	P.5	P.3

Heart	H.9	H.8	H.7	H.4	H.3
Spleen	Sp.1	Sp.2	Sp.3	Sp.5	Sp.9
Liver	Liv.1	Liv.2	Liv.3	Liv.4	Liv.5
Kidney	K.1	K.2	K.3	K.7	K.10

THE FIVE ELEMENT POINTS IN THE YANG CHANNELS

Five Element Point	Wood	Fire	Earth	Metal	Water
Large Intestine	LI.1	LI.2	LI.3	LI.5	LI.11
Sanjiao	SJ.1	SJ.2	SJ.3	SJ.6	SJ.10
Small Intestine	S.I.1	S.I.2	S.I.3	S.I.6	S.I.8
Stomach	St.45	St.44	St.43	St.41	St.36
Gall Bladder	G.B.44	G.B.43	G.B.41	G.B.38	G.B.34
Urinary Bladder	U.B.67	U.B.66	U.B.65	U.B.60	U.B.40

"अवयव घड़ी सिद्धान्त" (ORGAN CLOCK THEORY)

मेरिडियान में जीवनीय शक्ति संचार सतत होता रहता है। 12 अवयवों में से प्रत्येक अवयव में निष्चित समय पर जीवनीय शक्ति का आधिक्य रहता है। उस निष्चित समय पर उन अवयवों के रोग का निर्धारण और चिकित्सा करने पर रोगी को अधिक उपषमन मिलता है। उदा. के लिए फेफड़ों (Lung) में जीवनीय शक्ति का प्रवाह सुबह 3 से 5 बजे तक अधिक रहता है। अर्थात् यह वही समय है, जिसमें फेफड़े के रोग के लक्षण बढ़े हुए रहते हैं। इस समय आसानी से रोग निदान किया जा सकता है तथा इस समय पर उस रोग की चिकित्सा करने से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। समय अवधि के इस शक्ति का प्रवाह को अवयव घड़ी सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है।

यहां प्रत्येक अवयव, उसके सम्बद्ध मेरिडियान का नाम तथा जिस समय पर शक्ति का प्रवाह अधिक हो वह समय निम्न आकृति में दर्षाया गया है।

	मेरिडियान	**समय**	**तत्व बिन्दु**
1.	फेफड़े (Lung)	3 से 5 प्रातः	Lu 8
2.	बड़ी आंत (Large Intestine)	5 से 7 प्रातः	Li 1
3.	जठर (Stomach)	7 से 9 प्रातः	St 36
4.	प्लीहा (Spleen)	9 से 11 दोपहर	Sp 3
5.	ह्रदय (Heart)	11 से 1 दोपहर	H 8
6.	छोटी आंत (Small Intestine)	1 से 3 दोपहर	Si 5
7.	मूत्राशय (Urinary Bladder)	3 से 5 दोपहर	UB 66
8.	मूत्रपिंड (Kidney)	5 से 7 शाम	K 10
9.	ह्रदयावरण (Pericardium)	7 से 9 शाम	P 8
10.	ट्रिपल वॉर्मर (Tripple Warmer)	9 से 11 रात्रि	Tw 6
11.	पित्ताशय (Gall Bladder)	11 से रात्रि 1.00 रात्रि	GB 41
12.	यकृत (Liver)	1 से 3 रात्रि	Liv 1

इस प्रकार जीवनीय शक्ति का प्रवाह अवयवों से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। अन्य चिकित्सा पद्धतियों में केवल सूक्ष्म शरीर पर ही ध्यान दिया जाता है। जबकि एक्यूपंचर में सूक्ष्म शरीर पर भी ध्यान दिया जाता है। नाडी द्वारा निदान करते समय भी हमें इस समय अवधि का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि निश्चित समय पर निश्चित ढग से मेरिडियान में जीवनीय शक्ति का प्रवाह अधिक रहता है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. पांचों ऊर्जाओं के समवेद स्वरूप को .... कहते हैं ।
2. दोपहर 9–11 का समय किस अंग का है –

क.	आमाशय	ख.	लिवर
ग.	प्लीहा	घ.	वृक्क

8.4 एक्युपंक्चर द्वारा रोग निदान विधि

जब शरीर का कोई अवयव रोगग्रस्त होता है तब उस अवयव के पैर के तलुवे एवं हाथ की हथेली पर स्थित प्रतिनिधि बिन्दुओं पर दर्द होता है जो बिन्दु को दबाने पर विषेषतः महसूस होता है। कई बार रोग के आरम्भ के दिनों में कोई प्रत्यक्ष लक्षण दिखाई नही देते। ऐसी परिस्थिति में रोग का निदान करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में एक्युपंक्चर का उपयोग सही मायने में होता है। एक्युपंक्चर बिंदु रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही वेदनाग्रस्त हो जाते हैं और यह बात रोग निदान करने के लिये महत्वपूर्ण होती हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही निदान हो जाने से तुरन्त उपचार शुरू किया जा सकता है तथा रोग के लक्षण धीरे–धीरे कम किए जा सकते हैं।

8.4.1 एक्यु बिंदु मापन विधि

यदि कोई अवयव रोगग्रस्त हैं तो उससे सम्बन्धित बिन्दु अत्यन्त संवेदनशील और वेदना युक्त हो जाती है। बिंदु के आसपास का भाग कम वेदनायुक्त रहता है। बिंदु का सही स्थान निश्चित करना उतना ही आवश्यक है जितना कि किसी रोग को मापने के लिए निम्नांकित विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

1. रोगी के अंगूठे के पहले जोड़ की चौड़ाई को 1 च्युन माना जाता है।
2. दो उंगलियां (तर्जनी और मध्यमा, अनामिका) की चौड़ाई के प्रमाण को 1.5 च्युन माना जाता है।
3. तीन अंगुलियों (तर्जनी, मध्यमा, अनामिका) की चौड़ाई के प्रमाण को 2 च्युन माना जाता है।
4. चार अंगुलियों (तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका) की चौड़ाई के प्रमाण को ''3च्युन कहते हैं।

यह च्युन का नाप लेने के लिए ''च्युनोमीटर नामक एक उपकरण मिलता है। किन्तु सर्वसाधारण तौर पर रोगी की अंगुली से च्यून का मापना अधिक युक्तिसंगत और सही मापदण्ड है।

- बिन्दु के ऊपर की त्वचा पर कभी कभी सूजन रहती है।
- बिन्दु के ऊपर का तापमान अन्य स्थान की अपेक्षा अधिक हो सकता है।

- बिन्दु का सही स्थान निश्चित करने के लिये कुछ विशेषज्ञ ''प्वाइंट डिटेक्टर'' का प्रयोग करते हैं।

8.4.2 उपचार विधि

उपचार की मुख्यतः 3 क्रम होते हैं :–

1. पूर्व कर्म 2. प्रधान कर्म 3. पश्चात् कर्म

1. पूर्व कर्म :– मुख्य विधि करने से पूर्व की जाने वाली क्रिया को पूर्व कर्म कहते हैं। इसके मुख्यतः 2 भाग होते हैं।

क. रोगी सम्बन्धित ख. विशेषज्ञ सम्बन्धित

रोगी को सांत्वना देकर 3–5 मिनट तक आराम करने दें। हो सके तो योगासन में वर्णित मकरासन एवं शवासन का अभ्यास करायें। उसके प्श्चात रोगानुसार तय किये गए बिन्दुओं का निश्चितीकरण करते हैं। रोगी की शारीरिक स्थिति आरामदायक तथा सुखकारक होनी चाहिए। रोगी तथा विशेषज्ञ की सुविधानुसार बैठाकर या लिटाकर उपचार कर सकते हैं। उपचार शुरू करने से पूर्व रोगी को सबसे प्रभावशाली ''सिम्पैथी'' (Sympathy) देनी चाहिए। जिससे कि रोगी का मनोबल बढ़े एवं उसका रोग अवश्य ही इस पद्धति से दूर होगा, ऐसा उसे विश्वास हो जाये।

2. प्रधान कर्म :– एक्युपंक्चर रोगी के शरीर के जिस स्थान पर करना हो वह स्थान विशेषज्ञ के करीब होना चाहिए। इसमें बिन्दु की स्थिति, रोगी की शारीरिक स्थिति, संघटन, बल, आयु और रोग के प्रकार, इन सब बातों पर विशेषतः ध्यान देना चाहिए।

काल अवधि :– प्रत्येक बिंदु पर 10 से 15 मिनट तक सुई लगाना चाहिए। यह क्रिया दिन में दो बार दे सकते हैं।

एक्युपंक्चर निम्न स्थितियों में नहीं लेना चाहिए

1. बहुत ज्यादा पसीना बह रहा हो या फिर बहुत से पैदल चलकर आने पर जब सांस फूल रही हो और नाड़ी भी तेज हो तो थोड़ी देर रूक कर उपचार करायें।
2. बहुत तेज भूख लगी हो या उपवास के दिन हो तब न लें।
3. भोजन करने के तुरन्त बाद भी न लें।
4. किसी प्रकार की दवाई के सेवन करने के 1 या 2 घण्टे के पश्चात ही एक्युपंक्चर लेना चाहिए।
5. ठंडे या गर्म पानी से स्नान करने के तुरन्त बाद न लें।
6. गर्भावस्था में एक्युपंक्चर का उपचार लेना लाभप्रद है। क्योंकि इस काल में अन्य औषधि एवं उपचार वर्जित होते हैं। यही प्राकृतिक एवं सरल विधि है, जो इस काल में उपयुक्त है।
7. जल जाने पर, त्वचा पर आघात होने पर या किसी हड्डी के टूट जाने पर भी यह उपचार नहीं लेना चाहिए।

एक्युपंक्चर लेने के प्रारम्भिक काल में कभी–कभी रोगी को कुछ अस्थायी लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे सिर दर्द, सर्दी आदि। यह लक्षण कुछ दिनों के बाद स्वतः शान्त हो जाते हैं। विशेषज्ञ उनको शुभ संकेत मानते हैं। किसी–किसी रोगी में यह लक्षण उत्पन्न भी नहीं होते हैं।

अभ्यास प्रश्न – ग

3. रोगी की अंगुली से .... का मापना अधिक युक्तिसंगत और सही मापदण्ड है।
4. ''सिम्पैथी'' (Sympathy) उपचार की कौन सी क्रम है –

क.	पूर्व	ख.	प्रधान
ग.	पश्चात् कर्म	घ.	इनमें से कोई नहीं

8.5 सारांश –

मानव ने आरम्भ से ही प्रकृति की रचना और उसके क्रियाकलापों के रहस्य को जानने का प्रयास किया है। संसार के कई हिस्सों में सोच के आधार पर उन्नत सभ्यताओं का विकास हुआ है। इनमें से सबसे पुरानी सभ्यताएँ भारत, मिस्र एवं चीन की मानी जाती है।

चीन की सोच का एक महत्वपूर्ण परिणाम एक्युपंक्चर विधा का विकास है। उनके अनुसार इस ब्रह्माण्ड की रचना और क्रियाकलाप दो बलों – Yin एवं Yang के फलस्वरूप चलता है। (अ) यांग बल का वह पहलू है, जो हमेशा अव्यक्त से व्यक्त का कारण है। (ब) यिन–बल का वह पहलू है, जो अव्यक्त और व्यक्त दोनों में स्थिरता/समानता का कारण है।

यांग बल के कारण ही दो मनुष्य एक जैसे नहीं मिलते। यही वह बल है, जिसके कारण संतानोत्पत्ति नया जन्म, नई सूरत, नया आकार–प्रकार, नयी सोच, संख्या, परिमाप और गुणवत्ता सम्भव होती है। यिन वह बल है, जिसके कारण वह सारी चीजें जो व्यक्त नहीं हुई, अव्यक्त है, यही वह बल है, जिसके कारण मनुष्य की संतान, पशु की संतान, वस्तुओं के आकार–प्रकार, जीव–जन्तुओं की सोच, व्यवहार और आदतों में स्थिरता और समानता होती है। इसी बल के कारण हमारी पहचान और संज्ञा का निर्धारण हो पाता है।

यिन–यांग के आपसी क्रिया, प्रतिक्रिया के फलस्वरूप संसार के उत्पत्ति विकास और विनाश में एक निश्चित क्रम मिलता है। इन क्रमों को चायनीज विद्वानों ने अच्छी तरह समझा और उपचार में उसका उपयोग किया। इस क्रम को प्रकृति में और शरीर में पंचतत्व सिद्धात के रूप में जाना जाता है।

8.6 शब्दावली

संवितरित – समान मात्र में वितरण।
नियन्त्रक – एक का दूसरे के ऊपर कन्ट्रोल।
सिम्पैथी – सहानुभूति
च्यून – शरीर की एक्यु बिन्दु का माप ईकाइ।
सापेक्ष – एक दूसरे के अन्दर विद्यमान होना।

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. सापेक्ष 2 ठण्डा 3 यांग
अभ्यास प्रश्न – ख	1. जैव ऊर्जा (Bio energy) 2. प्लीहा
अभ्यास प्रश्न – ग	1. च्यून 2. पूर्व

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ –

1 एक्युप्रेशर चिकित्सा एवं सिद्धांत – डा. हरजीत सिंह
2 एक्युप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
3 एडवांस एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर भाग 1 – माता प्रसाद खेमका
4 एक्युप्रेशर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण – डॉ रविन्द्र बागे
5 पंचतत्व विज्ञान – के. के. मिश्र
6 एक्युप्रेशर, जीर्ण रोगों का सफल प्राकृतिक उपचार – डॉ एल.एन.कोठारी, डॉ अमृत गुर्वेंद्र

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 यिन–यांग के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2 एक्युपंक्चर चिकित्सा में यिन–यांग की भूमिका का सविस्तार वर्णन करें ?
3 पंचतत्व के सिद्धान्त का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजियें ?
4 पंचतत्व सिद्धान्त के विभिन्न सृजनात्मक व विध्वंसात्मक चक्रों का सविस्तार वर्णन करें ?

इकाई – 9 एक्युपंक्चर चिकित्सा के लाभ, सावधानियाँ एवं सीमाएँ

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मेरिडियन्स Meridiyans
9.4 **Yin और Yang organ के कार्य**
9.5 एक्युपंक्चर की लाभ
9.6 एक्युप्रेशर की सावधनियाँ
9.7 एक्युप्रेशर की सीमाएँ
9.8 एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर द्वारा बिमारियों का उपचार
9.9 सारांश
9.10 शब्दावली
9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा एक ऐसी वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति है। जिसमें चिकित्सा औषधि रहित होती है और इस औषधि रहित चिकित्सा पद्धति में कई रोगों का निदान आश्चर्यजनक रूप से प्राप्त हुआ है। यह एक सत्य है कि प्रत्येक विधाओं की अपनी सीमायें होती है। सिद्धान्ततः यह पद्धति अन्य प्रचलित विधाओं के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप न करते हुए अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुए हैं। इस चिकित्सा के अन्तर्गत शरीर के विभिन्न एक्यु बिन्दुओं पर वैज्ञानिक विधि द्वारा विशेष प्रकार की सुई से पंक्चर किया जाता है। यह पद्धति हमारे देश में प्राचीन काल से प्रचलित है। इसे द्वारा हमारे शरीर के निर्दिष्ट बिन्दुओं को उद्वेलित कर ऊर्जा प्रवाह का संतुलन स्थापित किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में एक्युपंक्चर चिकित्सा के लाभ, सावधानियाँ एवं सीमाओं से परिचित होंगे। एक्युपंक्चर के बृहद् स्वरूप मेरिडियन का अवलोकन होगा तथा एक्युपंक्चर के तात्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें एक्युपंक्चर का निर्माण करने वाले पृथक्–पृथक् तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि एक्युपंक्चर के इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर आपको एक्युपंक्चर के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

- एक्युपंक्चर के लाभ, सावधानियाँ एवं सीमाओं से ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
- एक्युपंक्चर के विभिन्न प्रवाह पथ से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न आयु वर्गों के लिए एक्युपंक्चर के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।
- एक्युपंक्चर के तात्त्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

9.3 मेरिडियन्स Meridiyans

मेरिडियन्स शरीर के अन्दर जैविक ऊर्जा की काल्पनिक रेखायें हैं। इन रेखाओं में (Bio Energy) जैविक ऊर्जा का निरन्तर प्रवाह बना रहता है जिसे चैनल के नाम से जानते हैं। ये चैनल शरीर की जिन मुख्य अंगों से होकर गुजरती है उस अंग के नाम से मेरिडियन का नामकरण किया गया है।

चायनीज एक्युपंक्चर के अनुसार शरीर में ऊर्जा के आने–जाने के कुछ निश्चित मार्ग है जिन्हें मेरीडियन या ऊर्जा प्रवाह पथ कहा जाता है। ऊर्जा शरीर में होने वाले असंतुलन को दूर करने के लिए इन्हीं ऊर्जा प्रवाह पथों अथवा मेरीडियन्स का सहारा लिया जाता है। वैसे तो ये मेरीडियन असंख्य है तथापि उपचार की दृष्टि से चायनीज एक्युपंक्चर में शरीर के अवयवों पर आधारित बारह मेरीडियन तथा इनकी दो नियन्त्रक मेरीडियन मानी गयी है। अतः शरीर में कुल 14 मेरिडियन चैनल है जिसमें 12 जोड़े में (Paired) एवं दो मेरिडियन चैनल स्वतन्त्र है। इनमें 6 मेरिडियन (Yin) यिन ऊर्जा एवं 6 मेरिडियन यांग ऊर्जा (Yang) से संबंधित है एवं दो स्वतन्त्र मेरिडियन शरीर के मध्य भाग से गुजरती है। इनमें एक शरीर के मध्य भाग सामने की ओर से और एक मध्य भाग में पीछे की ओर से गुजरती है।

उपरोक्त मेरिडियन को Yin-Yang Organ के अनुसार निम्न तरह से बांटा गया है।

Yin Prgan यिन मेरिडियन :–

सभी शरीर के अंग जो डायफ्राम से ऊपर होते हैं वे Yin Organ है। ये निम्न हैं –

1- Lung
2- Pericardium
3- Heart

ये तीन मेरिडियन Yin चैनल है जो शरीर के हाथ में होते हैं। प्रत्येक Yin Channels के 3 Yang साथी चैनल (Paired Channel) होते हैं। इस प्रकार हाथ में तीन Yin और तीन Yang Channal होते है।

Yin Channel हाथ के अग्र भाग में हृदय से शुरू होकर अंगुलियों पर समाप्त होते हैं। जबकि Yang चैनल हाथ के पृष्ठ भाग में अंगुलियों से शुरू होकर चेहरे पर समाप्त होते हैं। इस प्रकार हाथ में तीन Yin Meridian और तीन Yang Meridian होते हैं। जो निम्नानुसार जोड़े में दर्शाये गये हैं :–

Yin		Tang
Lung (Lu)	-	Large Intestine (Li)
Pericardium (P)	-	Triple Warmer (TW)
Heart (H)	-	Small Intestine (Si)

शरीर में डायफ्राम से नीचे के सभी अंग Yang Organ होते हैं। ये निम्न हैं –

1- Stomach (St)
2- Urinary Bladder (UB)
3- Gall Bladder (GB)

ये तीन Yang Channel शरीर में चेहरे से शुरू होकर पैरों के बाह्य भाग से गुजरते हुए पैरों की अंगुलियों पर समाप्त होते हैं। प्रत्येक Yang Channel के तीन साथी ल्पद मेरिडियन होते हैं। जो इसके विपरीत पैरों के अंदरूनी भाग से शुरू होकर पेट के ऊपर भाग पर समाप्त होते हैं। जो निम्नानुसार जोड़े में दर्शाये गये हैं :–

Yin		Tang
1- Spleen (Sp)	-	Stomach (St)
4- Kidney (K)	-	Urinary Bladder (UB)
5- Liver (Liv)	-	Gall Bladder (GB)

9.4 Yin और Yang organ के कार्य

Yin Organ – ये हमारे शरीर जैविक अंग है। Lung (Lu), Pericardium (P), Heart (H), Spleen (Sp), Kidney (K), Liver (Liv) Yin Organ है। इनका मुख्य कार्य संग्रहण करना है। ये ठोस अंग होते हैं जो ऊर्जा को संग्रहित करते हैं।

Yang Organ – Large Intestine (Li), Triple Warmer (TW), Small Intestine (Si) Stomach (St), Urinary Bladder (UB), Gall Bladder (GB) यांग organ है। खोखले हेते हैं। ये Organ ऊर्जा को Yin organ से प्राप्त कर शरीर के सभी अंगों में वितरित करते हैं।

ऊर्जा आवेश – प्राचीन चिकित्सा पद्धति के अनुसार ऋणात्मक व धनात्मक आवेश में दो परस्पर और एक दूसरे के अनुपूरक शक्तियाँ है। जो शरीर में हमेशा क्रियाशील रहती है। प्रत्येक स्वस्थ शरीर में प्राण ऊर्जा
का बहाव स्वतन्त्र और बिना अवरोध के होना चाहिए। यह प्राण ऊर्जा फेफड़े से शुरू होकर क्रमानुसार निश्चित व्यवस्थित अवस्था में मेरीडियनों में बहती रहती है। किसी कारण से यदि ऋणात्मक व धनात्मक शक्ति में असन्तुलन आ जाये जिसके कारण मेरीडियनों में ऊर्जा के बहाव में अवरोध उत्पन्न हो जायेगा तो शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। चायनीज चिकित्सा पद्धति के अनुसार भी सम्पूर्ण सृष्टि ऋणात्मक व धनात्मक नामक दो विपरीत

शक्तियों में संतुलित है। ये शक्तियाँ आपस में एक –दूसरे के अन्दर आती जाती रहती है और इन्हें चुम्बक की भांति अलग नहीं किया जा सकता है। मनुष्य सृष्टि की सूक्ष्म ईकाइ है।यही कारण है कि मनुष्य के शरीर का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है। कोई भी वस्तु न तो बिल्कुल निगेटिव है और न ही पॉजेटिव । अतः प्रत्येक निगेटिव में सदा कुछ पॉजेटिव रहता है और इसी प्रकार प्रत्येक पॉजिटिव में सदा कुछ निगेटिव अवश्य रहता है। या यह भी कह सकते हैं कि निगेटिव की अधिकता में पॉजिटिव की कमी और पॉजिटिव की अधिकता में निगेटिव की कमी रहती है। ऋणात्मक व धनात्मक में ही प्राण ऊर्जा शक्ति व्याप्त है। यही सारी सृष्टि का बेसिक सिद्धान्त है।

ऋणात्मक व धनात्मक अंग

ऋणात्मक अंग – जो अंग एनर्जी को जमा रखते है वे अंग हैं – लीवर, हृदय, पेरीकार्डियम, प्लीहा, फेफड़े, और किड़नी। इनको ठोस अंगों से संबोधित करते हैं।
धनात्मक अंग – जो अंग एनर्जी देते हैं वे अंग हैं – पित्ताशय, छोटी आंत, ट्रिपल वार्मर, आमाशय, बड़ी आंत, मूत्राशय । ये खोखले अंगों के अन्तर्गत आते हैं। इनकी संख्या 6 होती है। यह भोजन का पाचन, पोषण और बचे भाग का उत्सर्जन करते है। ये सारे आंतरिक अंग आपस में सहयोग से कार्य करके शरीर को नियमित रूप से चलाते हैं।

अभ्यास प्रश्न – क

4. शरीर के प्राण ऊर्जा प्रवाह पथ को क्या कहा जाता है ?
5. यिन अंग होता है –

क.	खोखला	ख.	ठोस
ग.	द्रव	घ.	इनमें से कोई नहीं।

फेफड़ा Lungs Meridian - यह श्वसन तन्त्र का अंग है। जो जोड़े में होता है। यह पसलियों के पिंजरे में स्थित होता है। यह शरीर में ऑक्सीजन ग्रहण करता है और कार्बन डाई ऑक्साइड को बाहर निकालता है। इस प्रकार से यह हृदय के पम्प द्वारा पूरे शरीर में ऑक्सीजिनेटेड रक्त की लगातार पूर्ति करता है।

फेफड़े से संबंधित बीमारी :– टी. बी. (क्षय) रोग, अस्थमा, निमोनिया, सांस की तकलीफ, त्वचा के रोग।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Lu 11
अग्नि (Fire)	Lu 10
पृथ्वी (Earth)	Lu 9
धातु (Metal)	Lu 8
जल (Water)	Lu 5

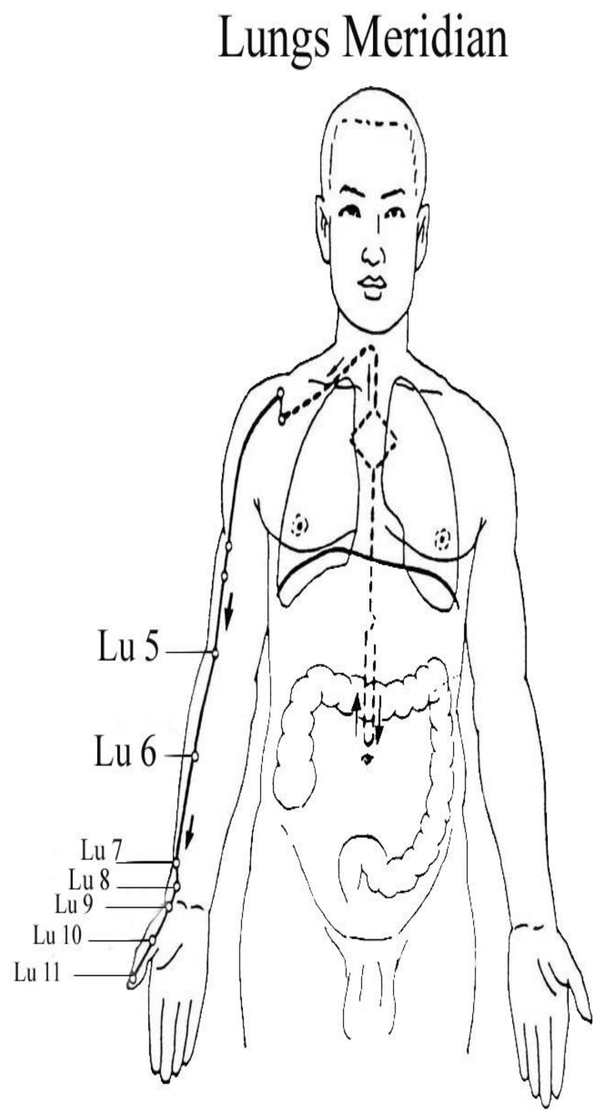

हॉरेरी पॉइन्ट – Lu 8 इस पाइन्ट को सुबह 3 बजे से 5 बजे के बीच लेने से परिणाम जल्दी मिलते हैं।

बड़ी आंत Large Intestine Meridian - छोटी आंत को गुदा तक जोड़ने वाला भाग बड़ी आंत कहलाता है। इसका मुख्य कार्य छोटी आंत के तत्वों से जल का अवशोषण करना है, वहाँ से जल किडनी को भेज दिया जाता है और ठोस उत्सर्जी पदार्थ मल के रूप में गुदा से बाहर निकाल दिये जाते हैं।

बड़ी आंत से संबंधित बीमारी :– कब्ज, गैस का बनना, पेट का दर्द।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Li 3
अग्नि (Fire)	Li 5
पृथ्वी (Earth)	Li 11
धातु (Metal)	Li 1
जल (Water)	Li 2

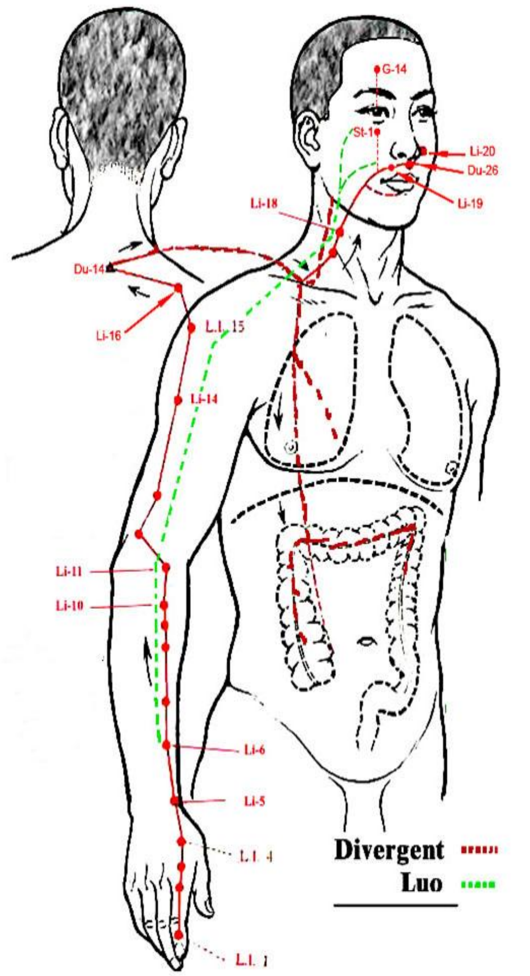

हॉररी पॉइन्ट – Li 11 इस पाइन्ट को सुबह 5 बजे से 7 बजे के बीच लेने से परिणाम जल्दी मिलते हैं।

हृदय Heart Meridian - हृदय एक मुट्ठी के आकार का मांस का खोखला अंग होता है। यह शरीर में छाती में बांयीं ओर फेफड़ों के बीच में स्थित होता है। हृदय पेरीकॉर्डियम से ढ़का रहता है। हृदय शरीर का महत्वपूर्ण अंग है।

हृदय से संबंधित बीमारी :– Heart Failure एन्जाइना , घबराहट, डर Rheumatic heart diseases.

Heart Meridian

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	H 9
अग्नि (Fire)	H 8
पृथ्वी (Earth)	H 7
धातु (Metal)	H4
जल (Water)	H 3

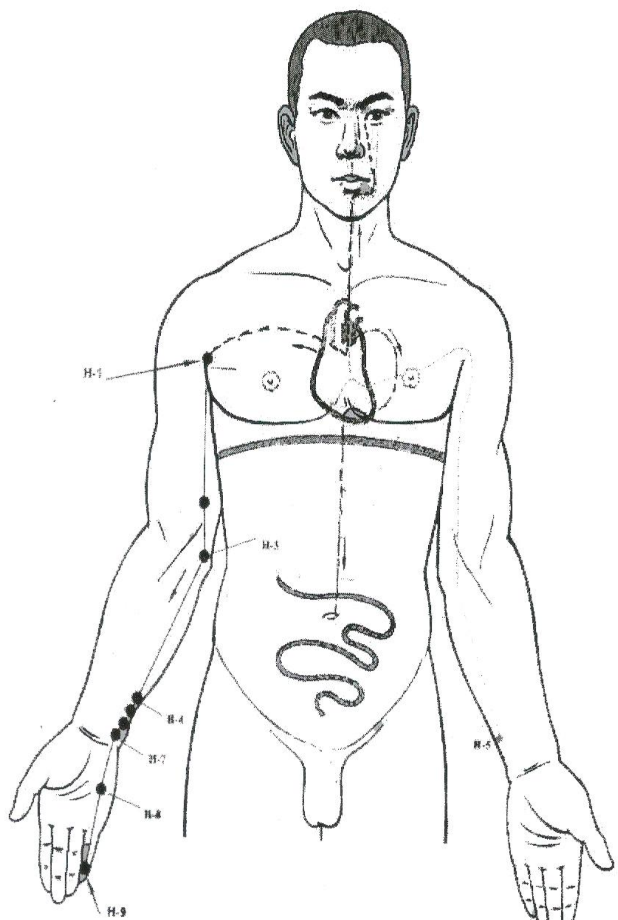

हॉरेरी पॉइन्ट – H 8 इस पाइन्ट को सुबह 11 बजे से 1 बजे के बीच लेने से परिणाम जल्दी मिलते हैं।

छोटी आंत Si Meridian - छोटी आंत शरीर के अन्दर पेट से पायलोरस से निकलकर बड़ी आंत के Caecum से जुड़कर समाप्त होती है। इसके तीन भाग हैं – 1. Duodenum 2. Jejunum 3. Ileum.

छोटी आंत के कार्य – यह अन्न का पाचन करती है और अन्न को शोषित करती है। यह अन्न में से आवश्यक तत्व को अलग करती है और अनावश्यक को Large Intestine में भेजती है।

छोटी आंत से संबंधित बीमारी :– छोटी आंत में घाव, मरोड़।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Si 3
अग्नि (Fire)	Si 5
पृथ्वी (Earth)	Si 8
धातु (Metal)	Si 1
जल (Water)	Si 2

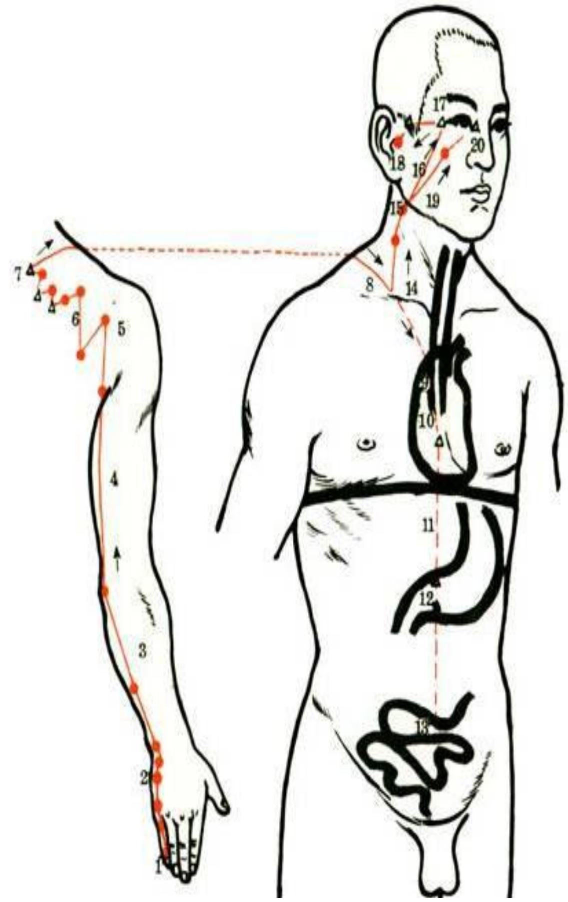

हॉरेरी पॉइन्ट – Si 5 इस पाइन्ट को सुबह 1 बजे से 3 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

पेरिकार्डियम P Meridian - यह हृदय का संरक्षक कहा जाता है। यह एक झिल्ली होती है जो भ्मंतज हृदय के ऊपर होती है और हृदय की खास ब्लड वेसल्स को भी घेरे रहती है। यह तन्तुओं और सीरमी तत्वों दोनों से मिलकर बनी होती है।

यह Heart Channel की तरह रक्त को नियमित करती है। यह मानसिक एवं बौद्धिक स्तर के कार्यों को नियन्त्रित करती है।

पेरिकार्डियम से संबंधित बीमारी :– पेरिकार्डियम की झिल्ली की सूजन (Pericardities), पेरिकार्डियल केविटी में पानी का भर जाना (Pericardial effusion)

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	P 9
अग्नि (Fire)	P 8
पृथ्वी (Earth)	P 7
धातु (Metal)	P 5
जल (Water)	P 3

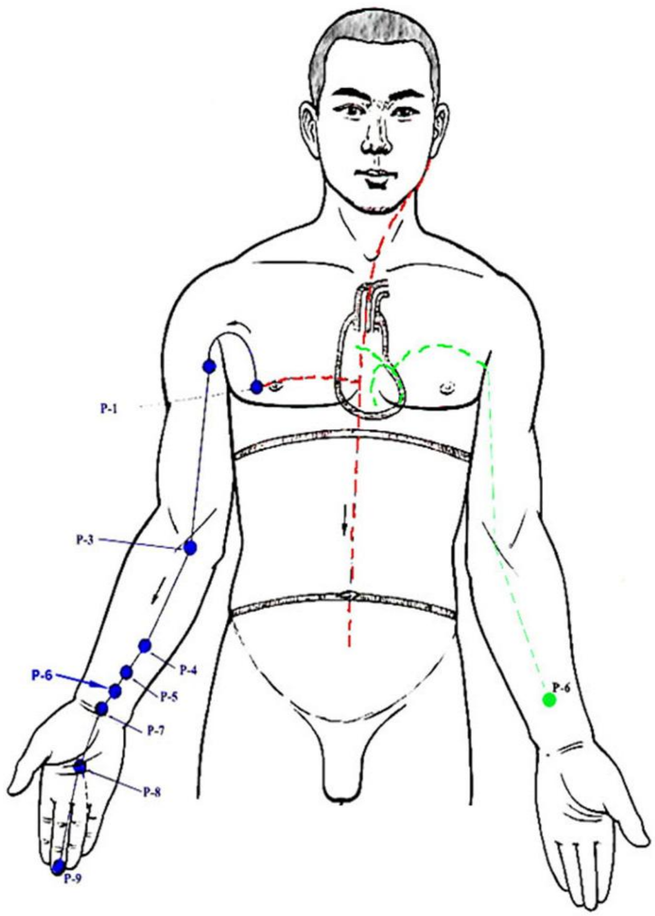

हॉरेरी पॉइन्ट – P 8 इस पाइन्ट को सुबह 7 बजे से 9 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

ट्रिपल वार्मर TW Meridian - यह मेरिडियन शरीर की 3 मुख्य गुह्य (Cavity) को नियन्त्रित करता है जिसे 3 Burning Space भी कहा जाता है। 1. ऊपरी भाग 2. मध्य भाग, 3. निचला भाग।

ट्रिपल वार्मर से संबंधित बीमारी :– कब्ज, कान की तकलीफों में, कंधों का दर्द, आँखों से संबंधित बिमारियाँ, पैरालिसिस इत्यादि।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Tw 3
अग्नि (Fire)	Tw 6
पृथ्वी (Earth)	Tw 10
धातु (Metal)	Tw 1
जल (Water)	Tw 2

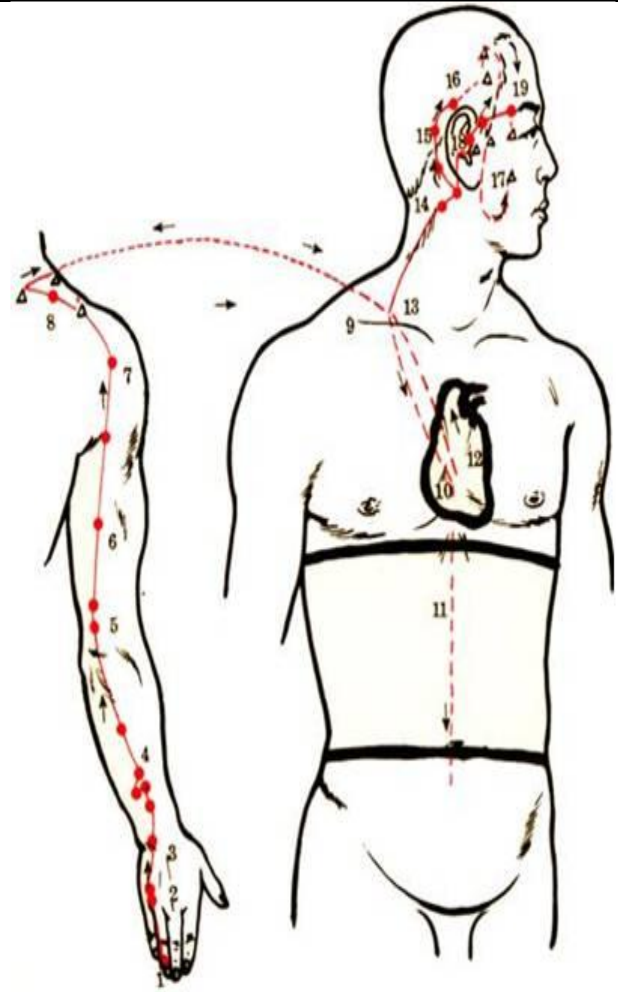

हॉरेरी पॉइन्ट – TW 6 इस पाइन्ट को रात्रि 9 बजे से 11 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

प्लीहा Sp Meridian - प्लीहा एक लिम्फेटिक अंग है। यह रक्त संवहन तन्त्र से संबंधित है। यह रक्त का निर्माण करता है। शरीर में प्रतिरक्षित तन्त्र में इसका महत्वपूर्ण योगदान होता है।

शरीर में आमाशय अन्न को लेता है वहीं प्लीहा उसके अन्न मेंसे पोषक तत्वों को शरीर में भेजता है।

प्लीहा से संबंधित बीमारी :– खून की कमी, कमजोरी, प्लीहा का बड़ा होना, एनीमिया।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Sp 1
अग्नि (Fire)	Sp 2
पृथ्वी (Earth)	Sp 3
धातु (Metal)	Sp 5
जल (Water)	Sp 9

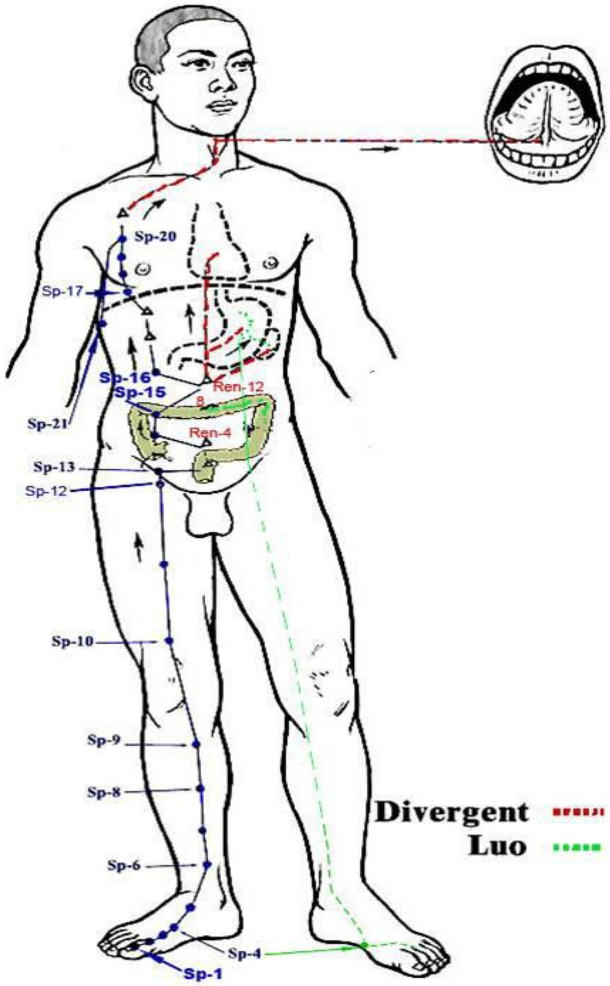

हॉरेरी पॉइन्ट – Sp 3 इस पाइन्ट को सुबह 9 बजे से 11 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

आमाषय St Meridian - इसे बोलचाल की भाषा में पेट कहते है। यह एक खोखला मांस का अंग होता है। यह Abdomen के ऊपर शरीर के बायें तरफ होता है। यह अन्न को अपने अन्दर इसोफेगस से लेता है और उसे छोटी आंत में भेजता है।

आमाषय से संबंधित बीमारी :– गैस्ट्रिक अल्सर, पेट में जलन, एसीडिटी, डकार।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	St 43
अग्नि (Fire)	St 41
पृथ्वी (Earth)	St 36
धातु (Metal)	St 45
जल (Water)	St 44

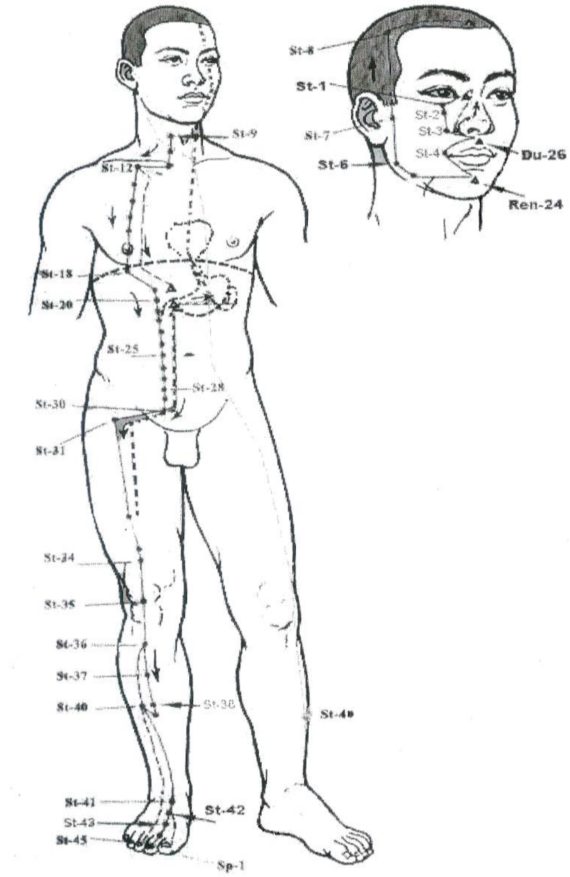

हॉरेरी पॉइन्ट – St 36 इस पाइन्ट को सुबह 7 बजे से 9 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

वृक्क Kidney Meridian - किडनी पेट के पिछले भाग में रीढ़ की हड्डी के दोनों किनारे पर जोड़े में स्थित होते है। यह उत्सर्जन तन्त्र का मुख्य अंग है। यह चयापचय में विजातीय तत्वों, खून में अतिरिक्त नमक और पानी को बाहर निकालता है। एवं PH का स्तर बनाये रखता है। यह हड्डियाँ, कार्टिलेज और सिर के बाल की वृद्धि में नियंत्रण रखता है।

वृक्क से संबंधित बीमारी :– कमर दर्द, कान के रोग, आँखों के चारों ओर काला घेरा, रात में पसीना आना और प्यास लगना, पैरों में कमजोरी, थकान, पुरूष में नपुंसकता।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	K 1
अग्नि (Fire)	K 2
पृथ्वी (Earth)	K 3
धातु (Metal)	K 7
जल (Water)	K 10

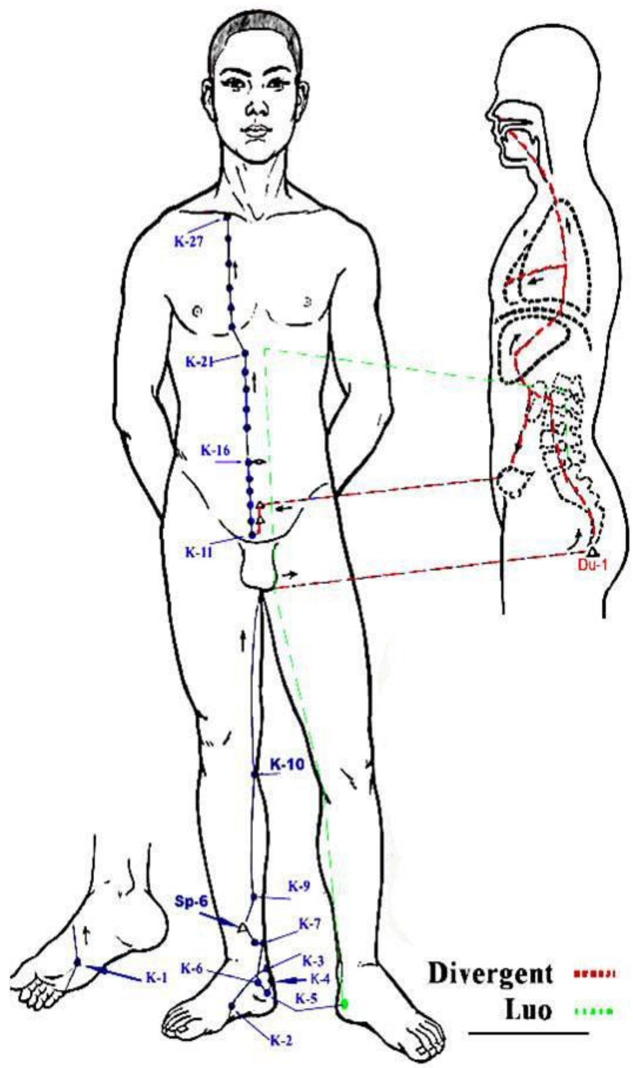

हॉरेरी पॉइन्ट – K 10 इस पाइन्ट को शाम 5 बजे से 7 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

मूत्राषय UB Meridian - यह पेट के निचले हिस्से में सामने की ओर स्थित है। यह मांसपेशियों का खोखला अंग है। जो अपने अन्दर मूत्र को संग्रहित करता है।

मूत्राषय से संबंधित बीमारी :– ब्लैडर में रूकावट, पेशाब पर नियन्त्रण न होना।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	UB 65
अग्नि (Fire)	UB 60
पृथ्वी (Earth)	UB 54
धातु (Metal)	UB 67
जल (Water)	UB 66

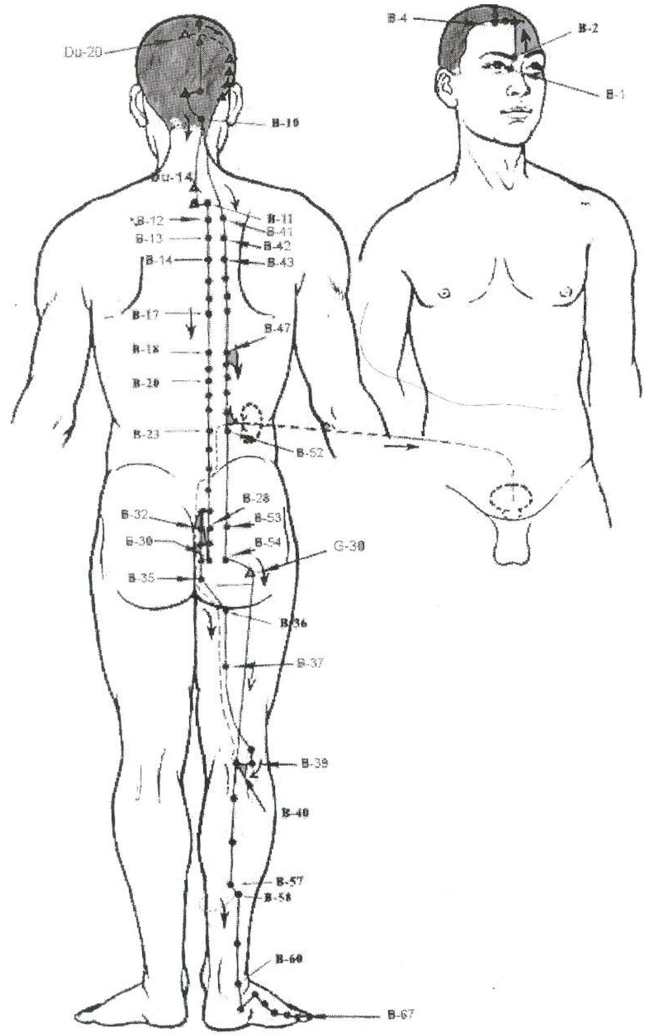

हॉरेरी पॉइन्ट – UB 66 इस पाइन्ट को दोपहर 3 बजे से 5 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

यकृत Liver Meridian - यह सबसे लम्बी व बड़ी ठोस ग्रन्थि है। जो शरीर के दाहिने भाग पर स्थित होती है। जो पित्त स्रावित करती है। जिसका शरीर के चयापचय में विभिन्न महत्वपूर्ण योगदान है। लीवर खून के बहाव को संचय और नियमित करती है।

यकृत से संबंधित बीमारी :– हिपेटाइटिस, लीवर सिरॉयसिस आदि।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Liv 1
अग्नि (Fire)	Liv 2
पृथ्वी (Earth)	Liv 3
धातु (Metal)	Liv 4
जल (Water)	Liv 8

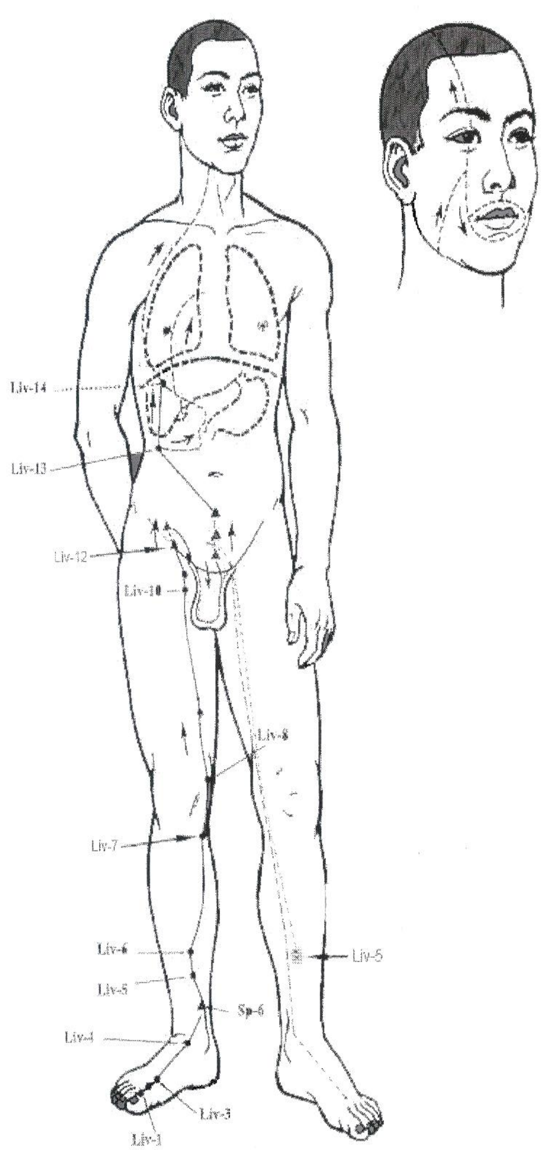

हॉरेरी पॉइन्ट (Horary point) – Liv 1 इस पाइन्ट को दोपहर 1 बजे से 3 बजे के बीच लिया जाय तो अपेक्षाकृत परिणाम अच्छे मिलते हैं।

पित्ताषय GB Meridian – पित्ताशय एक नाशपाती के आकार का अंग है। यह लीवर के निचली भाग पर स्थित थैलेनुमा होता है। यह अपने अन्दर पित्त एकत्रित करता है।

पित्ताशय से संबंधित बीमारी :– Cholecystitis – पित्ताशय में जलन, Cholelithiasis – पित्ताशय में पथरी, Biliary Colic – पित्ताशय में पथरी के कारण दर्द।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	GB 41
अग्नि (Fire)	GB 38
पृथ्वी (Earth)	GB 34
धातु (Metal)	GB 44
जल (Water)	GB 43

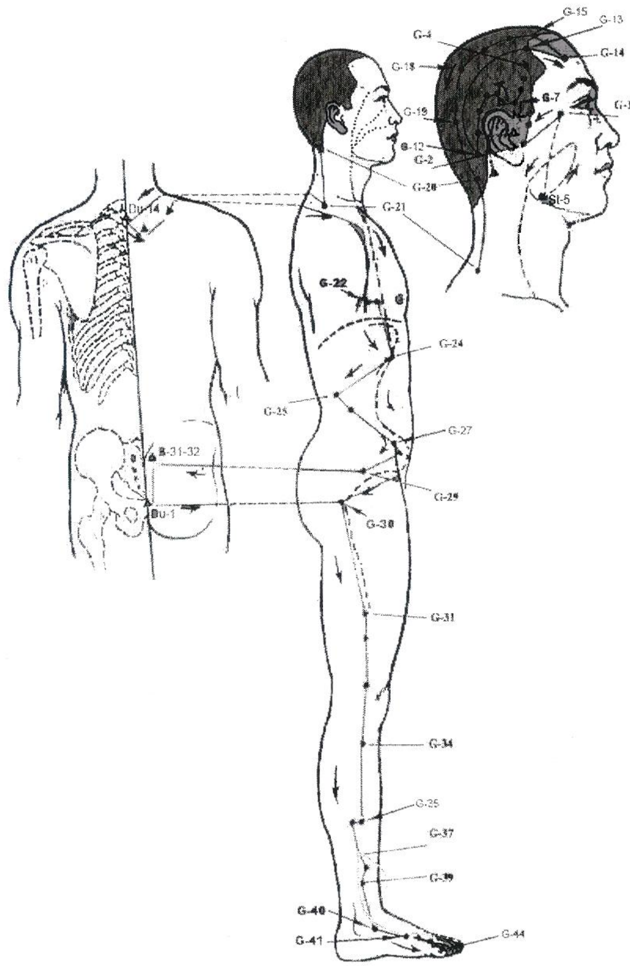

हॉरेरी पॉइन्ट (Horary point) – GB 44 इस पाइन्ट को रात 11 बजे से 1 बजे के बीच लिया जाय तो अपेक्षाकृत परिणाम अच्छे मिलते हैं।

कन्सेप्शनल वेसल्स CV Meridian – यह चैनल एक स्वतन्त्र चैनल है। यह मेरिडियन शरीर के बीचो–बीच यिन भाग में प्रवाहित होती है। इसका सभी Yin channel पर नियन्त्रण होता है।

कन्सेप्शनल वेसल्स से संबंधित बीमारी :– जनन अंगों से संबंधित बिमारियाँ, पेट की समस्या, बोलने संबंधित रोग जैसे – गुंगापन, तुतलापन आदि।

Conception Vessels Meridian

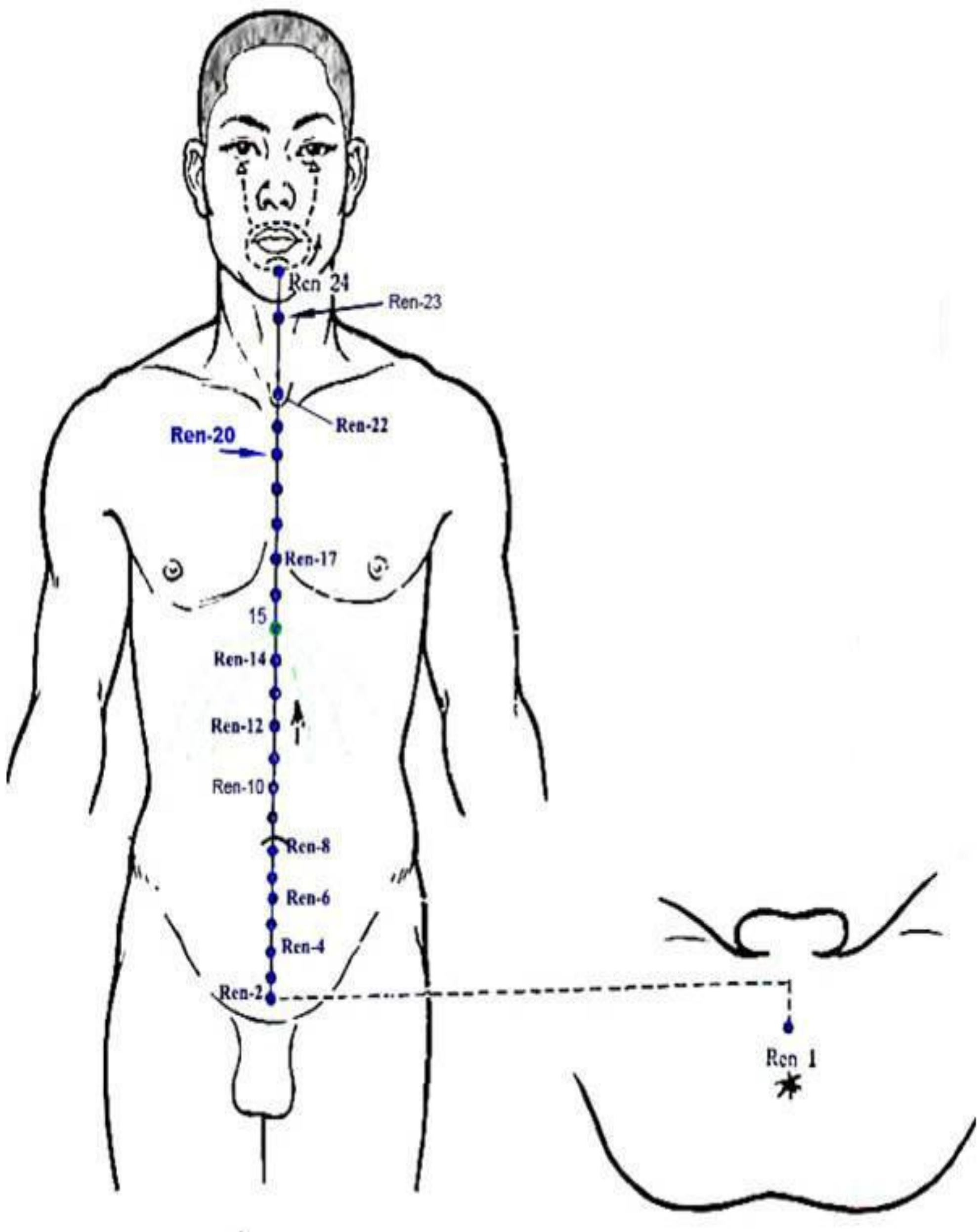

गव्हर्निंग वेसल्स GV Meridian – यह चैनल एक स्वतन्त्र चैनल है। यह मेरिडियन शरीर पर पिदे की ओर पीठ पर रीढ़ की हड्डी पर बीचो–बीच यांग भाग में प्रवाहित होती है। इसका सभी Yang channel पर नियन्त्रण होता है।

कन्सेप्षनल वेसल्स से संबंधित बीमारी :– मानसिक बिमारियाँ, एवं स्नायु से संबंधित बिमारियाँ, संक्रमक बिमारियाँ, उत्सर्जन तन्त्र से संबंधित बिमारियाँ।

Governing Vessels Meridian

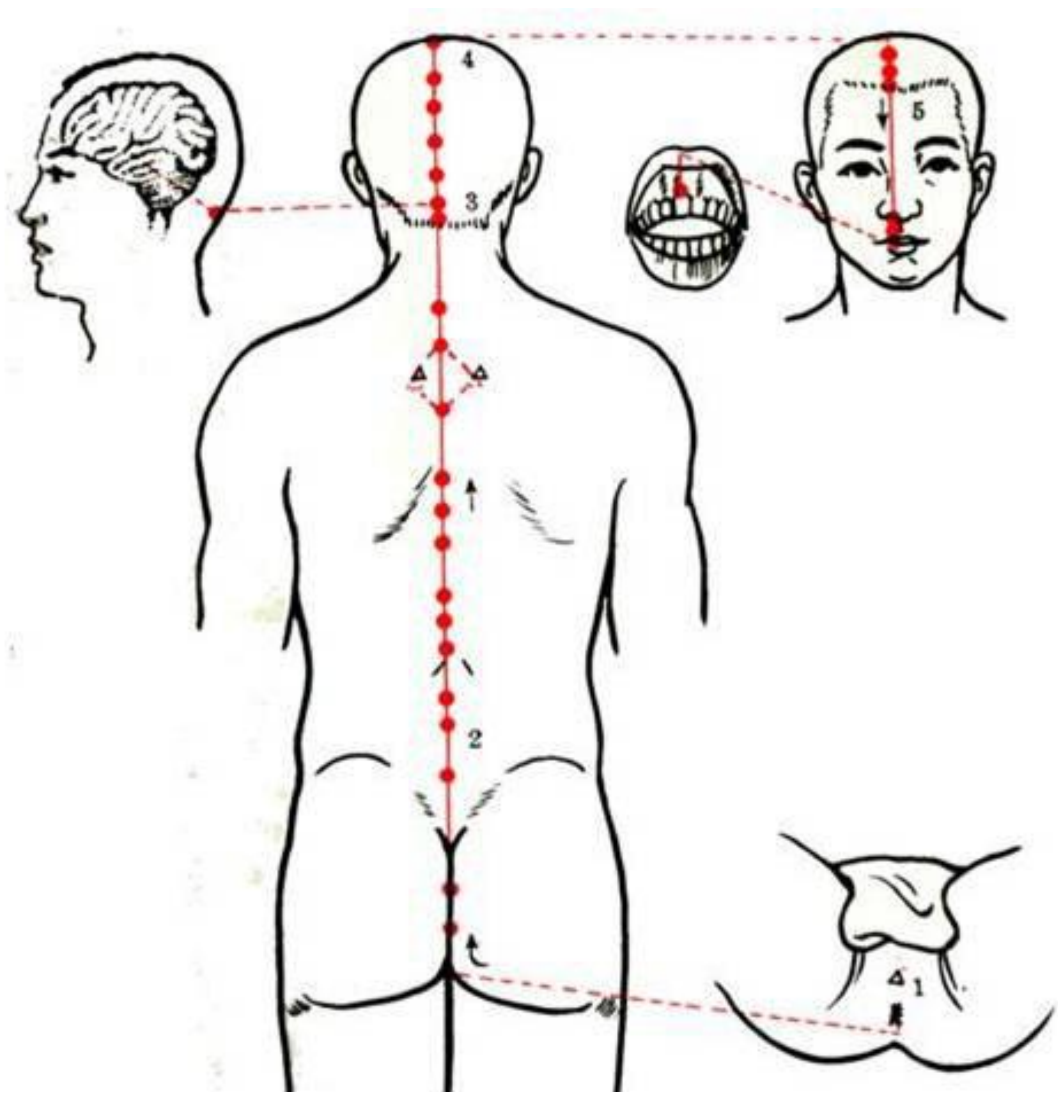

अभ्यास प्रश्न – ख

5. प्रातः 5 से 7 बजे किस अंग की ऊर्जा अधिक रहती है ?
6. सभी Yin channel पर नियन्त्रण होता है। –

क. C V ख. G V

ग. Liver घ. Lungs

9.5 एक्युपंक्चर के लाभ –

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा के लाभ निम्न प्रकार हैं –

1. इस प्रणाली के कोई दुष्परिणाम नहीं हैं।
2. यह औषधि रहित चिकित्सा प्रणाली है।
3. इस पद्धति से रोगी की रक्षा व रोग की समाप्ति होती है।
4. यह कष्ट रहित चिकित्सा है।
5. यह कम खर्चीली चिकित्सा प्रणाली है।
6. यह चिकित्सा दूसरे अन्य चिकित्सा पद्धतियों के साथ भी चल सकती है।
7. यह एक सहज, सरल एवं प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान है।
8. एक्युपंक्चर से हमें तुरन्त ही लाभ मिलता है।
9. हर प्रकार के रोगों की चिकित्सा संभव है।
10. यह चिकित्सा सर्व सुलभ एवं प्रतिप्रभाव से मुक्त है।
11. इसमें समय, श्रम व धन की बचत होती है।
12. इसका परिणाम तुरन्त ही प्राप्त होता है।
13. शारीरिक व मानसिक प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है।
14. शरीर के सम्पूर्ण तन्त्र सुचारू रूप से कार्य करता है।
15. शरीर में आवश्यक तत्वों का प्रसार कर मांसपेशियों के तन्तुओं में स्फूर्ति तथा त्वचा में चमक पैदा करता है।
16. बिना दवाई की कम खर्चीली चिकित्सा पद्धति है।
17. यह पीड़ा रहित तथा सुरक्षित चिकित्सा पद्धति है।
18. इसे आवश्यकतानुसार शोधित कर बार–बार उपयोग में लाया जा सकता है।
19. चूंकि इस पद्धति में किसी भी प्रकार की औषधि का प्रयोग नहीं होता है, इसलिए इससे कोई भी दुष्परिणाम उत्पन्न नहीं होते तथा यह आर्थिक रूप से किफायती भी होती है।
20. हवाई जहाज, रेलवे यात्रा के दौरान, कारखानों, खेतों में कार्य करते समय कहीं पर भी तकलीफ होने पर डॉक्टर की उपलब्धि नहीं होने पर एक्यूपंचर/एक्यूप्रेशर ही एकमात्र पर्याय रहता है।

21. अनेक बीमारियों की रोकथाम एवं स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये दैनंदिनी एक्यूपंचर/एक्यूप्रेशर का प्रयोग किया जा सकता है।
22. जीर्ण तथा बड़े रोगों में पहले कुछ दिनों तक एक्यूपंक्चर कराने के बाद चिकित्सक द्वारा बताए गए बिन्दुओं पर प्रेशर देकर घर में ही उपचार चालू रखा जा सकता है।
23. एक्यूपंचर एवं एक्यूप्रेशर का उपयोग मोटापा कम करने के लिये एवं सौन्दर्यवृद्धि करने के लिये भी किया जाता है।
24. कई रोग ऐसे होते हैं जो किसी भी चिकित्सा पद्धति द्वारा ठीक नहीं किए जा पाते हैं। उन रोगों में भी एक्यूप्रेशर से उपचार करने पर कुछ हद तक सफल परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

उपचार के प्रतिप्रभाव एवं बचाव :-

1. एक्युप्रेशर उपचारोपरान्त चक्कर या बेहोशी हो तो किया गया उपचार हटाकर, नाक के नीचे व पैर के तलुवे के गहरे भाग को हल्का दबाव दें।
2. उपचारोपरान्त पतले दस्त शारीरिक सफाई का संकेत है,घबराये नहीं।
3. शारीरिक व मानसिक स्तर पर तीव्र परिवर्तन होता है। जिससे क्रोध, चिड़चिड़ापन उदासी व आनन्द आदि की घटना-बढ़ना हो सकती है।
4. एक्यु उपचार के पश्चात् मूत्र त्याग की मात्रा बढ़ जाती है, कुछ दिनों में ठीक हो जाती है।
5. उपचार के तुरन्त बाद नींद का आना, स्वास्थ्य का द्योतक है।

9.6 एक्युप्रेशर की सावधनियाँ

1. चिकित्सा स्थान – साफ, हवादार, शान्त व अनुकूल वातावरण होना चाहिए।

2. उपचार के समय रोगी व चिकित्सक दोनों तनाव रहित, शान्तचित्त स्थिति में हों।

3. रोगी को बिठाकर अथवा लिटाकर सुविधानुसार ही उपचार करें।

4. टूटे-फूटे, चोट या ऑपरेशन वाले स्थान पर चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

5. चिकित्सा के दौरान अपने दोनों हाथ को अच्छी तरह से डेटॉल आदि स्वच्छ करें।

9.7 एक्युप्रेशर की सीमाएँ

1. आपरेशन फोड़े व घाव के स्थान पर 3-6 महिने तक उपचार नहीं करना चाहिए।

2. गर्भवती महिलाओं को तीन माह के बाद कुछ विशेष बिन्दुओं पर उपचार नहीं देना चाहिए।

3. महिलाओं में मासिक धर्म के समय उपचार नहीं करना चाहिए।

4. एक्यु बिन्दुओं पर निडल आदि से उपचार 30 मिनट से 1 घंटे रोगानुसार लगाना चाहिए।

5.एक्यु बिन्दुओं पर दिन में दो बार खाली पेट उपचारित करना चाहिए।

6. एक्युपंक्चर का उपचार भोजन से एक घण्टे पूर्व तथा 2–3 घण्टे बाद ही करवाना चाहिए।

7. सात साल से कम उम्र तथा 70 साल से अधिक उम्र के व्यक्तियों का उपचार सावधनी पूर्वक करना चाहिए।

9.8 एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर द्वारा बिमारियों का उपचार

1 मुहांसे Acne Pimples –

यह त्वचा की स्वेद ग्रंथियों एवं रोम कूपों की सूजन की बीमारी है। इसमें चेहरे पर निरंतर फुंसियाँ होती रहती है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
GV 14,
Li 4,
Li 11,
Lu 5,
Lu 7,
Sp 6

2 गंजापन Alopecia –

युवावस्था में बालों का झड़ना। ये बाल भी गुच्छे में झड़ने लगते हैं। इसके कई कारण है जैसे बहुत अधिक चिंता, मानसिक तनाव, पानी कम पीना व किडनी के रोग।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
Ex 6,
K 3,
Lu 7,
Li 4,
Tw 5

3 सर्दी–जुकाम Common Cold –

नक की श्लेष्मिक कला का तीव्र शोथ एवं नाक से अत्याधिक पानी का बहना जो कि वाइरल इन्फेक्शन होता है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
GV 14,
Li 4,
Li 11, 19, 20,
Lu 7, 11,
GB 20,
St 8

4 दस्त Diarrhoeas –

जब व्यक्ति बार–बार मल त्यागने जाता हो शरीर में कमजोरी व थकान महसूस करने लगता है। उसे दस्त लगना कहते है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20, 14,
Li 4,
Sp 6, 4
St 25, 34, 37,
CV 1, 6 ,12, 16 ,
Liv 13

5 मानसिक अवसाद Depression –

यह एक मानसिक दशा का कष्ट है। जीवन में खुशी अनुभव न होना, स्वतः अथवा दूसरे में किसी भी प्रकार से दिलचस्पी न लेना।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
H 7,
P 6,

Li 4,

Sp 6,

St 36,

UB 62,

CV 6,

6 नपुंसकता Impotence –

यौन संबंधित कार्यों में अक्षमता अथवा लैंगिक शक्ति में कमी होना नपुंसकता कहलाता है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 4, 20,

K 3,

Liv 8,

Sp 6,

UB 23,

CV 2, 3, 4, 6

7 अनिद्रा Insomnia –

नींद न आने की बीमारी को प्देवउदपं कहते है। यह बीमारी मानसिक असंतुलन होने के कारण से हो सकती है या फिर किसी अन्य बीमारी के कारण भी हो सकती है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
H 7,
Li 4,
Sp 6,
St 45,
UB 25,
CV 6,
K 1, 3,
Ex 6, 7

8 पीठ दर्द Lumbago –

पीठ के निचले भाग के दर्द को लम्बेगो या पीठ दर्द कहते हैं।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV3, 4, 20,
UB 11, 25, 32, 36, 37. 40, 57, 60,
GB 34,
K 3,
Li 4,
Sp 6,
Tw 8,
Si 6.

अभ्यास प्रश्न – ग

4. बेहोशी की अवस्था शरीर के किस भाग को दबाव दिया जाता है ?
5. महिलाओं में मासिक धर्म के समय उपचार .... दिया जाता है।
6. एक्युपंक्चर में एक महत्वपूर्ण बिन्दु है जो कि प्रत्येक उपचार में दिया जा सकता है –

क. CV6 ख. Gv 20

9.9 सारांश –

शरीर में 14 मेरीडियन चैनल होते हैं। जिसमें से 12 चैनल तो शरीर के दोनों भागों में चलते हैं तथा एक एक मेरीडियन शरीर के आगे तथा पिछे के हिस्से में चलते है। जो मेरीडियन जिस अंग के साथ संलग्न हो उसे उस अवयव का नाम दिया गया है। किसी भी मेरीडियन का एक सिरा हाथ, पैर या मुंह पर और दूसरा सिरा किसी मुख्य अंग में रहता है। प्रत्येक मेरीडियन में प्राण ऊर्जा एक निश्चित समय पर बहती है। मेरीडियन में से किसी एक की जीवनी शक्ति बढ़ जाने पर दूसरी मेरीडियन की जीवनी शक्ति घट जाती है व इस प्रकार उनका सन्तुलन बिगड़ जाता है तब इन मेरीडियन चैनल पर दबाव देने से पुनः सन्तुलन सही हो जाता है। एवं शरीर निरोग होने लगता है। जीवन ऊर्जा, बायोएनर्जी या प्राण ऊर्जा का जाल शरीर में फैला रहता है। जो अंगों व ग्रन्थियों को आपस में जोड़ता है। इस जाल में जंक्शन बिन्दु होते हैं जो अंगों में उपस्थित होते हैं। जब ऊर्जा का प्रभाव अवरूद्ध हो जाता है, तो ऊर्जा कहीं कम और कहीं ज्यादा पहुँच पाती है। यही असन्तुलन रोग का कारण बनता है। जिन मार्गों से जीव ऊर्जा का प्रभाव बहता है उसे मेरीडियन कहते हैं। चिकित्सा द्वारा उस ऊर्जा का सन्तुलन स्थापित किया जाता है। ऊर्जा का नेटवर्क सही प्रभाव करने लगता है तो रोग स्वयं नष्ट हो जाता है। हमारे शरीर का

संचालन अंग व ऊर्जा की क्रिया का ही परिणाम है। हृदय व छोटी आंत शरीर को शक्ति प्रदान करता है। यकृत व पित्ताशय ऐसे तरल पदार्थ पैदा करते हैं, जो शरीर को गतिमान करते है। शरीर को गतिमान रखने का कार्य तिल्ली व पेनक्रियाज सम्पादित करते हैं। किडनी व मूत्राशय गति को नियंत्रित करने का कार्य करता है। फेफड़े व कोलन शरीर की गतिविधियों को सुचारू बनाती है। कुल मिलाकर शरीर के अंग व गति का सामन्जस्य ही ऊर्जा की कार्य प्रणाली को प्रतिपादित करता है।

9.10 शब्दावली

मेरीडियन – प्राण ऊर्जा प्रवाह पथ।
ऑक्सीजिनेटेड – ऑक्सीजन से संयुक्त ।
चयापचय – भोजन का पाचन व अवशोषण।
संचय – इक्कठा करना।
विजातीय – शरीर के लिए अनुपयोग तत्व।

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क 1. मेरीडियन 2. ठोस
अभ्यास प्रश्न – ख 1. फेफड़े 2. C V
अभ्यास प्रश्न – ग 1. नाक के नीचे व K1 2. नही 3. Gv 20

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ –

1 एक्युप्रेशर चिकित्सा एवं सिद्धांत – डा. हरजीत सिंह
2 एक्युप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
3 एडवांस एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर भाग 1 – माता प्रसाद खेमका
4 एक्युप्रेशर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण – डॉ रविन्द्र बागे
5 एक्युप्रेशर, जीर्ण रोगों का सफल प्राकृतिक उपचार – डॉ एल.एन.कोठारी, डॉ अमृत गुर्वेंद्र
6 एक्युप्रेशर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति – डॉ. पी. के. सैनी

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9 मेरीडियन क्या है ? मेरीडियन के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
10 मेरीडियन के अर्थ एवं विभिन्न प्रकारों का सविस्तार वर्णन करें ?
11 एक्युपंक्चर के लाभ व सावधानियाँ लिखिए ?
12 एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति के सीमाओं का सविस्तार वर्णन करें ?

इकाई 10 चुंबक चिकित्सा की अवधारणा एवं इतिहास

10.1. प्रस्तावना
10.2. चुंबक चिकित्सा के उद्देश्य
10.3 चुंबक चिकित्सा का इतिहास
10.4 चुंबक चिकित्सा का परिचय
10.5 चुंबक चिकित्सा की अवधारणा
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना–

इस बात का पता लगाना कठिन है कि हमारे पूर्वजों ने धरती के चुम्बकीय शक्ति का और इस संसार की दूसरी अद्‌भुत दिव्य शक्तियों तथा जीवन में घटित होने वाले रोंगों पर उनके प्रभाव का किस प्रकार से पता लगाया।

प्राचीन मतानुसार अमावस्या तथा पूर्णिमा तिथियों के दौरान जब तरल पदार्थों तथा अव्य–द्रव्य पदार्थों पर चन्द्रमा का सर्वाधिक प्रभाव घटित पड़ते देखा गया है। व्रत लेना चाहिए यह सिद्वान्त बताया गया है। इससे वैज्ञानिक रुप से पूर्ण सहमति मिली है।

समस्त मानव शरीर ईश्वरीय कृपा से प्राप्त विभिन्न प्रकार के तन्त्रों से मिलकर बना है, प्रत्येक तन्त्र कई कोशिकाओं (Cell), नस–नाड़ियों आदि से मिलकर बना है, जिस तरह शहरों या गांवों में बिजली के तारों की लाइनें बिछी होती हैं उसी प्रकार रक्त को पूरे शरीर में पहुंचाने के लिए धमनी, महाधमनी, कोशिका, शिराओं आदि का जाल बिछा होता है।

इस प्रस्तावना के अन्तर्गत चुम्बकीय चिकित्सा की अवधारणा व इतिहास के बारे में आगे चर्चा की जायेगी तथा साथ ही साथ समस्त शरीर के दोषों या बिजातीय पदार्थों को चुम्बकीय चिकित्सा एक बहुस्तरीय चिकित्सा है। मानव सृष्टि का एक विवेकशील प्राणी है। इसमें सृष्टि का एक–एक पंचतत्वों का समावेश है। आकाश, अग्नि, वायु, जल तथा पृथ्वीं

हमारे सौर मण्डल के समस्त ग्रह चुम्बकीय शक्ति के कारण ही अपनी संतुलित अवस्था में है। मानव शरीर के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र होता है। यह चुम्बकीय क्षेत्र सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत आता है। चुम्बक चिकित्सा का सीधा लक्ष्य समस्त मानव शरीर के आधि–व्याधि, रोग–शोक विजातीय द्रव्यों से होता है। प्रकृति चिकित्सा की विधि के समान ही चुम्बक द्वारा चिकित्सा भी युगों–युगों से प्रचलन में हैं। वर्तमान चिकित्सा होम्योपैथी, आयुर्वेदिक, एलोपैथिक आदि होते हुए जिन पुरातन चिकित्सा का सबसे अधिक प्रचलन है उनमें सर्वाधिक चुम्बकीय चिकित्सा प्रणाली अत्यधिक प्रचलित है।

"चरक के कथनानुसार इस ब्रह्माण्ड में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें उपचारक गुण न हो"। अर्थात इस ब्रह्माण्ड में कोई भी सजीव या निर्जीव वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें रोंगों से लड़ने की क्षमता ना हो या जिसमें सकारात्मक गुण न हो। चुम्बक एक ऐसी धातु है जो हमें प्रकृति की ओर से एक वरदान के रुप में उपचार के लिए मिली है। चुम्बक का प्रयोग शरीर के किसी भी भाग पर विपरीत परिस्थतियों अर्थात रक्त के बहने पर उपचार हेतु किया जाता है। स्त्रियों में होने वाले मासिक धर्म की अनियमितता को भी चुम्बक चिकित्सा से सही किया जाता है अर्थात शरीर के किसी भी संस्थान या अंग या त्वचा से कितना भी रक्त क्यों न बह रहा हो। चुम्बक के प्रयोग से तत्काल रुक जाता है।

10.2. उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों इस विषय को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा के उद्देश्य क्या हैं।

1– इस अध्याय का पडने के बाद विधार्थी चुम्बकीय चिकित्सा के इतिहास के विषय मे जान सकेगें।

2– इस अध्याय मे चुम्बकीय चिकित्सा की अवधारणा के विषय मे भी जान सकेगें।

3– इस अध्याय मे विद्यार्थी चुम्बकीय चिकित्सा की सावधानियों के बारे मे जान सकेगें।

10.3 चुम्बकीय चिकित्सा का इतिहास

आदिकाल से विश्व में मानवीय रोगों के उपचार अनेक प्रकार प्रचलित हैं। पुरातन आयुर्वेद और यूनानी औषधियों के द्वारा उपचार व्यवस्था के साथ ही साथ और भी अनेक विधियां पुरातन काल से चली तपते लौहे के द्वारा रोगग्रस्त अंगों को सेकने, तपाने और दागने की क्रिया किरणों द्वारा उपचार प्राकृतिक चिकित्सा पुरातन काल से ही प्रचलित है। इसी तरह अर्थवेद में उल्लेख मिलता है कि चुम्बक और चुम्बकीय पत्थरों का प्रयोग औरतों के अति रक्त स्राव को रोकने के लिए किया जाता है। अर्थवेदमें इस चुम्बक को "अश्वन" या "अश्म" नाम से उल्लेखित किया गया है, अर्थवेद के प्रथम भाग काण्ड–7 सूक्त–19 मंत्र–3–4 एवं तृतीय भाग काण्ड–7 सूक्त 35, मंत्र–2–3 में इस प्रकार का वर्णन किया गया हैं

प्राचीन काल में ऐसा विश्वास यिका जाता था कि मनुष्य को अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में उत्तर–दक्षिण दिशा में सोना चाहिए। सिर उत्तर की ओर पैर दक्षिण की ओर होने चाहिए ताकि पृत्वी और शरीर में चुम्बकीय समानता बनी रहे। ऐसा करने से मृत्यु के बाद पुनर्जन्म में शरीर को कष्ट की अनुभूति कम होती है ऐसी धारणा मानी गई है। आधुनिक समयता की ओर जब हम जाते हैं तो कि मिस्र जैसे देश में चकित कर देने वाला ज्ञान तथा जीवन में चुम्बकीय शक्तियों का चमत्कारिक प्रयोग पाते हैं। यहां के पिरामिड विज्ञान और चुम्बकीय शक्तियों की रहस्य पूर्ण आकर्षण के कारण जीवन्त साक्ष्य है। जिनके कारण वर्षों पुराने शव नष्ट होने तथा गलने–सड़ने से सुरक्षित रहते हैं। मिस्र के इतिहास में वर्णन आता है कि वहां की राजकुमारी अपनी सुन्दरता एंव यौवन में वृद्धि के लिए अपने मस्तक पर चुम्बक का ताबीज धारण करती थी।

चुम्बक का अविष्कार ईसा से कई शताब्दी पूर्व यूनान के मैगनेट नाम के गडरिये ने अनजाने में इसको खोजा थां उसी के नाम पर इसका नाम चुम्बक रखा गया। यह भी कहा

जाता है कि चुम्बक सबसे पहले एशिया माइनर के क्षेत्र में मैगनेशिया क्षेत्र में मिला उससे इसे मैग्नेराइट कहा जाने लगा। प्राकृतिक चुम्बक में लोहा और आक्साइड के रुप में आक्सीजन होती है इसका फार्मूला एक E_2O_4 है।

ईसा से 20–30 वर्ष पूर्व मिस्र में रानी क्लियोपेड्रा अत्यन्त सुन्दर थी कि वह सदैव सुन्दरता को सुरक्षित रखने के लिए माथे पर चुम्बक लटकाकर रखती थी। प्राचीनकाल में चुम्बक की कुछ रहस्यमयी शक्तियां थी। चीन के नाविकों को समुद्री जहाज में दिशा–निर्देश और यूरोप में दिशा सूचक यंत्र के रुप में इसका प्रयोग किया गया। स्विटजरलैंड के रसायन शास्त्री डा0 पैरासेल्स्कूस (1493–1541) ने चुम्बक से रोग दूर करने के गुणों के बारे में पता लगाया। उन्होंने बताया कि चुम्बक सूजन, मवाद तथा फोड़े फुन्सी में गुणकारी है।आयुर्वेद के अनुसार चुम्बक का प्रयोग रक्तस्राव होने अर्थात शरी के किसी भी भाग से रक्त बहने पर किया जाता था। स्त्रियों का मासिक धर्म, पानी रसस्वला होने पर अत्यधिक रक्तस्राव होने की स्थिति में भी चुम्बकीय विधि का प्रयोग किया जाता है।

शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्
अस्बुरि हमध्यमा इमाः साकमढता अएंसतः
परि वः सिफसावतौ धतुर्वहत्यक्रमीत्
सतपदलयेत युकम्।।

अर्थात शरीर की कितनी ही शिराओं और धमनियों से कितना ही रक्त क्यों न प्रभावित हो रहा हो, सिकतावली अर्थात चुम्बक के प्रयोग से तत्काल रुक जाता है। मनुष्य के शरीर में पाई जाने वाली शक्ति को चुम्बकीय शक्ति द्वारा बढ़ाया जा सकता है। शरीर की चुम्बकीय शक्ति बढ़ जाने पर शरीर को अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त रखा जाता है।

10.4 चुम्बकीय चिकित्सा का परिचय

यह वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि चुम्बक का प्रभाव सारे विश्व में पाया जाता है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी तथा अनेक ग्रह स्वयं में एक बडे चुम्बक है। अनेक ग्रह इस चुम्बकत्व के द्वारा एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं। चुम्बक एक मौलिक शक्ति हैं पृथ्वी एक बड़ा प्राकृतिक चुम्बक है पर प्रश्न यह है कि चुम्बकत्व का स्रोत क्या है। पृथ्वी में चुम्बकत्व का कारण उसके चारों ओर वायुमण्डल में विद्युत है। परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती रहती है जिससे चुम्बकत्व अपठन होता है। और कुछ लोगों का कहना है कि पृथ्वी के मर्म में विद्युत धाराऐं हैं जो चुम्बकत्व उत्पन्न करती हैं।

जिस प्रकार न जाने कितने करोड़ो वर्ष से पृथ्वी व सूर्य के रात दिन निरंतर परिक्रमा कर रही है, ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रह, उपग्रह और तारे भी परिभ्रमण कर रहे हैं। उन सभी के अपने–अपने मार्ग निश्चित हैं, गति निश्चित है। वे ना तो एक दूसरे से टकराते हैं और ना ही अपनी गति का अतिभ्रमण करके अपनी यात्रा शीघ्र व विलम्ब से पूरी करते हैं। इसका कारण क्या है?

पृथ्वी एक बड़ा चुम्बकत्व है जिसके उत्तरी और दक्षिणी दो ध्रुव होते हैं। जिसके बीच चुम्बकीय शक्ति प्रभावित होती हैं। मानव पृथ्वी का निवासी है अतः उसके प्रभाव से वंचित नहीं रह सकता है। शरीर मूल रुप से एक विद्युत चुम्बकीय यंत्र है। शरीर का प्रत्येक कोष विद्युत इकाई है तथा उसका अपना एक चुम्बकीय क्षेत्र है। शरीर का प्रत्येक कोष विद्युत इकाई है तथा उसका अपना एक चुम्बकीय क्षेत्र है। परिणाम स्वरुप जीवों का स्वास्थ्य तथा जीवन–शक्ति का सम्बन्ध पृथ्वी से है।

पृथ्वी और मानव दोनों में चुम्बकत्व शक्ति होने के कारण पृथ्वी का स्पर्श ही मानव के रोगों का निवारण तथा शक्तिवर्धक होता है। इसी कारण नंगे पैरों से टहलने के लिए कहते हैं तथा शरीर पर रोगों के निवारण हेतु मिट्टी का लेप करते हैं।
सूर्य की पृथ्वी की अपेक्षा एक बडा चुम्बक है। सूर्य का यह क्षेत्र पृथ्वी (105600) मील से कई सौ गुना अधिक है। पृथ्वी पर धूप–छाया, दिन–रात व ऋतुऐं सभी प्रकार का जीवन गर्मी तथा अग्नि सूर्य के ही कारणों से है। चन्द्रमा की पृथ्वी से न समाप्त होने वाला सम्बन्ध रखता हैं। तिथि पत्रों का निर्धारण चन्द्रमा के आधार पर ही हुआ है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि शुक्लपक्ष में हमारे शरीर के द्रव आसानी से द्रवित होते हैं। पूर्णमासी व अमावस्या का व्रत धर्म के साथ–साथ वैज्ञानिक भी होता है क्योंकि दूसरे द्रव्यों में संतुलन बना रहता है।
मानव सृजित एक छोटा प्राणी है। इसमें सृष्टि के तत्वों एंव गुणों का समावेश होता है। अनेक ग्रह चुम्बकीय शक्ति के कारण ही संतुलन की अवस्था में अपने रास्ते पर चलते रहते हैं। मानव शरीर के आस–पास चुम्बकीय क्षेत्र होता है जिसे सूक्ष्म शरीर की संज्ञा देते हैं। मानव का विकास आध्यात्मिक शारीरिक व मानसिक उस चुम्बकीय सूक्ष्म में निहित होता है। किसी व्यक्ति से चुम्बकीय शक्ति की अधिकता के कारण उसके प्रति आकर्षित है। उसके सम्पर्क में आकर द्वेष भावनाऐं लुप्त हो जाती हैं। यह चुम्बक शक्ति का आध्यात्मिक पहलू है।

10.5 चुम्बकीय चिकित्सा का अवधारणा

परम्परा अनुसार तथा विभिन्न चुम्बकीय पुस्तकों की लेखन सामग्री तहत चुम्बक की खोज ईशा से कई शताब्दी पहले यूनान देश में रहने वाले एक गडरिए ने अज्ञानतावश मैग्नेट की खोज की थी। इस खोज का पूरा श्रेय गडरिए को जाता है। जिसके नाम पर ही चुम्बक का नाम मैग्नेट पड़ा।
स्वास्थ्य रक्षा के लिए चिकित्सा क्षेत्रों में विविध प्रकार की चिकित्सा विधाऐं प्रचलित हैं। उनमें चुम्बकीय चिकित्सा भी अपना महत्व रखती है। इस विद्या के निष्पात चिकित्सकों द्वारा असाध्य रोग का उपचार सफलतापूर्वक किया जा सकता है। गरीबों एंव असहाय रोगियों के लिए रोगोपचार में यह विद्या सहायक सिद्ध होगी। इस प्रकार की चिकित्सा शिक्षा मेडिकल चिकित्सा के साथ पढ़ाई एवं पढ़ी जानी चाहिए। डा0 पीयूष त्रिवेदी ने इस विषय को सहज रुप में समझाने का यह सार्थक कार्य किया है।
चुम्बक उस सभी पदार्थों को अपनी शक्ति से प्रभावित करता है जो उसके अधिक पास–पास रहती है किन्तु स्वयं चुम्बक के अपने चारों ओर जो चुम्बकीय क्षेत्र होता है उसकी सीमा अन्तहीन है। वर्तमान में चिकित्सा सुविधा के क्षेत्र में हो रही प्रतिस्पर्धा के दौर में चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान है। यह चिकित्सा पद्धति प्राचीनकाल से प्रचलित रही है। यह चिकित्सा सस्ती एवं सुलभ होने से जनसाधारण में लोकप्रिय बनती जा रही है, यही कारण रहा है कि विश्व के अनेक देशों में भी इस पद्धति को अपनाया गया है। भारत देश में आज भी ऐसे परिवार बहुतायत में हैं जो निर्धनावस्था में जीवन यापन करते हैं, इनके पास बिमारी की अवस्था में उचित औषधि व चिकित्सा सुविधाओं के लिए धन का अभाव रहता है। इस पुस्तक के माध्यम से समाज के प्रबुद्ध नागरिकों को प्रेरणा मिलेगी कि वे इस सरल चिकित्सा प्रणाली को अपनाकर निःशुल्क स्वास्थ्य केन्द्र खोले व सभी को स्वस्थ लाभ हो।

पृथ्वी की भांति सूर्य में भी बहुत अधिक चुम्बकीय शक्ति है। पृथ्वी का सूर्य के साथ गहरा सम्बन्ध है, पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमते हुए सूर्य की प्ररिक्रमा करती है। इसी कारण सूर्य की चुम्बकीय किरणों का सीधा प्रभाव पृथ्वी वासियों पर पढ़ता है। चन्द्रमा में भी चुम्बकीय शक्ति विद्यमान है। संसार के प्रत्येक व्यक्ति की गतिविधियां चन्द्रमा से प्रभावित होती हैं।
भारतीय पचांग का निर्माण प्रथम बार चन्द्रमा के आधार पर किया गया था, सूर्य और चन्द्रमा की तरह भू–चक्र के अन्य ग्रहों की चुम्बकीय शक्ति का प्रभाव भी मनुष्य के स्वास्थ्य और भाग्य पर पड़ता है यह सभी नौ ग्रह हैं, जिन्हें नवग्रह कहा जाता है, इन्हीं ग्रहों के आधार पर ज्योतिष शास्त्र आधारित है, ग्रहों की स्थिति के अनुसार मनुष्यों का फलादेश निकाला जाता है। जन्मत्रिका निर्माण और प्रत्येक भविष्यवाणी इन्हीं ग्रहों की चाल के अनुसार की जाती है।
भारतीय साधु सन्तों और योगियों के अनुसार अनेक चमत्कारों की कहानियां आज भी जीवित हैं। जब उन्होंने किसी रोगी को छूकर ही रोग मुक्त कर दिया, किसी मृत देह को छूकर उसमें प्राणों का संचार कर दिया। वास्तव में निरंतर योग साधना, तन और मन की शुद्धि तथा पवित्रता के माध्यम से शुद्ध विचारों और पवित्र आचरण के कारण उनके शरीर के प्रत्येक अंग में ऐसी चुम्बकीय शक्तियों का जन्म हो जाता था जो केवल आर्शीवाद देकर या किसी को छूकर ही रोगमुक्त कर देते थे। उसके विचारों और भावनाओं को बदल देते थे। इस प्रकार के महान योगी वास्तव में उच्च चुम्बकीय शक्ति थी जो सहज ही दूसरों के रोगों को ही नहीं अन्य पीड़ाओ ंऔर दुःख तथा अभावों को पअनी ओर खींच लेते थे।

10.6 सावधानियां

चुम्बकीय चिकित्सा सुबह जल पान से पूर्व अथवा स्नान के बाद या फिर विशेष कष्ट की अवस्था में दोनों समय सुबह शाम उपचार करें तथा उपचार के एक घण्टे तक स्नान न करें। चुम्बक के प्रयोग से रक्त संवहन एवं परिसंचरण में वृद्धि होती है। इसलिए उपचार के बाद कम से कम आधा घण्टे तक कोई शीतल या उष्ण जल न पीयें।
भोजन के तुरन्त बाद शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग वर्जित है। इसमें चक्कर या उल्टी आ सकती है। भोजन के एक घण्टे बाद चुम्बकीय उपचार ले सकते हैं
चुम्बक को घटी, कैसेट या अन्य विद्युत यन्त्रों के पास नहीं रखना चाहिए। क्योंकि इसमें वस्तुऐं विगड़ सकती हैं।
इसका बहुत देर तक प्रयोग करने से मरीज को चक्कर आ सकता है तथा शरीर में भारीपन आखों में पानी तलवों एवं हथेलियों में जलन आदि हो तो चुम्बक को तुरन्त हटा लेना चाहिए।
चुम्बकों का प्रयोग करने से पहले रोगी को सुविधापर्वूक किसी कुर्सी या सोफे पर बैठाना चाहिए। जमीन पर बैठकर यह चिकित्सा नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि रोगी और धरती के मध्य एक पृथक्कारी कुचालक वस्तु का होना आवश्यक है। सार्वदैहिक प्रयोग के दौरान कोई ऐसा कठोर नियम नहीं है कि रोगी एक दिशा विशेष की ओर मुंह करके बैठे। किन्तु स्थानिक प्रयोग की दशा में दिशा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। अगर किसी प्रभावित भाग पर दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक लगाना है तो रोगी को इस तरह बैठाना चाहिए कि उसका मुंह उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए तथा अगर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक लगाना हो तो उसका मुंह दक्षिण दिशा की ओर रहना चाहिए। यही सिन्द्धान शरीर के अगले भाग में चुम्बक लगाने पर भी लागू होता है।

10.7 साराँश

वर्तमान युग प्रतिस्पर्धाओं से भरा युग है। इस युग में मानव के जीवन में समय–समय प कपट आते रहते हैं और वह सहन करता रहता है। प्राचीन कालीन परिभाषा में शरीर की रक्षा के लिए कहा गया है कि "शरीरमांध खलु धर्म साधनम्" अर्थात शरीर की देखरेख ही धर्म का साधन हे। यहा स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों शरीर को परिभाषित किया गया है। शरीर का स्वस्थ्य न होना ही संसार में समूची अव्यवस्था का प्रमुख कारण है।
आज का मानव वैज्ञानिकता के आधार पर नवीन शोध कार्यों में इतना व्यस्त है कि वह स्वास्थ्य के प्रति उदासीन हो गया है। उसे स्वस्थ रहने के उपाय बताना या अपनाना अच्छा नहीं लगता है लेकिन यह स्पष्ट है और हमें यह समझ लेना चाहिए कि स्वस्थ रहने के लिए मानव शरीर को स्व–हितार्थ सोचना चाहिए।
स्वस्थ्य होने का तात्पर्य है (स्व+स्थ) अपने में स्थित होना। वैकल्पिक चिकित्सा में चुम्बक चिकित्सा ने अपनी योग्यता कायम की है एवं इससे साध्य–असाध्य सभी रोगों में पूर्ण उपचार हा रहा है। दवाइयों का उपयोग नहीं करने वाली चिकित्सा पद्धतियों में चुम्बक चिकित्सा पद्धति अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है एवं वरदान सिद्ध हो रही है।

10.8 शब्दावली

शक्ति	=	ताकत
सर्वाधिक	=	सबसे अधिक
तंत्र	=	भाग (विशेष अंग)
पंचतत्व	=	आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी
संतुलित	=	बराबर (सम)
प्रचलित	=	प्रसिद्ध, सामाजिक
उपचारक गुण	=	ठीक करने की शक्ति
पुरातन	=	अति पुरानी या प्राचीन
पिरामिड	=	शवों को रखने का एक स्थान
साक्ष्य	=	परिणाम (सबूत), प्रत्यक्ष, उपलब्ध
द्वेष भावनाऐं	=	काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, कपट, छल
प्रतिस्पर्धा	=	आगे बढ़ने की होड़
पंचाग	=	ग्रह तिथियों से सम्बन्धित
आर्शीवाद	=	कार्य को पूर्ण करने की सिद्धि
मानसिक	=	चित्त, मन, बृद्धि

10.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

नोट– सत्य/असत्य बतलाइये–

1. चुम्बक का अविष्कार मैगनेट नामक गडरिये ने अनजाने में खोजा था।
   सत्य/असत्य

2. प्राकृतिक चुम्बक का फार्मूला E_3O_2 है।

सत्य / असत्य

3. चुम्बक के छोटे से छोटे कण में भी दो ध्रुव होते हैं।

सत्य / असत्य

उत्तर–

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 डा0एस0 के शर्मा, चुम्बक चिकित्सा, डायमण्ड पॉकेट बुक्स (प्रा0) लि0–30, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेज–II, नई दिल्ली

2 डा0 राजकुमार फ्रथी, वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियां, प्रभात पेपर बॉक्स, 4 / 19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

3 नौटियाल डॉ. विनोद प्रसाद, योग और वैकल्पिक चिकित्सा, किताब महल, 22 सरोजिनी मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012

4 डॉ.पियूष त्रिवेदी पी चुम्बकीय चिकित्सा बी.डी. पापुलर बुक डिपो, तृतीय संस्करण 2011

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र01 चुम्बक का ऐतिहासिक परिचय दिजिए।

प्र02 चुम्बक की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 11- चुम्बकीय चिकित्सा के सिद्धान्त

11.1 प्रस्तावना
11.2 चुम्बकीय चिकित्सा के उद्देश्य
11.3 चुम्बकीय चिकित्सा का सामान्य परिचय
11.3.1 चुम्बक के गुणों का परिचय
11.3.2 चुम्बकीय चिकित्सा की विधि एवं प्रभाव
11.4 चुम्बकीय चिकित्सा के सिद्धान्त
11.5 सारांश
11.6. शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना :—

चुम्बकीय चिकित्सा का अविष्कार ईसा से कई शताब्दी पूर्व यूनान में मैग्नेट नाम के गड़रिये ने अनजाने में इसको खोजा था। उसी के नाम पर उसका नाम चुम्बक रखा गया। यह भी कहा गया है कि, चुम्बक सबसे पहले एशिया माइनर के क्षेत्र मैग्नेशिया क्षेत्र में मिला इससे इसे मैग्नेराइट कहा जाने लगा।

चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित हो रही है। चुम्बकीय चिकित्सा एक चिकित्सा पद्धति है। इसकी दो पद्धतियां प्रचलित हैं :—

1. सार्वदैहिक अर्थात हथेलियों व तलवों पर लगाने से तथा
2. स्थानिक अर्थात रोग ग्रस्त भाग पर लगाने से

चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति द्वारा हमारा शारीरिक एवं मानसिक उपचार संभव है। चुम्बकीय उपचार द्वारा हमारे समस्त रोग ठीक होते हैं और उसके साथ ही साथ रक्त में जितने भी विजातीय द्रव्य है वो सभी दूर होते हैं। यह चिकित्सा प्राचीनकाल से ही प्रचलित रही है, यह आपको विदित ही होगा, चुम्बकीय चिकित्सा बड़ी सस्ती एवं सर्वसुलभ होने से जनसाधारण में लोकप्रिय बनती जा रही है। इसी कारण विश्व के अनेक देशों में चुम्बकीय चिकित्सा प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है। चुम्बकीय चिकित्सा द्वारा मानव शरीर का बिना दवा कम समय एवं कम खर्च में उपचार किया जा सकता है।

यह वैज्ञानिकों द्वारा कहा गया है कि जन आमावस्या या पूर्णिमा आती है, तो तब तरल पदार्थों तथा अन्य सभी जो द्रव्य पदार्थ हैं उन पर चन्द्रमा का बहुत प्रभाव पड़ता है, उस समय कहा गया है कि ‘‘वृत्त लेना चाहिए’’ यह सिद्धान्त बताया गया है। कारण है कि उन दिनों सभी लौहमध्य को अर्थात शरीर में व्याप्त सभी तरह के पदार्थों जिनमें लोहा रहता है। उस पर चन्द्रमा का सीधा प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप मनुष्य के मन तथा मस्तिष्क पर इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हो सकती है। अतः उन दिनों भूखा रहने से शरीर के द्रव्यों में कमी

हो जाती है और मानव शरीर पर चन्द्रमा का उल्टा प्रभाव नहीं पड़ता, और वैज्ञानिक इस तथ्य को शत–प्रतिशत चुम्बकीय गुणों से युक्त मान रहे हैं।

इसी तरह अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि चुम्बक और चुम्बकीय पत्थरों का प्रयोग औरतों के अति रक्तस्त्राव को रोकने हेतु किया जाता था, अथर्ववेद में इस चुम्बक को ''अश्मन'' या ''अश्य'' नाम से उल्लेखित किया गया है। अथर्ववेद के प्रथम भाग काड 1 सुक्त 19, मंत्र 3–4 एवं तृतीय भाग, काण्ड 7, सूक्त 35, मंत्र 2–3 में इस प्रकार का वर्णन आया है।

11.2 उद्‌देश्य

प्रिय विद्यार्थियों इस विषय को पढ़ने के बाद आप निम्न बिन्दुओं को जान सकेंगे।

1. हमारे शरीर में नष्ट हुई Cells को दुबारा जीवित करने के लिए चुम्बकीय चिकित्सा बहुत प्रभावशाली है।
2. इस विषय को पढ़ने के बाद विद्यार्थी चुम्बकीय चिकित्सा के सिद्धान्त को जान सकेंगे
3. इस विषय को पढ़ने के बाद विद्यार्थी चुम्बकीय चिकित्सा की विधि एवं प्रभाव को जान सकेंगे

11.3 चुम्बकीय चिकित्सा का सामान्य परिचय

जो चुम्बकीय चिकित्सा है वो शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बीमारियां की जांच एवं उपचार के लिए किया जाता है और चुम्बक का प्रयोग हम दर्द के नियंत्रण के लिए दर्द ''प्रवर्तित बिन्दु'' जहां दर्द उत्पन्न हो रहा हो, शरीर के उस हिस्से पर चुंबक की छोटी तश्तरी बांध दी जाती है। उपचार के दौरान जो चुम्बक का प्रयोग किया जाता है वो सामान्य तप 350 से 500 आंस का चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करता है। हमारा जो प्रतिबिम्ब केन्द्र होता है उन पर एक्यूप्रेशर निडिल से दबाव दिया जाता है। तत्पश्चात चुम्बकीय तस्तरी को उस बिन्दु पर लगाया जाता है और टेप से या किसी चिकित्सा पट्‌टी से बांध देते हैं और यह दर्द की गम्भीरता पर निर्भर करता है कि चुम्बक को पीड़ादायक स्थान पर कितने समय तक बांधे रखना पड़े, हो सकता है कि आप को कम से कम 3 मिनट तक पीड़ादायक स्थान पर चुम्बक बांधे रखना पड़े या फिर कई दिनों तक अथवा कई हफ्तों तक बांधना पड़े।

आज पूरे विश्व में चुम्बकीय चिकित्सा का बोलबाला हो गया है और अमेरिका, रूस तथा जापान जैसे देश अपने अध्ययन–मनन में बहुत आगे हैं एवं चुम्बक की अनेक लाभकारी वस्तुओं को रोगशमन एवं मानव हित हेतु प्रयोग करने में लगे हैं।

जैसे जापान में चुम्बकीय वस्तुओं का प्रयोग चुम्बकीय माला, चुम्बकीय कमरबंध, चुम्बकीय पट्‌टी तथा चुम्बकीय कृतियों के रूप में अनेक प्रकार की बीमारियों का इलाज करने के लिए किया जा रहा है। यह अनेक प्रकार के दर्द, कंधों की जकड़न, आमवात तथा संविवात में लाभकारी है। अमेरिका में चुम्बकीय जल द्वारा पेशाब की पथरी का उपचार एवं मूत्रण कष्ट को ठीक करने में चुम्बक का प्रयोग बहुतायत से किया जा रहा है।

''कुछ ही समय में चुम्बकीय ज्ञान चिकित्सा के क्षेत्र में एक सशक्त नूतन विश्लेषक तथा रोगोपचारक शक्ति के रूप में विकसित हो जायेगा'' ।डॉ.मेडलीन एफ.वारनोंधी

आज भारत में अनेक चिकित्सक चुम्बक चिकित्सा का लाभ उठाकर अनेक असाध्य रोगों को ठीक करने में सफल हो रहे हैं, आज चुम्बक का प्रयोग चिकित्सा जगत में

गली–गली होने लगा है, जो यह प्रमाणित करता है कि प्रकृति की वास्तविकता चुम्बक में विद्यमान है। चुम्बक एक विशेष प्रकार की खनिज धातु है। चुम्बक में लोहे से निर्मित सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है, अगर हम चुम्बक को किसी धागे की सहायता से स्वतंत्र रुप से लटका देंगे तो उसका एक सिरा सदैव उत्तर की ओर रहेगा तथा दूसरा सिरा दक्षिण की ओर रहेगा, जो सिरा उत्तर की ओर रहेगा वह बार–बार हटाने पर भी उत्तर की ओर ही रहेगा और जो सिरा दक्षिण की ओर है वह दक्षिण की ओर ही रहेगा।

11.3.1 **चुम्बक के गुणों का परिचय :–**

चुम्बक के गुणों का परिचय निम्नलिखित है :–

1. चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं। उत्तरी तथा दक्षिणी, भौतिक विज्ञान शास्त्री बैबर ने यह सिद्ध कर दिया कि चुम्बकीय सामग्री के अनुण वास्तव के छोटे चुम्बक होते हैं। उनका वजन कितना भी कम क्यों न हो उनमें दोनों ध्रुव विद्यमान रहते हैं।
2. चुम्बक का एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि विरोधी ध्रुव एक–दूसरे को आकृष्ट करते हैं लेकिन समान ध्रुव एक–दूसरे से परे रहते हैं।
3. चुम्बकीय पंक्तियों अथवा धाराओं की संकल्पना है चुम्बक के आस–पास जो धारा है उसी क्षेत्र को चुम्बकीय क्षेत्र कहा जाता है।
4. चुम्बक एक विशेष प्रकार की खनिज धातु है।
5. चुम्बक के दो टुकड़े एक–दूसरे के सामने लाए जाने पर कभी तो वो एक– दूसरे पर चिपक जाते हैं और कभी दूर भागते हैं।
6. चुम्बकीय ध्रुवों की प्रेरणा दिशाएं विरूद्ध होती है क्योंकि उत्तरी ध्रुव में प्रोटॉन अणुशक्ति तथा दक्षिणी ध्रुव में इलेक्ट्रॉन अणुशक्ति होती है।

11.3.2 **चुम्बकीय चिकित्सा की विधि एवं प्रभाव :–**

हमारे शरीर पर चुम्बक का उपयोग मुख्यतया दो प्रकार से किया जाता है :–

1. सार्ववैहिक अर्थात हथेलियों और तलुओं पर लगाने से
2. स्थानिक अर्थात रोगग्रस्त भाग पर लगाने से

1. सार्वदैहिक अर्थात हथेलियों और तलुओं पर लगाने से :–

इस प्रयोग विधि के अनुसार उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव से सम्पन्न चुम्बकों का एक जोड़ा लिया जाता है। शरीर के विद्युतीय सह सम्बन्ध के आधार पर उत्तरी ध्रुव वाले चुम्बक का प्रयोग शरीर के दायें भाग पर, आगे की ओर तथा उत्तरी भागों पर किया जाता है, जबकि दक्षिणी ध्रुव वाले चुम्बक का प्रयोग शरीर के बायें भागों पर, पीठ पर तथा निचले भागों पर किया जाता है। यह अटल सत्य नियम चुम्बकों के सार्वदैहिक प्रयोग पर ही लागू होता है। जबकि स्थानीय प्रयोग की अवस्था में रोग संक्रमण, दर्द, सूजन आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता है। जब रोग या उसका प्रसाद शरीर के ऊपरी भाग अर्थात नाभि के ऊपर हो तो उत्तम उपचार के लिए चुम्बक को हथेलियों पर लगाया जाता है जबकि शरीर के निचले भागों अथवा नाभि के नीचे विद्यमान रोगों के चुम्बक को तलुओं पर लगाया जाता है। इस प्रयोग विाि में रोग की निश्चितता या रोग क्या है आदि का निर्धारण हुए बिना भी उपचार से लाभ होते देखा जायेगा।

2. स्थानिक प्रयोग :–

इस प्रयोग विधि में चुम्बक को उन स्थानों पर लगाया जाता है रोग ग्रस्त होते हैं। जैसे – घुटना या पैर, दर्द वाली कशेरूका, आँख, नाक, मुँह, कान आदि। इनमें रोग की तीव्रता तथा रूप के आधार पर एक दो और यहां तक की तीन चुम्बकों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ :–

गर्दन एवं घुटनों में तीव्र दर्द हेतु दो चुम्बकों का प्रयोग अलग–अलग घुटनों पर तथा तीसरे चुम्बक को गर्दन की जगह पर, जहाँ दर्द है वहाँ प्रयोग में ले सकते हैं। घाव की अवस्था, दाँतो में पीव की शिकायत, रोग की संक्रमण अवस्था में भी चुम्बक के केवल उत्तरी ध्रुव का प्रयोग करते हैं। पाँव की अंगुलियों में तीव्र दर्द की अवस्था में चुम्बक के दोनों ध्रुवों के मध्य प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। ऐसा देखा गया है। वहाँ पर ऊपर–नीचे के अटूट नियम की छूट जाते हैं।

चुम्बक की शक्ति का प्रभाव शरीर और उसकी क्रियाओं पर बहुत दूर तक पड़ता है। पहले पानी और बाद में रक्त पर वैज्ञानिकों द्वारा चुम्बक शक्ति के प्रभाव का अध्ययन किया गया। अगर नमक जमे पानी की नली से चुम्बक युक्त पानी निकाला जाता है तो उसमें जमा नमक निकल जाता है तो उसके गुणों में अनेक परिवर्तन आ जाते हैं। जैसे कि तापमान, घनत्व, तनाव और बिजली संवर्धन की शक्ति बदल जाती है।

चुम्बक के प्रयोग से रक्त में लोहे का तत्व अधिक सक्रिय हो जाता है बिजली की हल्की सी धारा उत्पन्न होती है। चुम्बकत्व का क्षेत्र जितना शक्तिशाली होता है लोहे के कण के उतने ही अधिक केन्द्र बनते चले जाते हैं इससे लहू में धक्के जमने की सम्भावना नहीं रहती है। अतः वह आसानी से शरीर में प्रवाहित हो सकता है। चुम्बक के प्रभाव से लाल रक्त कण बढ़ जाते हैं और वे अधिक सक्रिय हो जाते हैं।

11.4 चुम्बकीय चिकित्सा के सिद्धान्त

चुम्बकीय चिकित्सा के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :–

1. प्रत्येक जीवित प्राणी के शरीर में अनेक इलेक्ट्रान तथा न्यूट्रॉन होते हैं, इनसे विद्युत का प्रवाह प्राणी के पूरे शरीर में होता है। अगर ये इलेक्ट्रॉन तथा न्यूट्रॉन अपने स्थान से हट जाते हैं तो शरीर में अनेक प्रकार की विषमताएं उत्पन्न होने लगती हैं। तनाव (Stress), सिरदर्द (Headache) माइग्रेन इत्यादि व्याधियाँ इन्हीं परमाणुओं के असन्तुलन के कारण उत्पन्न होती हैं। अतः चुम्बकीय चिकित्सा द्वारा इन परमाणुओं तथा अणुओं को ठीक स्थान पर लाया जाता है।
2. जब ये परमाणु अपने स्थान से हट जाते हैं तो शरीर में और गर्मी उत्पन्न होती है।
3. शरीर के सभी अंगों में विभिन्न रसायन विद्यमान होते हैं। उनमें हल्की गर्मी पैदा होती है। उनकी सहज क्रियायें पहले से सुधारात्मक हो जाती है। मस्तिष्क से स्नायुओं के मध्य से भेजे गए संदेश चुम्बकीय क्षेत्र की सहायता से अच्छी प्रकार पहुंच जाते हैं। रक्त में विद्युत कणों पर चुम्बक का प्रत्यक्ष प्रभाव और अन्य रसायनों पर उसका प्रभाव शारीरिक क्रियाओं को अच्छा बनाता है। इसके निम्न परिणाम होते हैं :–

(i) रक्त में थक्का नहीं जमता है और रक्त बिना किसी अवरोध के पूरे शरीर में प्रवाहित होता है।

(ii) शरीर के द्रव्यों का स्त्राव सुधर जाता है।

. (iii) मृत कोशिकाएं तथा ऊत्तक नया जीवन प्राप्त करते हैं।

(iv) मस्तिष्क द्वारा सभी अंगों को संदेश पहुंचाने का कार्य सही ढंग से होता है।

(v) मल–मूत्र और अन्य द्रव्यों तथा रसायनिक पदार्थों के माध्यम से शरीर में विद्यमान चुम्बकीय क्षेत्र और विद्युतीय आवेगों के माध्यम से शारीरिक क्रियाओं को ठीक करके स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न हो सकता है कि आखिर मनुष्य पर चुम्बक का असर किस प्रकार से पड़ता है। रिचक वक्र ने अपने प्रयोगों में यह सिद्ध किया है कि संवेदनशील व्यक्ति जब अपना सिर दक्षिण दिशा की ओर रखकर सोने का प्रयास करता है। तब उसे अधिक बेचैनी होती है और इसे कारण उसे नींद नहीं आती किन्तु जब वो उत्तर की ओर सिर रखकर सोता है तो उसे जल्दी नींद आ जाती है और किसी प्रकार की बेचैनी नहीं होती। इसका अर्थ यह हुआ कि जब व्यक्ति पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में स्थानान्तर होता है तो मानसिक रूप से सुखी रहता है तथा उसे कोई बेचैनी या परेशानी नहीं होती है।

अगर कोई व्यक्ति किसी भी कारण मृत्यु तुल्य कष्ट भोग रहा है तो उसे धरती पर उत्तर की ओर सिर रखकर सुला दिया जाता था इससे वह व्यक्ति पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के समानान्तर रहता था और उसे शास्ति का अनुभव होता था। वस्तुतः व्यक्ति के मस्तिष्क को पृथ्वी के उत्तर ध्रुव की सुखद एवं शीतल किरणों की आवश्यकता होती है।

पृथ्वी की भांति सूर्य में भी बहुत अधिक चुम्बकीय शक्ति है। पृथ्वी का सूर्य के साथ गहरा संबंध भी है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमते हुए सूर्य की परिक्रमा करती है, इसी कारण सूर्य की चुम्बकीय किरणों का सीधा प्रभाव पृथ्वीवासियों पर पड़ता है। चन्द्रमा में भी चुम्बकीय शक्ति विद्यमान है। संसार के प्रत्येक व्यक्ति की गतिविधियों चन्द्रमा से प्रभावित होती है। भारतीय पंचांग का निर्माण प्रथम बार चन्द्रमा के आधार पर दिया गया था और आज भी किया जाता है, यह माना जाता है कि स्त्री शुक्लपक्ष में ऋतुमयी होने के पश्चात गर्भ धारण करती है तो पुत्र को जन्म देती है। कृष्णपक्ष में ऋतुमयी होने के पश्चात गर्भधारण करने वाली स्त्री कन्या को जन्म देती है। चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के कारण ही समुद्र में ज्वार–भांटा आता है पूर्णिमा के चन्द्रमा का प्रभाव केवल समुद्र पर ही नहीं बल्कि मनुष्यों पर भी पड़ता है।

सूर्य और चन्द्रमा की तरह भू–चक्र के अन्य ग्रहों की चुम्बकीय शक्ति का प्रभाव भी मानव के स्वास्थ्य और भाग्य पर पड़ता है। ये सभी नौ ग्रह है जिन्हें नवग्रह कहा जाता है। इन्हीं ग्रहों के आधार पर ज्योतिष शास्त्र आधारित है। ग्रहों की स्थिति के अनुसार मनुष्यों का फलादेश निकाला जाता है। जन्मपत्री का निर्माण और प्रत्येक भविष्यवाणी इन्हीं ग्रहों की चाल के अनुसार की जाती है।

अभ्यास प्रश्नः

सत्य/असत्य बताइये

1.चुम्बक एक विशेष प्रकार की खनिज धातु है। सत्य/असत्य
2.चुम्बकीय चिकित्सा द्वारा मानव शरीर बिना दवा के इलाज कीया जा सकता है। सत्य/असत्य
3. दॉत दर्द मोच मे चुम्बकीय चिकित्सा का प्रयोग नही कर सकते । सत्य/असत्य
4. चुम्बक के प्रयोग से रक्त मे लोहे का तत्व अधिक सक्रिय हो जाता है। सत्य/असत्य

11.5 सारांश :–

आधुनिक काल से पूर्व विश्व में आवासीय रोगों के उपचार के अनेक प्रकार प्रचलित हैं। पुरातन आयुर्वेद और यूनानी औषधियों के द्वारा उपचार व्यवस्था के साथ ही साथ और भी अनेक विधियां पुरातन काल से चली आ रही है। तपते लोहे के द्वारा रोगग्रस्त अंगों को सेंकने, तपाने और लगाने की क्रिया किरणों द्वारा उपचार, प्राकृतिक चिकित्सा की तरह चुम्बक द्वारा चिकित्साएं पुरातन काल से प्रचलित है। वर्तमान में होम्योपैथी और एलोपैथी जैसी सुलभ चिकित्सा उपलब्ध होते हुए जिन प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन सर्वाधिक है उनमें चुम्बकीय चिकित्सा प्रणाली अत्यधिक प्रचलित है।
आयुर्वेद के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ चरक संहिता में चरक ने लिखा है – संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसमें उपचार का गुण न हो। जड़ी–बूटियां, विभिन्न धातुओं की भस्में आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा प्रणाली में प्रयोग की जाती है। चुम्बक भी एक धातु ही है। लेकिन इसका प्रयोग भस्म के रूप में नहीं किया जाता है इसके द्वारा उपचार अवश्य किया जाना चाहिए।
आयुर्वेद के अनुसार चुम्बक का प्रयोग रक्तस्राव होने अर्थात शरीर के किसी भी भाग से रक्त बहने पर किया जाता था। स्त्रियों का मासिक धर्म यानि रजस्वला होने पर अत्यधिक रक्तस्राव होने की स्थिति में भी चुम्बक का प्रयोग किया जाता था – शरीर की कितनी ही शिराओं और धमनियों से कितना ही रक्त क्यों न प्रवाहित हो रहा है। सिकतावली अर्थात चुम्बक के प्रयोग से तत्काल रूक जाता है। प्राचीनकाल में आये दिन युद्ध होते रहते थे, तलवारों और बर्छियों आदि से आये हुए घावें को रोकने के लिए चुम्बकीय चिकित्सा का कार्य किया जाता था।
विश्व के प्राचीन ग्रन्थों में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें अनेक विशिष्ट कार्यों के लिए चुम्बक का प्रयोग किया जाता था। पुरातन काल में अपनी उत्कृष्ट सभ्यता के लिए प्रख्यात भारत, मिस्र और यूनान–तीनों ही देशों में चुम्बक का प्रयोग किया जाता था। यूनानी महान दार्शनिक अरस्तु, प्लेटों और होमर ने अपने ग्रन्थों में चुम्बक के उपयोग का उल्लेख किया है।
चुम्बकीय चिकित्सा रोगों के उपचार का एक प्राकृतिक साधन है। इस पद्धति के द्वारा औषधि आदि पर कोई खर्च नहीं करना पड़ता और रोगी की आधुनिक एलोपैथिक दवाओं की भयानक प्रतिक्रियाओं से बचा रहता है। पद्धति सर्वाधिक सुरक्षित और सरल है। इस पद्धति के द्वारा रोगी घर पर रह कर स्वयं ही अपना उपचार कर सकता है। यह पद्धति न तो किसी अन्य प्रकार के उपचार में बाधक है और न इससे कोई आदत ही पड़ती है। चुम्बक का प्रयोग शारीरिक क्रियाओं में नियमित और नियंत्रित रखता है। कुछ रोग तथा शारीरिक कारणों से जिन लोगों के लिए व्यायाम वर्जित होता है वे इस पद्धति द्वारा पूरा–पूरा लाभ उठा सकते हैं। जिन रोगों में अन्य चिकित्साएं विफल होती देखी गई है

वहां चुम्बक को सन्तोषजनक काम करते पाया गया है। चुम्बक की सहायता से पुराने और असाध्य रोग कम समय में ठीक किए जा सकते हैं। चुम्बक के सेवन में आयु की भी कोई बाधा नहीं होती है।

11.6 शब्दावली :—

''मनोयोग'' (**Attention**) — ध्यान, सावधानी

''मनोवृत्ति'' (**Attitute**) — कुछ सोचना या अनुभव करने या तरीका

''मुग्ध करना'' (**Attract**) — आकर्षित करना।

''अक्ष'' (**Axis**) — किसी गोल घूमती हुई वस्तु के बीचो—बीच से गुजरती एक काल्पनिक रेखा।

''स्थापित करना'' (**Base**) — किसी महत्वपूर्ण वस्तु को आधार बनाकर कुछ बनाना।

''विक्षिप्त'' (**Mad**) — मानसिक रूप से अस्वस्थ।

11.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.सत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.असत्य

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ :—

1. डॉ.पीयूष त्रिवेदी ''चुम्बकीय चिकित्सा'' : पापुलर बुक डिपो, शीतल प्रेस, जयपुर (2011)

2. डॉ.विनोद प्रसाद नोटियाल : वैकल्पिक चिकित्सा किताब महल 22, सरोजिनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद (2012)

3. डॉ.राजकुमार प्रुथी ''वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ'' :ग्राफिक वर्ल्ड नई दिल्ली (2005)

4. डॉ.एस.के.शर्मा ''चुम्बक चिकित्सा'' : X—30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज—II, नई दिल्ली (2001)

5. मिश्र, डॉ. प्रयाग दीन ''प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धांत एवं व्यवहार, मधुकर द्विवेदी, निदेशक, उ.प्र.हिन्दी संस्थान, लखनऊ (1998)

6. नीरज, डॉ.नागेन्द्र कुमार ''प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग, डॉ.मंजू नीरज, माँ सीता स्मृति स्वास्थ्य प्रकाशन माला, मानसरोवर, जयपुर (2008)

11.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 चुम्बकीय चिकित्सा के क्या सिद्धांत है विस्तर से समझाइये।

2 चुम्बकीय चिकित्सा की विधी को बतलाते हुए उसके प्रभावों का बताइये।

इकाई 12- चुम्बकीय चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के उपकरण

12.1 प्रस्तावना
12.2 उददेश्य
12.3 चुंबक चिकित्सा का सामान्य परिचय
12.4 चुंबक चिकित्सा के विभिन्न प्रकार के उपकरण
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
12.9 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना :—

वर्तमान समय में व्यक्ति के जीवन में व्याधियां उसके चारो ओर विद्यमान हैं और मानव के जीवन में समय—समय पर अनेक कष्ट आते रहते हैं और मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित हो रहा है जबकि हमारे प्राचीनकालीन परिभाषा यह बताती है कि **''शरीभाद्यं खलु धर्म साधनम्''** अर्थात शरीर की देखरेख करना धर्म का साधन है मानव शरीर का स्वस्थ्य न होना ही आज संसार की समूची अवस्था का प्रमुख कारण है आज का मानव अपनी निजी जिन्दगी में इतना व्यस्त है कि वह अपने स्वास्थ्य के प्रति बहुत उदासीन हो गया है, उसे स्वस्थ रहने के उपाय बताना तथा अतना अच्छा नहीं लगता है जिस कारण से वह सांसारिक व्याधियों का शिकार हो रहा है, लेकिन यह सार्वभौमिक सत्य है कि हमें यह ज्ञात होना चाहिये कि जब तक मानव अपने हित में नहीं सोचेगा तो बाधायें आती रहेगी, इसलिये मानव को अपने बारे में सोचकर अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहना चाहिये आज मानव को स्वास्थ रहने के लिये न किसी स्वास्थ्य केन्द्र की जरूरत है और ना ही किसी चिकित्सा की और न ही किसी औषधि की क्योंकि स्वस्थ रहना मनुष्य के स्वयं अपने हाथ में निर्भर करता है। स्वस्थ रहने का तात्पर्य है कि अपने में स्थित होना, आज मानव को स्वस्थ रहने के लिये प्रकृति की ओर आने की तथा प्राकृतिक नियमों को चाहने वाली या पालन करने वाली चिकित्सा पद्धतियों की, इसी के कारण आज का युग वैकल्पिक चिकित्साओं का युग कहलाने लगा है, इन्हें वैकल्पिक चिकित्साओं द्वारा निरापद और श्रेष्ठतम उपचार होने लगे हैं। वैकल्पिक चिकित्सा में चुम्बकीय चिकित्सा ने अपनी श्रेष्ठता कायम की है पृथ्वी में चुम्बकत्व का गुण सभी जगह विद्यमान है, यह आज के वैज्ञानिक द्वारा भी सिद्ध किया जा चुका है तथा चुम्बकत्व गुण व्याप्त होने के कारण पृथ्वी में रहने वाला प्रत्येक प्राणी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता है इसका प्रभाव प्रत्येक प्राणी पर पड़ रहा है जिसके कारण मानव शरीर में इसका प्रभाव पड़ता है तथा मनुष्य पर चुम्बकीय चिकित्सा या चुम्बक का प्रभाव कैसे पड़ता है। पृथ्वी में चुम्बकत्व शक्ति विद्यमान होने के कारण तथा मनुष्य में चुम्बकीय शक्ति होने के कारण आज पृथ्वी का स्पर्श ही मनुष्य के रोगों का निवारक और शक्तिवर्धक है, इसीलिये ही व्यक्ति को नंगे पैर घूमने को कहा जाता है जिससे प्रकृति को स्पर्श से मनुष्य के विकार दूर हो सके । मनुष्य में सृष्टि के प्राणी न होने के कारण इसमें

सृष्टि के गुणों का समावेश है तथा इस चुम्बकत्व का प्रभाव हमारे ग्रहों पर भी पड़ता है, इसी कारणवश हमारे ग्रहों में सन्तुलन स्थापित होता है तथा अपना मार्ग सही तरीके से प्रशस्त्र करते हैं तो चुम्बकीय शक्ति का आज चिकित्सा के क्षेत्र में भी बहुत बड़ी उपलब्धि है, चुम्बकीय चिकित्सा से मनुष्य की बीमारियों का समापन हो रहा है, इसी विषय पर चर्चा करेंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा से मनुष्य कैसे लाभान्वित हो

12.2 उद्देश्य :–

प्रिय विद्यार्थियों इस विषय को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा के उद्देश्य क्या हैं।

- इस अध्याय मे विद्यार्थी चुम्बकीय चिकित्सा का संक्षिप्त परिचय जान सकेगें।
- चुम्बकीय चिकित्सा मे उपयोग होने वाले विभिन्न प्रकार के उपकरणें की जानकारी भी इस अध्याय से प्राप्त कर सकेगें।
- विद्यार्थी इस अध्याय मे चुम्बकीय चिकित्सा के लाभो के बारे मे जान सकेगें।

12.3 सामान्य परिचय :–

वर्तमान युग में वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि चुम्बक का प्रभाव सारे विश्व में व्याप्त है, सूर्य चन्द्रमा, पृथ्वी तथा अनेक ग्रह भी स्वयं में एक बड़े चुम्बक है। अनेक ग्रह इस चुम्बक के कारण परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। चुम्बक एक मौलिक शक्ति है, पृथ्वी एक बड़ा प्राकृतिक चुम्बक है, पर प्रश्न यह उठता है कि चुम्बकत्व का स्त्रोत क्या है, पृथ्वी में विद्यमान चुम्बकीय शक्ति के गुण के कारण उसके चारो ओर के वायुमण्डल में विद्युत है परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि, पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिससे चुम्बकत्व उत्पन्न होता है और कुछ का विचार है कि पृथ्वी के मर्य ये विद्युत धाराएं हैं जो चुम्बकत्व है जो कि इसके उत्तरी और दक्षिणी दो ध्रुव है जिसके बीच चुम्बक की शक्ति प्रवाहित होती है मानव पृथ्वी निवासी है, अतः उसके प्रभाव से वंचित नहीं रह सकता शरीर मूल रूप से एक चुम्बकीय यंत्र है। शरीर का प्रत्येक कोष एक विद्युत ईकाई है तथा इसका अपना एक चुम्बकीय क्षेत्र है, परिणामस्वरूप स्वास्थ्य तथा उनकी जीवनी शक्ति का सम्बन्धी पृथ्वी से है। पृथ्वी और मानव दोनों में चुम्बकत्व शक्ति होने के कारण ही पृथ्वी का स्पर्श ही मनुष्य के रोगों का निवारण हो गया । मिश्र के इतिहास में वर्णन आता है कि वहां की राजकुमारी अपनी सुन्दरता के लिये जानी जाती थी वह हमेशा अपने मस्तक पर एक चुम्बक का ताबीज धारण करती थी ईसा पूर्व लेकर आठवीं–नवीं सदी के दौरान, अरस्तू प्लेटों तथा घेमर, जैसे महान, ग्रीक संतों, ने भी चुम्बक का वर्णन किया है तथा अनेक–अनेक कार्यों के लिये चुम्बक का प्रयोग होता रहा "अठारहवीं शताब्दी के आते–आते दो समकालीन विभूतियां थी, मेसमेर तथा हैनीमैन, जिन्होंने जिन्होंने चिकित्सा के निमित्त चुम्बकों का प्रयोग किया, इनमें व्यक्तिगत स्पर्श द्वारा चुम्बकों का प्रयोग किया करते थे जबकि हैनीमैन, चुम्बकीय छड़ों को काम में लाया करता है आज के युग में जबकि विज्ञान ने इतनी उन्नति कर दी है भौतिक विज्ञान हो या रसायन या चुम्बकत्व हो या विद्युत भौतिक विज्ञान या जैव–चुम्बक, अभियांत्रिक, हमारे वैज्ञानिक हमारे पूर्वजों द्वारा अर्जित चुम्बक के रोगोपचारक, मूल्यों का केवल समर्थन ही नहीं करते वरन् चुम्बक के जैवीय प्रभावों के बारे में भी अधिकाधिक ज्ञान उपलबध करा रहे हैं। अमेरिका, रूस तथा जापान जैसे देश अपने अध्ययन मनन में बहुत आगे हैं एवं चुम्बक की अनेक लाभकारी वस्तुओं का प्रयोग, चुम्बकीय माला, चुम्बकीय कमरबंध, चुम्बकीय पट्टियों तथा चुम्बकीय कुर्सियों के रूप में अनेक प्रकार की बीमारियों का इलाज करने के लिये किया जा रहा है, अमेरिका में चुम्बकीय जल के द्वारा पेशाब की पथरी का उपचार करके उसे समाप्त किया जा रहा है विद्वानों ने चुम्बक द्वारा प्रयुक्त पानी से पौधों को सींचा तो पया कि उन सभी पौधों का विकास बिना खाद के, शीघ्र होने लगा, आज

वैज्ञानिक अमेरिका के कैंसर के इलाज के लिये चुम्बक का सहारा ले रहे हैं क्योंकि चुम्बक का गुण इतना प्रभावी है जिससे हर एक व्याधि, रोग का निराकरण हो सकता है और वो हो भी रहा है इसलिये प्राकृतिक चिकित्सा के अन्दर चुम्बकीय चिकित्सा आज के यंग में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

12.4 चुम्बकीय चिकित्सा के विभिन्न प्रकार के उपकरण :–

चुम्बकीय उपकरण निम्नलिखित है :–

1.विशेष शक्तिशाली चुम्बक (प्रेसीडेन्ट मैग्नेट) :–इस प्रकार के चुम्बक वृद्ध लोगों के उपचार में काफी लाभदायक होती है। यह चुम्बक पुरानी एवं जटिल बीमारियों जैसे – लकवा, गठिया, कैंसर, आदि में प्रयुक्त की जाती है, चुम्बकीय जल एवं तेल का अधिक मात्रा में निर्माण इन्हीं चुम्बकों से किया जाता है।

2.उच्च शक्ति वाले चुम्बक (हाई मैग्नेट) :–उच्च शक्ति वाले चुम्बक अधिक आयु वाले लोगों के उपचार हेतु उपयोगी होते हैं, इस चुम्बक में लोहे के भार सहने की चुम्बकत्व क्षमता 05 किलो के लगभग रहती है।

3.मध्यम शक्ति वाले चुम्बक (प्रीमियर मैग्नेट) :– मध्यम शक्ति वाले चुम्बकीय उपकरणों का प्रयोग 05 से 20 वर्ष के लड़के–लड़कियों पर किया जाता है। इस चुम्बक में लोहे के भार सहने की चुम्बकत्व क्षमता 05 किलो के लगभग रहती है।

4.निम्न शक्ति के अर्धचन्द्रकार चुम्बक (सेरेमिक मैग्नेट) :– ये चुम्बक ठोढ़ी, कान, नाक, दांत, गला आदि कोमल स्थानों पर लगाये जाते हैं बच्चों की लम्बाई बढ़ाने हेतु भी इसका प्रयोग किया जाता है :–

(क)सामान्य सेरेमिक चुम्बक – कम क्षमता वाले सेरेमिक चुम्बक कहलाते हैं।

(ख)विशेष सेरेमिक चुम्बक – ये चुम्बक की सामान्य चुम्बक की भांति दो रंगों के मिलते हैं। उत्तरी ध्रुव का रंग नीला एवं दक्षिणी ध्रुव का रंग लाल होता है।

इन सेरेमिक, चुम्बकों की पहचान यह है कि नीले रंग के चुम्बक का गहरा वाला भाग उत्तरी ध्रुव का होता है, उभरा हुआ भाग दक्षिणी ध्रुव है, इसी प्रकार लाल चुम्बक का गहरा वाला भाग दक्षिणी ध्रुव का होता है, उसका उभरा भाग उत्तरी ध्रुव होता ळें

5.चुम्बक युक्त चश्मा :– यह चश्मा आंखों की दृष्टि को ठीक कर नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला होता है इसका सुबह–शाम 10 या 15 मिनट प्रयोग करना चाहिये।

6.सिर की चुम्बकीय पटरी :–इस पद्धति को सिर के चारो ओर पहना जाता है, इस पट्टी के बांधने मात्र से आधा शीशी दर्द कनपटी का दर्द, मस्तक शूल बालों का झड़ना, बाल सफेद होना, रूसी का रहना आदि ठीक हो जाते हैं। इसे दिन में 2 या 3 बार बांधना पड़ता है। एक बार में 15 से 25 मिनट तक बांधकर शप करें इस पट्टी से बच्चों की लम्बाई में वृद्धि होती है।

7.चुम्बकीय सर्वाइकल स्पोण्डिलाइटिस पट्टी :–इस पट्टी का उपयोग गले का दर्द सूजन या नसों की कमजोरी में किया जाता है। गर्दन में दर्द वाले भाग पर इस पट्टी को बांधा जाता है, दिन में 2 या 3 बार आधे–आधे घण्टे के लिये गर्दन पर बांधने से स्पोण्डिलाइटिस ठीक हो जाता है।

8.गले की चुम्बकीय पट्टी :– यह पट्टी दिन में एक या दो बार गले के चारों ओर प्रयोग में लायी जाती है इसे बांधने से गले का रोग, कफ, विकार, गले की बीमारियां – टॉन्सिल, आवाज बैठना, खांसी आदि कष्टों का शीघ्र निवारण होता है। यह प्रतिदिन 15 से 25 मिनट तक प्रयुक्त की जा सकती है।

9.चुम्बकीय माला :–चुम्बकीय माला द्वारा श्वसन संस्थान के सभी रोग जैसे – दमा– खांसी, जुकाम, प्लूरिसी, एलर्जी, टी.बी. एवं हृदयगति, दर्द ठीक हो जाते हैं। यदि यह माला नियमित पहनी जाय तो सभी रोगों की रोकथाम संभव हो सकती है। स्नान करते समय इसका प्रयोग न करें।

10.पेट की चुम्बकीय पट्‌टी :–इस पट्‌टी के उपयोग द्वारा पेट के समस्त रोगों की चिकित्सा होती है पेट के रोगों में कब्ज रहना, आंत में सूजन, गर्भाशय, शोथ, आंतगत, क्षय रोग, पेट दर्द, हर्निया, मधुमेह, यकृत की कमजोरी पेट का मोटापन, कम करने में यह तेली बेल्ट सहायक है, इसका प्रयोग दिन में 2 या 3 बार करते हैं। पेट के आकार के हिसाब से अलग–अलग इंचों के नाप से यह पट्‌टी बाजार में या चिकित्सकों के पास उपलब्ध रहती है।

11.चुम्बकीय कमर पट्‌टी :– कमर दर्द, सायटिका, आस्टिया, मलेसिया, स्पाइनल, ऑर्थराइटिस, डिस्क, रोग या चोट ग्रस्त कमर रोग में इस बेल्ट का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता है, यह पट्‌टी पीठ की ओर बांधी जाती है, जहां पर रोगी को पीड़ा तनाव या सूजन रहती है। वहां इसका प्रयोग हितकारी है पट्‌टी का चुम्बकीय भाग रीढ़ की ओर रहता है एवं चिपकाने वाला भाग पेट पर चिपकाता है इसे दिन में 1–1 घंटे सुबह शाम प्रयोग करे।

12.घुटने की टोपी :–इस टोपी को घुटने पर प्रयुक्त किया जाता है, इसके प्रयोग द्वारा आर्थराइटिस, पीड़ा अकड़न, सूजन, ठीक होकर घुटनों में नवीन ऊर्जा का संचार होता है।

13.चुम्बकीय गिलास :– अनेक प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि चुम्बकीय जल के प्रयोग से स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता में सुधार होता है, रक्त शुद्ध होता है सफेद, बाल काले हो जाते हैं पाचन क्रिया सुधर जाती है, भूख न लगना, मल, मूत्र क्रिया, पाचन की गड़बड़ी पथरी मासिक धर्म आदि से सम्बन्धित सभी रोग नष्ट होते हैं। यह गिलास चुम्बकीय सतह पर बनाया हुआ होता है जिससे सरलता से पानी बनाया जा सकता है।

14.घुटने की चुम्बकीय पट्‌टी :– घुटने के दर्द, जोड़ों की बीमारी नाड़ियों का दर्द, घुटने में सूजन, जकड़न सोध में यह पट्‌टी कारगर सिद्ध हुयी है, दर्द वाले स्थान पर एक दो घण्टे के लिये दिन भर में 2 या 3 बार इस पट्‌टी को बांधा जाय तो कष्ट कम हो जाता है।

15.चुम्बकीय नेत्र पट्‌टी :–इस पट्‌टी के प्रयोग से आंखों की रोशनी आंखों में दर्द, आंख आना, आंखों में जलन नेत्र दोष, नेत्र नाड़ी दोष, मायोपिया, आंखों से धुंधला दिखना ठीक होकर नेत्र दृष्टि बढ़ती है। आंखों का बढ़ता नम्बर रूक जाता है, इसका प्रयोग रोज सुबह शाम 10 मिनट तक करें।

16.चुम्बकीय कर्ण पट्‌टी :–इसके प्रयोग से कानों का बहना बंद हो जाता है, कानों में सायं–सायं की आवाज आना, बहरापन बढ़ना आदि में यह बेल्ट, रामबाण है, इसे रात को बांधा जाता है, बांधकर सोने से लाभ मिलता है।

17.चुम्बकीय बाजूबन्द :–मैग्नेटिक हैल्थ, बेल्ट, रक्तचाप की गत सामान्य करने में बहुत उपयोगी है, उक्त रक्त चाप में दायीं कलाई पर तथा निम्न रक्तचाप में बांयी कलाई पर बांधना श्रेयस्कर है।

18.चुम्बकीय गर्दन पट्‌टी :– जिनको लगातार टॉन्सिल होते हैं, पानी पीना कष्टकर होता है, गले में सूजन आ जाती है, उन्हें गले पर यह बेल्ट प्रयोग में लेनी चाहिये, इसे रात को बांधा जाता है, बांधकर सोने से लाभ मिलता है।

19.चुम्बकीय अण्डरबीयर बेल्ट :– पुरूष जननांगों की खराबी, प्रोस्टेट अण्डकोषों की वृद्धि स्वप्नदोषों, हस्तमैथुन की बुरी आदत, नपुंसकता, नाड़ी दुर्बलता, वीर्य क्षय की स्थिति में इसे रात को सोने से पूर्व 1 घंटे बांधें।

अभ्यास प्रश्न

1. भोजन के तुरन्त बाद मे शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग वर्जित है। सत्य /असत्य
2. चुम्बक को घडी कैसेट अन्य विद्युत यंत्रों के सम्पर्क मे आने देना चाहिए। सत्य/असत्य
3. चुम्बकीय उपचार के एक घंटे तक स्नान नही करना चाहिए। सत्य/ असत्य
4. श्रेष्ठ चुम्बकों का प्रयोग करना अच्छा रहता है। सत्य/असत्य
5. लौह चुम्बकों को जमीन पर रखना चाहिए। सत्य/असत्य

12.5 सारांश :–

उपर्युक्त चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति से हमें यह ज्ञात होता है कि आज मानव जीवन के लिये चुम्बकीय चिकित्सा कितनी अनिवार्य है और चुम्बकीय चिकित्सा के गुणों से भी हम अनभिज्ञ हो गये हैं इस चिकित्सा पद्धति को अपनाकर मानव जीवन स्वस्थ व निरोगमय जीवन व्यतीत कर सकता है इस चुम्बकीय चिकित्सा को प्राप्त करने से मनुष्य के लाभ ही लाभ हैं हानि तो एक भी नहीं है। अतः आज की भाग–दौड़ वाली जिन्दगी में मनुष्य अपने कार्य में इतना व्यस्त है कि उसे अपने स्वास्थ्य के प्रति गम्भीरता नहीं है जिस कारण मनुष्य आज जीर्ण–शीर्ण रोगों से युक्त हो रहा है और इसी के कारण व्यक्ति बड़ी–बड़ी बीमारियों से घिर रहा है। प्रस्तुत चुम्बकीय चिकित्सा एक सुलभ, व्यय रहित, प्रकृति द्वारा प्रदत्त चिकित्सा है। इस चिकित्सा से मानव पूर्णतः बीमारियों का जड़त इलाज करता है और शरीर स्वास्थ रहता है। अतः हमें इस चिकित्सा से सबको अवगत कराना चाहिये और प्राणी मात्र को यह संदेश देना चाहिये कि प्रकृति ही मनुष्य की संरक्षणकर्त्ता है और ये ही सभी दुःखों का उपाय है।

12.6 शब्दावली

''मनोवृत्ति'' **(Attitute)** – कुछ सोचना या अनुभव करने या तरीका

''मुग्ध करना'' **(Attract)** – आकर्षित करना।

''स्थापित करना'' **(Base)** – किसी महत्वपूर्ण वस्तु को आधार बनाकर कुछ बनाना।

''विक्षिप्त'' **(Mad)** – मानसिक रूप से अस्वस्थ।

12.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1.डॉ.पियूष त्रिवेदी पी चुम्बकीय चिकित्सा बी.डी. पापुलर बुक डिपो, तृतीय संस्करण 2011
2.नौटियाल डॉ. विनोद प्रसाद, योग और वैकल्पिक चिकित्सा, किताब महल, 22 सरोजिनी मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.चुम्बकीय चिकित्सा के विभिन्न प्रकार के उपकरणें को समझाइयें।
2.चुम्बकी चिकित्सा के क्या उददेश्य है विस्तार से लिखिए।
3.चुम्बकीय चिकित्सा के लाभों का समझाइयें।

इकाई 13 विभिन्न रोगों में उपयोगी चुम्बक चिकित्सा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उददेश्य
13.3 चुम्बकीय चिकित्सा का परिचय
13.4 विभिन्न रोगों में उपयोगी चुम्बक चिकित्सा
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना :–

चुम्बक चिकित्सा वैकल्पिक चिकित्सा की इकाई है, जिसमें रोगों के निवारण की विधियां हैं तथा प्राचीनकाल से ही विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालियों का उपयोग होता आया है तथा जो वर्तमान समय में भी प्रचलित है। आज संसार भर में वर्तमान समय में इतनी भागदौड़ व कार्य करने के प्रति मारामारी है, कि प्रत्येक व्यक्ति अपने वातावरण को अनदेखा करता जा रहा है। जिस कारण मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है और विभिन्न प्रकार की दवाईयों का सेवन कर रहा है। जिसके अनेक दुष्प्रभाव होते हैं। चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति रोगों के उपचार में एक प्राकृतिक साधन है तथा इस विधि द्वारा दवाईयों आदि पर किसी भी प्रकार का खर्चा नहीं होता है तथा रोगी विभिन्न प्रकार की एलोपैथिक दवाओं के भयानक कुप्रभाव से सुरक्षित रहता है तथा यह पद्धति बहुत ही सरलतम है। इस पद्धति से रोगी घर पर ही स्वयं उपचार कर सकता है। आज मानव शरीर को आवश्यकता है प्रकृति की ओर आने की । वर्तमान समय वैकल्पिक चिकित्साओं के द्वारा अच्छे प्रकार के श्रेष्ठ उपचार होने लगे हैं। वैकल्पिक चिकित्साओं में चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति ने अपने उत्कृष्ठता कायम की है। इस पद्धति से साधारण और असाधारण प्रकार के सभी रोगों में पूरा उपचार हो रहा है तथा बिना दवाइयों के उपचार की चिकित्सा पद्धति हर समय विशेष स्थान रखती है जो एक वरदान सिद्ध हो रही है।
वैकल्पिक चिकित्सा के माध्यम से अब हम आपको आगे के अध्याय में चुम्बकीय चिकित्सा के उद्देश्य तथा चुम्बकीय चिकित्सा का परिचय कार्य व सारांश है तथा इसमें किस प्रकार की सावधानी निर्देशों का पालन करना है।

13.2 उद्देश्य

इस अध्याय में आप सब चुम्बकीय चिकित्सा के उद्देश्यों का अध्ययन करेंगे? इस विषय को पढने के बाद विद्यार्थी यह जान सकेंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा के क्या उद्देश्य हैं :–

1. चुम्बकीय चिकित्सा का उद्देश्य शरीर में रक्त संचार को सुव्यवस्थित करना व विजातीय पदार्थों को बाहर निकालना है इस अध्याय में आप जान सकेंगे।
2. इस अध्याय में आप जान सकेंगे की व्यक्ति की मानसिक सोच को बदलना व सुन्दरता की प्रदान करना , रोगी को अल्प समय में घर बैठे आराम प्रदान करना, शीघ्र अतिशीघ्र लाभकारी चिकित्सा प्रदान करना।
3. इस अध्याय में आप जान सकेंगे की चुम्बकीय चिकित्सा शरीर को अनेक प्रकार की दवाइयों के सेवन के कुप्रभाव से बचाता है।
4. इस अध्याय में आप जान सकेंगे की चुम्बकीय चिकित्सा प्राणशक्ति के प्रवाह की गति तीव्र कर नाड़ियों में कड़ापन ठीक करता है तथा नाड़ियों को लचीला बनाता है।

13.3 चुम्बकीय चिकित्सा का परिचय :–

प्राचीन काल से उपचार की अनेक विधियां चली आ रही है, जैसे तपते लोहे के द्वारा रोगग्रस्त अंगों को सेंकने तपाने व दागने की क्रिया किरणों द्वारा उपचार तथा प्राकृतिक चिकित्सा की तरह चुम्बकीय चिकित्सा भी प्रचलित है।

वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि चुम्बक का प्रभाव सारे विश्व में पाया जाता है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी तथा अनेक ग्रह स्वयं में एक बहुत बड़े चुम्बक हैं तथा अनेक ग्रह इस चुम्बक के द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। पृथ्वी एक बड़ा चुम्बकत्व है। जिसके उत्तरी व दक्षिणी दो ध्रुव होते हैं। जिनके बीच चुम्बक की शक्ति प्रवाहित होती है, प्रत्येक मनुष्य पृथ्वी का निवासी है तथा कोई भी उसके प्रभाव से वंचित नहीं रह सकता है। पृथ्वी और मानव दोनों में चुम्बकीय शक्ति होने के कारण पृथ्वी का स्पर्श ही मानव के रोगों का निवारण तथा शक्ति वर्धक होता है। इसलिये नंगे पैरों से टहलने के लिये कहा जाता है। मनुष्य सृष्टि का एक छोटा प्राणी है। इसमें सृष्टि के तत्त्वों एवं गुणों का समावेश होता है। मानव शरीर के आस–पास चुम्बकीय क्षेत्र होता है। जिसे सूक्ष्म शरीर की संज्ञा देते हैं। मानव विकास अध्यात्मिक, शारीरिक और मानसिक है। चुम्बकीय सूक्ष्म शरीर में निहित होता है। किसी व्यक्ति से चुम्बकीय शक्ति की अधिकता के कारण उसके प्रति आकर्षित हो तथा उसके सम्पर्क में आकर द्वेष भावनाएं लुप्त हो जाती है तथा यह चुम्बक शक्ति का अध्यात्मिक पहलू होता है। चुम्बकीय चिकित्सा का सम्बन्ध शरीर की व्याधि से भी होता है।

13.4 विभिन्न रोगों में उपयोगी चुम्बक चिकित्सा

चुम्बक चिकित्सा विभिन्न रोगों में अनेक प्रकार से उपयोगी है। क्योंकि अपने तरीके से बिना किसी भी दुष्प्रभाव के उपचार करती है तथा यह पूरे दिन में एक बार में 15 मिनट का उपचार सामान्यतः काफी होता है तथा बच्चों पर ये

प्रारम्भ में 5 से 10 मिनट का होता है तथा इसमें किसी भी प्रकार की औषधि का प्रयोग नहीं किया जाता है तथा विभिन्न रोगों में उपयोगी चुम्बक चिकित्सा निम्न प्रकार से है।

1. **रक्तदाब (Blood Pressure)** :–रक्तदाब में रोगी को अत्यधिक तनाव होना, मानसिक पीड़ा, चिन्ता होना तथा किसी बीमारी के परिणामस्वरूप कोलेस्ट्रॉल का बढ़ना, मोटापा, धमनियों में कठोरता होने से रक्त दबाव अधिक इस प्रकार के रोग उच्च दाब व निम्न में दोनों में होते हैं।

चुम्बकीय उपचार :–

1. रक्तदाब को व्यवस्थित करने में इस चिकित्सा पद्धति को सर्वोत्तम माना जाता है तथा यह अपनी अलग उपयोगिता रखती है।
2. किसी प्रकार की बीमारी से कोलेस्ट्रॉल के बढ़ने पर, चुम्बकीय जल को पीना चाहिये।
3. उच्च रक्तदाब में चुम्बकों को सुबह–सुबह हथेलियों पर रखें।

उच्च रक्तदाब की अवस्था में दांये हाथ की कलाई पर निम्न रक्तदाब में बांये हाथ की कलाई पर चुम्बकीय पट्टी पहनाई जाये तो बहुत ही लाभप्रद होगा।

भू–मध्य पर उत्तरी ध्रुव का चुम्बक लगाएं व शवासन कर के अपनी क्रिया करें।

2. **मधुमेह (Diabetes)** :–अत्यधिक मीठे के सेवन, दूध के पदार्थों के अधिक प्रयोग तथा यह इन्सुलिग की कमी के कारण होता है तथा इससे पेशाब में शर्करा की मात्रा बढ़ती है।

मधुमेह में चुम्बक की उपयोगिता :–

1. सर्वप्रथम पैर के तन्तुओं के नीचे चुम्बकों का प्रयोग करें
2. चुम्बक एक दिन में दो बार, प्रातः तथा सायं रखे।
3. चुम्बक द्वारा तैयार पानी 3–4 बार पीये।
4. बांयी हथेली पर मजबूत चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव तथा दांयी हथेली पर उत्तरी ध्रुव लगाये।

3. **अतिसार (Diarrhoea)** :– बार–बार शौच जाना व शौच का पतला होना यह सब होता है। चर्बी व वसा वाले पदार्थों में किसी चीज का अत्यधिक सेवन करने से, कभी अनेक प्रकार की अंग्रेजी दवाईयों से ई–कलाई नाम जीवाणु के संक्रमण से दूषित खाने से, बासी चीजों से व अनेक कारण हो सकते हैं।

चुम्बकीय उपचार :–

1. चुम्बकों का प्रयोग सुबह के समय पैर के तलुओं पर करना चाहिए।
2. शरीर के नाभि पर मजबूत या शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग करें।
3. चुम्बक 15 से 30 मिनट तक दिन में 2–3 बार प्रातः काल व सायं रखे।
4. सिर में भारीपन हो जाने से माथे पर हल्की मालिश करे तथा चुम्बक का प्रयोग कान की कनपटी के दोनों ओर करें। जिससे शारीरिक व मानसिक क्षीणता बढ़े।
5. दिन में तीन बार चुम्बक द्वारा बनाया पानी पीये तथा पानी दक्षिणी ध्रुव द्वारा प्रभावित किया हुआ होना चाहिए।

4. **मोटापा** :–मोटापा कई कारणों से होता है। आराम करने से, आलस्य से, मधुमेह से, उच्चदाब से थायरॉयड ग्रंथि की कम सक्रियता से तथा अन्तस्त्रायी ग्रंथि से हार्मोन्श की गड़बड़ी के कारण।

चुम्बकीय उपचार :–

1. गले के पास थॉयराइड ग्रंथि के दोनों तरफ सेरेमिक चुम्बकों का प्रयोग करें।
2. मोटापा अधिक हो तो चुम्बकों का प्रयोग रोज सुबह शाम 30 से 45 मिनट तक करें।
3. भोजन के बाद आधा गिलास गर्म चुम्बकीय जल का सेवन करें।
4. रोज सुबह हथेलियों पर शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग करें।

5. **साइनस (Sinusitus)** :–नाक की बीमारी तथा ये कफजन्य रोग होता है तथा कभी हड्डी बढ़ जाती है, जिससे अनेक विकार उत्पन्न होते हैं।

चुम्बकीय उपचार :–

1. चुम्बकीय चिकित्सा में प्रभावित अंगों पर सेरेमिक चुम्बकों का प्रयोग।
2. नाक गले, भू–मध्य के ऊपर चुम्बक का प्रयोग करना।
3. नाक के दोनों और मध्यम शक्तिवाले चुम्बक का प्रयोग करें।
4. चुम्बक का प्रयोग प्रति 20 से 30 मिनट तक रखें।
5. जब तक सामान्य लाभ न मिले तब तक इसका उपचार लेते रहें।
6. हाथ की दोनों हथेलियों पर चुम्बक लगायें।

6. **सिरदर्द (Headache)** :–सिरदर्द के अनेक कारण हैं तथा इसमें सिर पर बहुत दर्द होता है, यह आंखों की कमजोरी व अनेक प्रकार के रोगों से होता है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. माथे के ऊपर कम शक्ति वाले चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव में तीन या चार बार प्रयुक्त करें।
2. कनपट्टी के दोनों ओर सेरेमिक चुम्बक का प्रयोग किया जाना चाहिए दांयी ओर उत्तरी ध्रुव रखें (बांयी ओर दक्षिणी ध्रुव)।
3. अगर दर्द सिर के ऊपरी भाग में है तो चोटी पर दक्षिणी ध्रुव रखें।
4. चुम्बकीय जल का सेवन नियमित रूप से करना।
5. सिर दर्द या माइग्रेन यदि पुराना है तो 10 दिनों तक प्रतिदिन 10–10 मिनट चुम्बकीय उपचार लेना अधिक लाभदायक है।

7. **कान का दर्द (Earache) :–** कान की सफाई न होने से व कान के पर्दे फटने आदि।

चुम्बकीय उपचार :– कान पर मध्य शक्ति वाले लौह–चुम्बक का दक्षिण ध्रुव में 2–3 बार लगाना, कान में दक्षिणी ध्रुव का तेल लगाना व चुम्बकीय उपचार 20 से 25 मिनट करना।

8. **दमा (Asthma) :–** श्वांस में कठिनाई फेफड़ों में दर्द, सी.सी.ध्वनि आना आदि।

चुम्बक की उपयोगिता :–

1. छाती के आगे की ओर शक्तिशाली चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव लगाएं तथा पीछे की तरफ शक्तिशाली चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगाएं तथा 30 से 50 मिनट तक करें।
2. दिन में तीन बार से अधिक चुम्बक लगाने चाहिए।
3. चुम्बकीय जल का सेवन भी 4–5 बार किया जा सकता है।
4. चुम्बक के उत्तरी ध्रुव को सीने के बीच वाले भाग पर अकेले लगाएं।

9. **गठिया (Gout) :–**शरीर के जोड़ों में दर्द, खून में यूरिक एसिड का स्तर बढ़कर जोड़ों के अन्दर द्रव्य जमा हो जाते हैं तथा गठिया के अनेक कारण है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. दिन में 3–4 बार उच्च शक्तिशाली चुम्बकों को पैर के अंगूठों के पास लगायें।
2. तलुओं पर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक दांयी ओर और दक्षिणी वाला चुम्बक बांयी ओर लगाएं।
3. चुम्बकीय जल का प्रयोग करें।

4. दर्द वाले स्थान पर उत्तरी ध्रुव का सिद्ध तेल प्रयोग करें।

10. **गर्दन का दर्द (Neckache)** :—अमानक नस का खिंचना, एक तरफ सोना, गर्दन में सूजन आने से एक तरफ झुक जाने आदि से।

उपचार :—दर्द वाले भाग पर शक्तिशाली चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव 3—4 बार प्रयुक्त करें। कलाई के बाहर नब्ज देखने की जगह उत्तरी ध्रुव का चुम्बक लगायें तथा अगर जल्दी आराम न मिले तो चुम्बकीय सर्वाइकल बेल्ट बांहों तथा चुम्बक का उपचार 20 से 30 मिनट तक लें।

11. **घुटने का दर्द (Knee Pain)** :—शरीर में दूषित पदार्थ इकठ्ठे हो जाने से घुटनों की कटोंरियों में दर्द बना रहता है।

चुम्बकीय उपचार :—

1. दर्द वाले स्थानों पर शक्तिशाली चुम्बक लगायें।
2. तेज दर्द वाले स्थान पर दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक लगायें।
3. जब चुम्बकीय उपचार ले तो पैरों की मालिश न करें।
4. दिन में 3—4 बार चुम्बकीय जल पीयें।
5. चुम्बक का उपचार प्रतिदिन 20 से 30 मिनट प्रयोग करें।
6. पैरों की अंगुलियों के मध्य वाले पैरों पर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक लगायें।

अभ्यास प्रश्नः **सत्य/असत्य बताइये**

1. चुम्बक का उपचार किसी भी अंग पर कर सकते है। सत्य /असत्य
2.चुम्बकीय चिकित्सा बहुत मंहगी पडती है। सत्य/असत्य
3.चुम्बक लोहे से बनी सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकृषित करती है।
4. भोजन के बाद आधा गिलास गर्म चुम्बकीय जल का सेवन न करें।

13.5 सारांश :—

चुम्बकीय चिकित्सा के बारे में अध्ययन करने के बाद आप समझ चुके होंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा क्या है तथा कैसे इसका उपयोग किया जाता है।

आज के परिवेश में वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति द्वारा सभी रोगों का उपचार सम्भव है तथा वर्तमान में चिकित्सा सुविधा के क्षेत्र में हो रही प्रतियोगिता के दौर में चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान है तथा यह पद्धति पुरातन समय से चली आ रही है। यह चिकित्सा कम खर्चीली एवं सर्व सुलभ होने से जनसाधारण में लोकप्रिय बनती जा रही है। यही कारण रहा है कि संसार के अनेक देशों में भी इस पद्धति को अपनाया गया है। चुम्बक चिकित्सा मुख्यतः भारतीय चिकित्सा पद्धति है। पूर्वकाल में चुम्बक के आकर्षण वाले गुण की विशेषता के कारण इसे द्रवीय शक्ति माना जाता था।

इस प्रकार से प्रकृति प्रदत्त चुम्बकों द्वारा शारीरिक एवं मानसिक उपचार सम्भव है। इस चिकित्सा के उपचार से रोग ही ठीक होते हैं बल्कि साथ–साथ रक्त में मौजूद विजातीय द्रव्य दूर होते हैं, जो असाध्य रोगों का नाश करते हैं तथा चुम्बक चिकित्सा द्वारा मानव शरीर बिना दवा कम समय, एवं कम खर्च में उपचार किया जा सकता है। इसलिए चुम्बकीय चिकित्सा का अपना अलग महत्व है।

13.6 शब्दावली

सुव्यवस्थित	–	क्रमबद्ध तरीके से करना
सशक्त	–	मजबूत
नब्ज	–	नाड़ियां
भ्रू–मध्य	–	बीच का भाग (मस्तिष्क)

13.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.सत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.असत्य

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिवेदी डॉ.पीयूष, चुम्बकीय चिकित्सा पापुलर बुक डिपो, जयपुर (भारत) प्रथम संस्करण 2006
2. नौटियाल डॉ. विनोद प्रसाद, योग और वैकल्पिक चिकित्सा, किताब महल, 22 सरोजिनी मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012 पृ.सं.17–38
3. सुश्री डॉ.राजकुमार प्रभाव पेपर वैंक्स 4/19 आसफ अली रोड़, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2005 पृ.सं.66–70
4. शर्मा डॉ.एस.शर्मा डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.नई दिल्ली

13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र 0 चुम्बकीय चिकित्सा क्या है चुम्बक के गुणों को समझाइयें।

प्र0 विभिन्न रोगों मे चुम्बकीय चिकित्सा का क्या महत्व है। विस्तार से समझाइयें।

इकाई 14- चुम्बकीय चिकित्सा की सीमाएं एवं सावधानियां

14.1 प्रस्तावना

14.2 उददेश्य

14.3 चुम्बकीय चिकित्सा की सीमाएं एवं सावधानियां

14.4 प्रस्तावना

14.4 प्रस्तावना

14.5 प्रस्तावना

14.6 प्रस्तावना

14.1.प्रस्तावना :—

चुम्बकीय चिकित्सा वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत आती है। चुम्बकीय चिकित्सा विभिन्न प्रकार के विकारों को दूर करने में सहयोगी है। चुम्बक चिकित्सा प्रत्येक प्राणी के लिए प्रकृति का दिया हुआ अमूल्य द्रव्य है। चुम्बकीय चिकित्सा वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा की एक इकाई है। इस चिकित्सा का कभी भी कोई दुष्प्रभाव नहीं देखा गया है। आज विश्व भर में इतनी महामारी फैल चुकी है कि प्रत्येक मनुष्य रोगग्रस्त होता जा रहा है तथा अपने वातावरण को असन्तुलित करता जा रहा है। वातावरण के साथ–साथ अपने–आप को भी अनदेखा कर रहा है तथा अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है तथा अनेक प्रकार की दवाइयों को उपयोग में ला रहा है।
आज मानव शरीर को आवश्यकता है – प्रकृति की ओर जाने की, प्राकृतिक नियमों का पालन करने वाली पद्धतियों को अपनाने की। इस विषय को ध्यान में रखते हुए आज का युग वैकल्पिक चिकित्साओं का युग कहलाने लगा है तथा इन्हें वैकल्पिक चिकितओं द्वारा श्रेष्ठ उपचार होने लगे हैं। वैकल्पिक चिकित्साओं में चुम्बन चिकित्सा ने अपने श्रेष्ठता कायम की है तथा इससे साध्य–असाध्य, सभी रोगों का पूर्ण उपचार हो रहा है दवाइयों का उपयोग नहीं करने वाली चिकित्सा पद्धति में चुबक चिकित्सा पद्धति अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है एवं वरदान सिद्ध हो रही है। अब हम आपको चुम्बकीय चिकित्सा के उद्देश्य, परिचय तथा इसके सम्बन्ध में अन्य जानकारी देंगे।

14.2 उद्देश्य :—

प्रिय विद्यार्थियों इस विषय को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा के उद्देश्य क्या हैं।

1. चुम्बकीय चिकित्सा का उद्देश्य शरीर में रक्तसंचार को सुव्यवस्थित तथा विजातीय पदार्थों को बाहर निकालना है।
2. इस अध्याय में आप जान सकेंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा का उद्देश्य अल्प समय में रोंगों का उपचार करना है।
3. इस अध्याय में आप जान सकेंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा का उद्देश्य रोगों का उपचार करते समय किसी भी प्रकार का कष्ट न दें कर उसका साधारणतया उपचार करना है।
4. चुम्बकीय चिकित्सा का उद्देश्य है कि यह चिकित्सा हम किसी भी आयु में व्यक्ति को दे सकते हैं इसकी आयु की कोई सीमा नहीं है। इस अध्याय में आप यह जान पाएंगे।
5. इस अध्याय में आप जान सकेंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा कि सीमाएं एवं सावधानियां है।

14.3 चुम्बकीय चिकित्सा की सीमाएं एवं सावधानियां :—

चुम्बकीय चिकित्सा की सीमाएं :—

चुम्बकीय चिकित्सा की सीमाएं निम्नलिखित है :—

1. हृदय में मेसमेकर अथवा डीफाइब्रीलेटर लगा हो तो चुम्बकीय उपचार से पूरी तरह परहेज करें।

2. गर्भवती स्त्रियों को भी चुम्बक चिकित्सा से सर्वदा दूर रहना चाहिये। प्रसव के दो माह बाद ही इनका प्रयोग करें।
3. यदि चुम्बकीय धातु से एलर्जी हो, तो उस पर अति आवेशित प्लास्टिक का खोल चढ़ा दें।
4. हृदय, आंखों, मस्तिष्क जैसे नोशल अवयवों ने उपचार हेतु शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग न करें।
5. छोटे बच्चे का शरीर के महत्वपूर्ण तथा कोमल अंगों के तुरन्त ऑपरेशन की अवधि में चुम्बक के प्रयोग से बचना चाहिए। यदि रोगी के शरीर में कोई स्टैण्ड डाला गया हो, तो वहां पर भी प्रयोग न करें। क्योंकि वह चुम्बकीय क्षेत्र से प्रभावित होकर नुकसान कर सकता है।
6. माहवारी, अतिरजस्वला स्त्री, अत्यन्त कुपोषण जनित रोग में शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग न करें।
7. सामान्य नियमानुसार चुम्बकों का स्थानिक तथा सार्वदैहिक प्रयोग 10 से 30 मिनट तक ही करना चाहिए।
8. छोटे बच्चों पर प्रयोग करते समय बच्चे को गोद में बैठना चाहिए।

सावधानियां :—

चुम्बकीय चिकित्सा की सावधानियां निम्नलिखित हैं :—

1. चुम्बकीय चिकित्सा सुबह जलपान से पूर्व अथवा स्नान के बाद करनी चाहिए। सुबह उपचार न कर सकने पर शाम को करें। विशेष कष्ट की अवस्था में दोनों समय उपचार करें। चुम्बकीय उपचार के बाद एक घण्टे तक स्नान न करें।
2. चुम्बक के उपचार से रक्त संवहन एवं परिसंचरण में वृद्धि होती है। इसलिए उपचार के बाद कम से कम आधा घण्टे तक कोई शीतल या उष्ण जल न पिये।
3. भोजन के तुरन्त बाद शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग न करें। इससे चक्कर या उल्टी आ सकती है। भोजन के एक घण्टे बाद चुम्बकीय उपचार ले सकते हैं।
4. चुम्बक को घड़ी कैसेट या अन्य विद्युत यंत्रों के पास नहीं रखना चाहिए क्योंकि इससे वस्तुएं बिगड़ सकती है।
5. इसका बहुत देर तक प्रयोग करने से मरीज को चक्कर आ सकता है तथा सिर में भारीपन आंखों में पानी, तलवों एवं हथेलियों में जलन आदि हो तो चुम्बक तुरन्त हटा लेना चाहिए।
6. हाथों पर चुम्बक का प्रयोग करते समय सोने—चांदी, आदि के गहनों ने अतिरिक्त लकड़ी, लोहे के गहने नहीं होने चाहिए।
7. शक्तिशाली चुम्बकों के दो विपरीत ध्रुवों को निकट नहीं लाना चाहिए क्योंकि इसमें अंगुलियों के दबने का भय रहता है।
8. चुम्बकों का प्रयोग करने से पहले रोगी को सुविधापूर्वक किसी कुर्सी या सोफे पर बैठना चाहिए। जमीन पर बैठकर यह चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि रोगी और धरती के मध्य एक पृथक्कारी कुचालक वस्तु ना होना आवश्यक है।
9. सार्वदैहिक प्रयोग के दौरान ऐसा नियम नहीं है कि रोगी विशेष दिशा की ओर मुंह करके बैठे किन्तु स्थानिक प्रयोग की दशा में दिशा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

10. किसी प्रभावित भाग पर दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक लगाना है तो रोगी का मुंह उत्तर दिशा की ओर तथा उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक लगाना है तो रोगी का मुंह दक्षिण की ओर रहना चाहिए।
11. यदि चुम्बक गर्दन के पीछे या बैठे–बैठे पीठ में लगाना है तो रोगी कामुंह उत्तर दिशा की ओर रहना चाहिए। रोगी को उत्तर ध्रुव वाला चुम्बक लगाना है तो मुंह उत्तर की ओर तथा दक्षिण ध्रुव वाला लगाना हो, तो मुंह दक्षिण की ओर रखना चाहिए।
12. चुम्बकीय उपचार लकड़ी पर बैठकर करना चाहिए। उपचार के समय लोहे या जमीन पर स्पर्श न करें। सदैव श्रेष्ठ चुम्बक का प्रयोग करना चाहिए।
13. चर्म विकारों का उपचार करते समय चुम्बकों को त्वचा के ऊपर हल्का कपड़ा रखकर कपड़े के ऊपर चुम्बक रखना चाहिए। लौह–चुम्बक को जमीन पर नहीं लकड़ी के पट्‌टे में रखना चाहिए।
14. शरीर के जिस भाग पर उपचार करना हो, उसे पसीना रहित करना चाहिए अर्थात यदि शरीर में पसीना हो, तो चुम्बक का प्रयोग न करें।
15. पेट भरा होने पर चुम्बक का उपचार न लें। यदि पेट खाली हो तो प्रयोग करें। चुम्बकों को पानी का स्पर्श न होने दें। होम्योपैथी की दवाओं को चुम्बक से दूर रखें वरना दवा की शक्ति में अंतर आ सकता है।
16. चुम्बकीय बिस्तर का उपयोग 08 घंटे से ज्यादा समय तक न करें। भोजन के बाद करीब 60 मिनट तक पेट पर चुम्बक न लगाएं। शुरूआती उपचार पाचन क्रिया में बाधा भी पहुंचा सकता है। चुम्बकीय यंत्र अन्य धातुओं से भी चिपकता है। इसलिए घायल होने की संभावना बनी रहती है।
17. चुम्बक का प्रयोग मुख्यतः इस प्रकार करते हैं – स्थानिक प्रयोग में रोगी के पैर जमीन या दीवार पर नहीं लगने चाहिए बल्कि लकड़ी के तश्त पर रखने चाहिए। पीठ के सहारे लेटकर चुम्बक लगाते समय गर्दन की कशेरूका संधि के प्रवाह या कमर दर्द में कभी–कभी सुविधाजनक लगता है। स्थानिक प्रयोग करते समय किसी व्यक्ति की सहायता लेनी हो, तो उसको भी लकड़ी के तख्ते या प्लास्टिक के गत्ते के ऊपर खड़ा होना चाहिए।
18. छोटे बच्चों पर प्रयोग करते समय बच्चे को गोद में बैठना चाहिए तथा अपने पैरों को किसी पृथक्कारी वस्तु के ऊपर रखना चाहिए।
19. सामान्य नियमानुसार चुम्बकों का स्थानीय अथवा सार्वदैहिक प्रयोग 10–30 मिनट तक पर्याप्त रहता है। किसी भी रोग के लिए 24 घण्टे में 2 बार चुम्बक का प्रयोग ठीक रहता है। आपातकालीन स्थिति में 2–3 बार से अधिक भी किया जा सकता है।
20. चुम्बक को धरती पर गिरने से बचाएं क्योंकि धरती पर गिरने से चुम्बक की शक्ति कम हो जाती है। चुम्बक को कभी लोहे की वस्तुओं पर न रखें।

अभ्यास प्रश्नः

सत्य/असत्य बताइये

1.चुम्बक चिकित्सा का सम्बन्ध शरीर की व्याधी से है।
2.शक्तिशाली चुम्बक बनाने के लिए बिजली का सहारा लेना पडता है।
3. हदय ऑखों मस्तिष्क जैसे कोमल स्थान के लिए शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग करें।
4. छोटे बच्चों पर प्रयोग करले समय बच्चे को गोद मे बैठाना चाहिए।

14.5 सारांश :–

चुम्बकीय चिकित्सा के विषय में पढ़ने के बाद आप समझ ही चुके होंगे कि चुम्बकीय चिकित्सा क्या है तथा किस प्रकार से यह रोगों का उपचार करने में सहायक है। चुम्बकीय चिकित्सा का उपयोग शारीरिक व मनोवैज्ञानिक बीमारियों की जांच एवं उपचार के लिए किया जा सकता है। चुम्बक चिकित्सा मुख्यतः भारतीय चिकित्सा पद्धति है। पूर्वकाल में चुम्बक के आकर्षण वाले गुण की विशेषता के कारण इसे दैवीय शक्ति माना जाता था। वास्तव में चुम्बक चिकित्सा पद्धति को अपनाना मानव हित में है। चुम्बक चिकित्सा द्वारा मानव शरीर का बिना दवा कम समय एवं कम खर्च में उपचार किया जा सकता है। वर्तमान में चिकित्सा सुविधा के क्षेत्र में हो रही प्रतिस्पर्धा के दौर में चुम्बकीय चिकित्सा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह चिकित्सा पद्धति प्राचीनकाल से चली आ रही है। यह चिकित्सा सस्ती तथा सुलभ होने के कारण लोगों की लोकप्रिय बनती जा रही है। यही कारण है कि विश्व के अनेक देशों में भी इस पद्धति को अपनाया गया है। चुम्बक चिकित्सा वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा का ही एक भाग है। जिसका कोई भी दुष्प्रभाव आज तक नहीं देखा गया है।

14.6 शब्दावली :–

1.	सुव्यवस्थित	– क्रमबद्ध करना या क्रमबद्ध तरीका
2.	सशक्त	– मजबूत
3.	भूमध्य	– बीच वाला भाग
4.	अक्ष	– किसी गोल घूमती हुई वस्तु के बीचों–बीच से गुजरती एक कल्पनीय रेखा।

14.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.सत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.असत्य

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. त्रिवेदी, डॉ.पीयूष, चुम्बकीय चिकित्सा, रायुल बुक डिपो, जयपुर भारत, प्रथम संस्करण 2006
2. नौटियाल, डॉ.विनोद प्रसाद, योग और वैकल्पिक चिकित्सा किताब महल, 22 सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012
3. प्रुथी, डॉ.राजकुमार, प्रभात पेपरलेन्स, 4/19 आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, संस्करण 2005

14.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र 0 चुम्बकीय चिकित्सा क्या है इसकी उपयोगिता को समझाइये।
प्र0 चुम्बकीय चिकित्सा की सीमाऐं एंव सावधानियॉ को विस्तार से समझाइऐ।

इकाई – 15 यज्ञ चिकित्सा की अवधारणा, प्रकार व विधि

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 यज्ञ – भूमिका
15.3.1 यज्ञ का अर्थ
15.3.2 यज्ञ का स्वरूप
15.4 यज्ञोपचार की स्वास्थ्य संरक्षण प्रक्रिया
15.5 यज्ञ के प्रकार
15.5.1 श्रौतयज्ञ
15.5.2 स्मार्त यज्ञ
15.5.3 पौराणिक यज्ञ
15.6 पंच महायज्ञ का स्वरूप
15.6.1 ब्रह्मयज्ञ
15.6.2 देव यज्ञ
15.6.3 पितृ यज्ञ
15.6.4 नृ यज्ञ
15.6.5 भूत बलि या वैश्वदेव–यज्ञ
15.7 यज्ञ चिकित्सा की वैदिक विधि
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
15.12 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना –

इस समग्र सृष्टि के क्रियाकलाप 'यज्ञ' रूपी धुरी के चारों ओर ही चल रहे हैं। ऋषियों ने **"अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः"** कहकर यज्ञ को भुवन की, इस जगती की सृष्टि का आधार बिन्दु कहा है। स्वयं गीताकार योगिराज श्रीकृष्ण ने कहा है– **सह यज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।** अर्थात् तुम लोग इस यज्ञ कर्म के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ। यज्ञ भारतीय संस्कृति के मनीषी ऋषिगणों द्वारा सारी बसुन्धरा को दी गयी ऐसी महत्वपूर्ण

देन है, जिसे सर्वाधिक फलदायी एवं समग्र पर्यावरण केन्द्र इको सिस्टम के ठीक बने रहने का आधार माना जा सकता है।

यज्ञ शब्द के अर्थ को समझाते हुए ऋषियों ने कहा है – समग्र जीवन को यज्ञमय बना लेने को ही वास्तविक यज्ञ है। **''यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः''** के गीता वाक्य के अनुसार वे लिखते हैं कि यज्ञीय जीवन जीकर किये गये कर्मों वाला जीवन ही श्रेष्टतम जीवन है। इसके अलावा किये गये सभी कर्म बंधन का कारण बनते हैं व जीवात्मा की परमात्म सत्ता से एकाकार होने की प्रक्रिया में बाधक सिद्ध होते हैं। यज्ञीय जीवन से आशय है – परिष्कृत देवोपम व्यक्तित्व।

यज्ञ परमार्थ प्रयोजन के लिए किया गया एक उच्चस्तरीय पुरुषार्थ है। अन्तर्जगत में दिव्यता का समावेश कर प्राण की अपान में और अपान की प्राण में आहुति देकर जीवन रूपी समिधा को समाज रूपी यज्ञ में होम करना ही वास्तविक यज्ञ है। भावनाओं में यदि सत्प्रवृत्ति का समावेश होता चला जाय तो यही वास्तविक यज्ञ है। ऋषियों ने यज्ञ की ऐसी विलक्षण परिभाषा कर वैदिक वाड्ंगमय के मूलभूत स्वर को ही गुंजायमान किया है।

प्रस्तुत इकाई में आप यज्ञ के अर्थ एवं वृहद् स्वरूप के साथ यज्ञ के विभिन्न प्रकारों का सोदाहरण ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे। साथ ही यज्ञीय विधाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे कि वैदिक मंत्रों द्वारा यज्ञ करके विभिन्न शारीरिक व मानसिक रोगों की चिकित्सा कैसे की जा सकती है। यज्ञ हमारी संस्कृति का आराध्य इष्ट रहा है तथा यज्ञ के बिना हमारे किसी दैनन्दिन् क्रिया–कलाप की कल्पना नहीं की जा सकती। ऋषियों ने यज्ञ का विज्ञान पक्ष समझाते हुए बताया है। कि सारी सृष्टि की सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए यज्ञ प्रक्रिया कितनी महत्वपूर्ण है। देव तत्वों की तुष्टि से अर्थ है – सृष्टि संतुलन बनाये रखने वाली शक्तियों का पारस्परिक संतुलन। यज्ञ मात्र समस्त कामनाओं की पूर्ति का ही मार्ग नहीं है। ''यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्'' अपितु जीवन जीने की एक श्रेष्ठतम विज्ञानसम्मत पद्धति है। यह जानने समझने के बाद किसी भी प्रकार का संशय किसी के मन में भारतीय संस्कृति की अनादि काल से मेरुदण्ड रही इस यज्ञीय व्यवस्था के प्रति नहीं रह जाता।

15.2 उद्देश्य :–

1. यज्ञ का अर्थ व उसके स्वरूप की जानकारी प्राप्त करेंगे।
2. यज्ञ के प्रकार के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगे।
3. यज्ञ चिकित्सा के प्रकार की जानकारी प्राप्त करेंगे।
4. यज्ञोपैथी के सूक्ष्म विधि विज्ञान का अध्ययन करेंगे।
5. असाध्य रोगों को दूर करने के लिए यज्ञोपैथी के प्रकार की जानकारी प्राप्त करेंगे।
6. विभिन्न शारीरिक व मानसिक रोगों के लिए विशेष हवन प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे।

15.3 यज्ञ – भूमिका

यह सृष्टि पंचभौतिक अथवा पंचमहाभूत तत्वों से बना है। सृष्टि की चेतना जिस ऊर्जा के माध्यम से गतिशील रहती है वह है 'शब्द'। जबकि पदार्थ जगत की क्रियाशीलता के पीछे जिस ऊर्जा का उपयोग होता है वह है ताप। अर्थात् सूर्यताप समस्त सृष्टि का जीवन चक्र है एवं धरती का सौभाग्य है। इसी संदर्भ में 'यज्ञ' इस धरती का लघु सूर्य कहा जा सकता है,क्योंकि यज्ञ की अग्नि सामान्य अग्नि से बहुत पवित्र एवं शुद्ध होती है। यज्ञाग्नि से मनुष्य

एवं प्रकृति दोनों के संताप मिटते हैं। जबकि सामान्य अग्नि में यह गुण नहीं होता। इसीलिए प्राचीन काल से ऋषियों ने यज्ञ को अपने दिनचर्या का अभिन्न अंग बना लिया था। यज्ञ को सर्वदाता कहा गया है। इसके द्वारा इच्छित फल प्राप्त किया जा सकता है।

पर्व त्यौहार, उत्सव एवं संस्कारों में तथा मंगलकारी कार्यों में यज्ञ करवाना आज भी श्रेष्ठ इसलिए माना जाता है क्योंकि यह शुभ कर्म होता है तथा इससे वातावरण दिव्य बनता है एवं इसकी सुगंध कई–कई घण्टों तक बनी रहती है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी इसकी उपादेयता तनिक भी कम नहीं हुई है। बल्कि नये–नये रोगों में एवं प्रदूषण ने इसके अस्तित्व को और अधिक मजबूत आधार तैयार किया है। जिसे श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने यज्ञाग्नि को उपचार का माध्यम बनाकर यज्ञोपैथी की आवश्यकता पर बल दिया है। यज्ञोपैथी से मात्र प्राणी ही रोगमुक्त नहीं होते अपितु अन्य महाभूतों जैसे वायु, पृथ्वी, जल और आकाश भी पवित्र एवं शुद्ध होजाते हैं। इस प्रकार यज्ञ सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र को सन्तुलित एवं प्रदूषण मुक्त बनाए रखने में अहं भूमिका निभाता है।

15.3.1 यज्ञ का अर्थ :– 'यज्ञ' का भावार्थ–परमार्थ एवं उदार–कृत्य है। 'यज्ञ' शब्द पाणिनीसूत्र **''यजयाचयतविच उप्रक्वरक्षो नङ्''** में नङ् प्रत्यय लगाने पर बनता है अर्थात् यज्ञ शब्द 'यज्' धातु से बना है, यज् धातु के तीन अर्थ हैं– **देवपूजन, दान और संगतिकरण।** इस प्रकार हवि या हवन के द्वारा देवताओं का पूजन का नाम 'यज्ञ' है। ईश्वरीय दिव्य शक्तियों की आराधना, उपासना, उनकी समीपता, संगति तथा अपनी समझी जाने वाली वस्तुओं को उनको अर्पण करना, यह यज्ञ की प्रक्रिया है। देवगुण सम्पन्न सत्पुरुषों की सेवा एवं संगति करना तथा उन्हें सहयोग देना भी यज्ञ है। व्यावहारिक अर्थ में इसे यों भी कह सकते हैं कि बड़ों का सम्मान, बराबर वालों से संगति, मैत्री तथा अपने से छोटों को, कम शक्ति वालों को दान या सहायता करना यज्ञ है। इस प्रकार ईश्वर उपासना, सत् तत्व का अभिवर्द्धन एवं पारस्परिक सहयोग भी यज्ञ माने जाते हैं। यों हवन के अर्थ में यज्ञ शब्द का प्रयोग तो प्रसिद्ध ही है। हवन द्वारा उपर्युक्त तीनों प्रयोजन पूर्ण होते हैं।

देवानां द्रव्यं हविषां ऋक् सामप यजुशांतथा।
ऋत्वजां दक्षिणानां च संयोगी यज्ञ उच्चतेमत्स्य पुराण।

देवों का हवि प्रदान, वेद मंत्रों का उच्चारण, ऋत्विजों को दक्षिणा–इन तीनों कार्यों का संयोग यज्ञ कहलाता है।

इज्यंते चत्वारो वेदाः सांगः सरहस्याः सच्छिश्येभ्यः संप्रदीयंते,
उपदिष्ययन्तेद्ध सदाचार्य्यैयेन वा सा यज्ञः।

विद्वान आचार्यों द्वारा सत्पात्र शिष्यों को अंग–उपांगों सहित वेदों का पढ़ाना यज्ञ है।

येन सदनुष्ठानेन इंद्राणि देवाः सुप्रसन्नाः सुवर्षश्टं कुर्यस्तत् पदाभियोम्।

जिस कार्य से इंद्रादि देव प्रसन्न होकर उत्तम वर्षा करें उसे यज्ञ कहते हैं।

येन सदनुष्ठानेन स्वर्गादि प्राप्तिः सुलभाः स्यात् तत् यज्ञ पदाभियोम्।

जिस अयोजन द्वारा स्वर्ग आदि सद्गति को प्राप्त करना सुलभ हो वह यज्ञ है।

येन सदनुष्ठानेन आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक तापत्रायोन्मूलनंसुकरं स्यात्
तत यज्ञ पदाभियोम्।

जिस सद् अनुष्ठान द्वारा आध्यात्मिक, आधिभौतिक तीनों प्रकार के कष्टों का निवारण हो वह यज्ञ कहा जाता है।

संगतिकरण यजनं धर्म देश जाति मर्यादा रक्षायै महापुरुषाणा मेकीकरणं यज्ञः।

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों को धर्म, देश, जाति की मर्यादा की रक्षा के लिए संगठित एवं एकत्रित करना यज्ञ है।

इज्यन्ते संगतिक्रियन्ते विष्व कल्याणाा महात्तो विद्वांसः वैदिक शिरामण्यः निमंत्रयंते अस्मित्रिति यज्ञः।

जहाँ विश्व कल्याण के लिए श्रेष्ठ, विद्वान, वेदज्ञ पुरुषों को आमंत्रित एवं एकत्रित किया जाता है वह यज्ञ है।

इज्यन्ते स्वकीय वंधुवावांधवदयः प्रेम सम्मान भ्ज्ञाजः संगति करण्याय आहूयंते प्राथ्यते च येन कर्मणेति यज्ञः।

जिस आयोजन में बंधु–बांधवों, स्नेह–सम्बन्धियों को पारस्परिक संगठन के लिए प्रेम एवं सम्मान के साथ एकत्रित किया जाता है वह यज्ञ है।

दानयजनं यथा शक्ति काल पात्रादि विचार पुरस्पर द्रव्यादि त्याग। अर्थात् देश काल पात्र का विचार करके सुद्देश्य के लिए जो धन दिया जाता है उसे यज्ञ कहते हैं।

इज्यन्ते भगवति सर्वस्वं येन वाय यज्ञः

भगवान को आत्मसमर्पण करने की क्रिया यज्ञ है।

ऋषियों ने यज्ञ को इस संसार चक्र का धुरी कहा है।

''यज्ञो वै विष्वस्य भुवनस्य नाभिः।'' (ऋग्वेद)

गीता में भगवान कृष्ण ने यज्ञ को मनुष्य का जुड़वा भाई कहा है।

'सहयज्ञाः प्रजा सृष्टा पुरोवाचः प्रजापतिः। (गीता 3/10)

देवपूजन – लोक व्यवहार में उसे सेवा कहते हैं। देव पूजन अर्थात् देवप्रवृत्तियों की अभ्यर्थना, आराधना। इसके कलए सेवा का मार्ग अपनाना होता है। समाज में देवत्व बढ़े–स्वर्गीय परिस्थितियों का निर्माण हो यह सेवा अवलम्बन द्वारा ही सम्भव है। सेवा अर्थात् अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को पीड़ा एवं पतन में नियोजित करना। यह मनुष्यता का मेरूदण्ड है। करुण हृदय भाव दूसरों की पीड़ा को देखकर द्रवित ही नहीं हो उठता वरन् कुछ ठोस कदम उठाने के लिए प्रेरित भी करता है।देवता की पूजा इसी रूप में हो सकती है। अन्तः की करुणा उभरकर बाहर आ जाय–सहयोग करने के लिए हृदय मचलने लगे यही है देवत्व और देव पूजन का लक्ष्य। देव प्रवृत्तियों के संरक्षण, प्रचलन एवं परिवर्धन की आपूर्ति सेवा मार्ग के अवलम्बन से होता है। अभावग्रस्तों–पीड़ितों को राहत मिलती और समाज में सत्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं।

दान – यज्ञ का तात्पर्य है–त्याग, बलिदान, शुभकर्म। अपने प्रिय खाद्य पदार्थों एवं मूल्यवान सुगन्धित पौष्टिक द्रव्यों को अग्नि एवं वायु के माध्यम से समस्त संसार के कल्याण के लिए यज्ञ द्वारा वितरित किया जाता है। वायु शोधन से सबको आरोग्यवर्धक सांस लेने का अवसर मिलता है। हवन हुए पदार्थ वायुभूत होकर प्राणी मात्र को प्राप्त होते हैं और उनके स्वास्थ्यवर्धन, रोग निवारण में सहायक होते हैं। यज्ञकाल में उच्चरित वेद मंत्रों की पुनीत शब्द ध्वनि आकाश में व्याप्त होकर लोगों के अन्तःकरण को सात्विक एवं शुद्ध बनाती है। इस प्रकार थोड़े ही खर्च एवं प्रयत्न से यज्ञकर्त्ताओं द्वारा संसार की बड़ी सेवा बन पड़ती है।

वैयक्तिक उन्नति और सामाजिक प्रगति का सारा आधार सहकारिता, त्याग, परोपकार आदि प्रवृत्तियों पर निर्भर है। यदि माता अपने रक्त–मांस में से एक भाग नये शिशु का निर्माण करने के लिए न त्यागे, प्रसव की वेदना न सहे, अपना शरीर निचोड़कर उसे दूध न

पिलाए, पालन–पोषण मं कष्ट न उठाए और यह सब कुछ नितान्त निःस्वार्थ भाव से न करे, तो फिर मनुष्य का जीवन धारण कर सकना भी सम्भव न हो। इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य का जन्म यज्ञ भावना के द्वारा या उसके कारण ही सम्भव होता है।

प्रकृति का स्वभाव यज्ञ परम्परा के अनुरूप है। समुद्र बादलों को उदारतापूर्वक जल देता है, बादल एक स्थान से दूसरे स्थान तक उसे ढोकर ले जाने और बरसाने का श्रम वहन करते हैं। नदी, नाले प्रवाहित होकर भूमि को सिंचते और प्राणियों की प्यास बुझाते हैं। वृक्ष एवं वनस्पत्तियाँ अपने अस्तित्व का लाभ दूसरों को ही देते है। पुष्प और फल दूसरे के लिए ही जीते हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु आदि की क्रियाशीलता उनके अपने लाभ के लिए नहीं वरन् समस्त शरीर के लाभ के लिए ही अनवरत गति से कार्यरत रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टिक्रम यज्ञ वृत्ति पर ही अवलम्बित है। यदि इसे हटा दिया जाए, तो सारी सुन्दरता, कुरूपता में और सारी प्रगति, विनाश में परिणत हो जायेगी। ऋषियों ने कहा है–यज्ञ ही इस संसार चक्र की धुरा है। धुरा टूट जाने पर गाड़ी का आगे बढ़ सकना कठिन है।

संगतिकरण – संगतिकरण से अभिप्राय है एक रू‍ कर लेना। समान बन जाना। आकृति एवं प्रकृति में एकरूपता स्थापित हो जाना। यज्ञ संगतिकरण की प्रेरणा देता है। ईश्वर के प्रतीक स्वरू‍ विश्व से तादात्म्य स्थापित कर सबमें उसका दर्शन कर एक रू‍ हो जाना। अपनी चेतना को विश्व चेतना में विलीन कर देना। लकड़ी अग्नि के सम्पर्क में आकर उसी का रू‍ ग्रहण कर लेती है। सामान्य नदी नाले भी गंगा में मिलकर गंगाजल बना जाते हैं। ईश्वर श्रेष्ठ एवं दिव्यताओं से ओत–प्रोत है। उसकी संगति व्यक्तित्व में इन्हीं विशेषताओं के रूप में परिलक्षित होनी चाहिए। संगतिकरण सम्पूर्ण प्रकृति में आमूल–चूल परिवर्तन कर देता है। आकृति भी बदल जाती है। विश्व चेतना–विश्वमानव के साथ संगतिकरण अन्तः की उदात्तता एवं महानता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। विश्व चेतना के साथ तादात्म्य **'आत्मवत् सर्वभूतेषु वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना के रूप में प्रकट होती है।

सामान्यतया मनुष्य का संगतिकरण पदार्थों से होता है। फलतः पदार्थों के जड़ संस्कार को ही ग्रहण करता है। यज्ञ अपनी सत्ता से चेतना का विश्व चेतना के साथ संगतिकरण करने की प्रेरणा देता है। अपनी सत्ता–सत्ता के रूप में सभी प्राणियों में विद्यमान है। उसको परम सत्ता से प्राणी साथ में समायी चेतना के साथ सम्पर्क जोड़ा जा सके–एकरूपता बन सकें तो विश्व चेतना की विशेषताओं एवं विभूतियों से सम्पन्न बना जा सकता है। यज्ञ उसी की प्रेरणा देता है।

संगतिकरण की फलश्रुति है–मानव मात्र–प्राणिमात्र में अपनी ही सत्ता की अनुभूति करना। यही है वह मानवी आधार जिसकी भाव–अभिप्रेरणा द्वारा मनुष्य उदात्त बन जाता है। जब सब में अपनी ही सत्ता विद्यमान है तो अपने पराये का भेद कैसा ? प्रत्येक के दुःख अपने जैसे लगने लगेंगे। मनुष्य को समाज के समष्टि की प्रगति में ही अपनी उन्नति दिखाई देगी। संकीर्णताओं की बन्धन कट जाते हैं। परमार्थ में मनुष्य मात्र के कल्याण में ही सुख की अनुभूति होती है। संगतिकरण का सिद्धान्त विश्व बन्धुत्व की –वसुधैव कुटुम्बकम् के सपने को साकार करने में सशक्त भूमिका सम्पादित कर सकता है।

15.3.2 यज्ञ का स्वरूप :– यज्ञ का वास्तविक स्वरूप बतलाते हुए आचार्य श्रीराम शर्मा स्वष्ट करते हैं कि ''अध्यात्म और विज्ञान का प्रत्यक्ष माध्यम यज्ञ है। आत्मसंयम की

तपश्चर्या और भावनात्मक केंन्द्रीकरण की योग–साधना का समन्वय ब्रह्मविद्या कहलाता है। उसे अध्यात्म विज्ञान का भावपक्ष कह सकते हैं। द्वितीय क्रिया पक्ष यज्ञ है।''

'यज्ञ विश्व बह्माण्ड' की नाभि है– इसका तात्पर्य है कि ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म तत्वों का पोषण एवं विकास यज्ञ से ही सम्भव है। इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए आचार्य शर्मा का विवेचन है कि मनुष्य अनेक सूक्ष्म तत्त्वों को ब्रह्माण्ड से निरन्तर ग्रहण करता है, अतः मनुष्य का भी कर्त्तव्य है कि वह भी ब्रह्माण्ड का यह ऋण चुकाए। यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि 'यज्ञ समष्टि जगत का पालनकर्ता है, क्योंकि यज्ञ का संबंध ब्रह्माण्ड से है। अतः ब्रह्माण्ड की दिव्यशक्तियों का अभ्युदय यज्ञ से ही संभव है।

वस्तुतः अग्नि 'यज्ञ' का उपचार स्वरूप है, परन्तु वह अध्यात्म अर्थात् चेतन जगत का अत्यन्त प्रभाव शाली ऊर्जा केंद्र भी है। यज्ञ से ही व्यक्ति सूक्ष्म जगत से सम्पर्क करने में समर्थ होता है। अतः यज्ञ महत्वपूर्ण है। ऋषियों ने यज्ञीय ऊर्जा के सम्बन्ध में विशद् अनुसंधान किया था। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं दान, देवपूजन, संगतिकरण। इन्हें प्रकारांतर से उदारता, उत्कृष्टता एवं सहकारिता की दिशाधारा कहा जा सकता है। यज्ञीय दर्शन को जीवन में उतारने वाला कोई भी व्यक्ति इसी जीवन में स्वस्थ, समृद्ध, एवं सुसंस्कृत रह सकता है। ऐसे व्यक्ति को आंतरिक प्रसन्नता एवं बाह्य प्रफुल्लता का अभाव नहीं रहता। यज्ञकृत्य कराने और सम्मिलित होने वालों को प्रत्येक विधि–विधान की व्याख्य करते हुए यह समझाया जाता है कि उनका चिंतन और चरित्र, दृष्टिकोण एवं व्यवहार निरन्तर उत्कृष्टता की ओर बढ़ता रहे। उद्गाता यही गाते हैं, अध्वर्यु यही सिखाते हैं, ब्रह्मा इसी की योजना बनाते हैं और आचार्य को ऐसी व्यवस्था बनानी होती है कि इसी प्रकार का भाव उस समूचे वातावरण पर छाया रहे। रोगोपचार के पीछे यही तथ्य छिपा है कि नीतित्वान, निरोग, बलिष्ठ एवं दीर्घजीवी होता है। यज्ञ के पुनीत अनुष्ठान के साथ ही इसी नीतिदर्शन को प्रत्येक याचक को समझाया जाता है।

यज्ञ–विज्ञान की अनुसंधान प्रक्रिया का शुभारंभ जिन पक्षों से किया गया है वे हैं यज्ञ से रोग निवारण, स्वास्थ्य, सवर्द्धन, प्रकृति संतुलन एवं वनस्पति संवर्द्धन, दैवी अनुकूलन, समाज, शिक्षण शक्ति जागरण तथा यज्ञ की विकृतियों एवं विसंगतियों में सुधार। शोध की परिधि असीम है, परन्तु प्रारम्भिक प्रयास के रूप में यज्ञ विज्ञान के इन्हीं प्रमुख आठ पक्षों को प्रयोग–परीक्षण की कसौटी पर रखा गया है।

यज्ञ–प्रक्रिया की शोध के अनेकानेक आयाम हैं हविष्य धूम्र, यज्ञावशिष्ट, मंत्रोच्चार में सन्निहित शब्दशक्ति, याजक गणों का व्यक्तित्व एवं उपवास, मौन प्रायश्चित आदि धर्मानुष्ठानों से जुड़ी तपश्चर्याएं। इन प्रयोजनों का शास्त्रों में उल्लेख तो है, पर उनके विधानों, अनुपातों और सतर्कताओं का वैसा उल्लेख नहीं मिलता, जिसके आधार पर समग्र उपचार बन पड़ने की निश्चतता रह सके। यज्ञ–विद्या को सांगोपांग बनाने के लिए शास्त्रों के सांकेतिक विधानों को वैज्ञानिक एंव सर्वांणपूर्ण बनाना होगा। यह कार्य पुरातन के आधुनिक शोध द्वारा ही संभव है।

इस सम्बन्ध में जितना भी कुछ वर्णन अब तक वैज्ञानिकों को उपलब्ध हुआ है, उससे इन प्रयोगों की प्रामाणिकता का पता चलता है। पौराणिक आख्यानों में इन प्रयोगों की वैज्ञानिकता का विस्तृत विवेचन तो नहीं है, परन्तु इस ओर संकेत अवश्य हैं। राम का जन्म, च्यवन ऋषि का आयुष्य, अपाला का रोग निवारण यज्ञ–प्रक्रिया द्वारा ही संभव वर्णित किए गए हैं। चरक और सुश्रुत ने तो विधिवत नस्य विभाग स्थापित किये थे। धन्वंतरि ने जटिलतम रोगों की इस प्रक्रिया द्वारा ठीक किया, ऐसे वर्णन पढ़ने को मिलते हैं।

वनौषधियों को देवोपम महत्ता देकर उनका सदुपयोग का जैसा वर्णन अध्यात्म ग्रंथों में किया गया है, उसे देखते हुए भारत के पुरातन गौरव के प्रति नतमस्तक हो जाना पड़ता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इन समस्त प्रतिपादनों को बुद्धिगम्य बनाने एवं तर्कबुद्धि के गले उतारने के लिए एक ऐसे ही तंत्र की आवश्यकता थी, जैसा कि 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' की प्रयोगशाला में स्थापित किया गया है।

यज्ञों में यजन हेतु विभिन्न हविष्य पदार्थ प्रयुक्त होते हैं। हविष्य का निर्धारण हर विशिष्ट रोगी के लिए अलग–अलग किया जाता है। बलवर्द्धक और रोगनिवारक दोनों ही तत्वों को ध्यान में रखना होता है। यज्ञ–चिकित्सा के मूल स्वरूप को समझने के लिए वाष्पीकरण सिद्धान्त की वैज्ञानिकता को समझना होगा। हविष्य के होमीकृत होने के पीछ 'सूक्ष्मता' का दर्शन छिपा पड़ा है। सूक्ष्मीकरण से शक्ति का विस्तार होता है। होम्योपैथी की दवाएं इस सिद्धान्त पर कार्य करती हैं। दवाओं की सूक्ष्मता बढ़ाकर उनकी पोटेन्सी में वृद्धि की जाती है। 'डीशेन' की दवाओं में साधारण जड़ी–बूटियों की अधिक पिसाइ–कुटाई करके उनकी आणविक ऊर्जा को उभारा जाता है। फलतः वे अधिक लाभदायक सिद्ध होती हैं। सूक्ष्मता का अपना स्वतंत्र विज्ञान है, जिसमें वस्तुओं की अदृश्य स्थिति का ही पतिपादन नहीं है, वरन यह सिद्धान्त भी सम्मिलित है कि स्थूल के अंतराल में छिपा सूक्ष्म कितना अधिक सामर्थ्यवान है।

औषधियों का वाष्पीकरण दो प्रकार के प्रभाव छोड़ता है। प्रथम तो उसकी सामर्थ्य कई गुनी अधिक हो जाती है। दूसरा उसका प्रभाव निकटवर्ती व्यक्तियों, वातावरण, जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर पड़ता है। मुख द्वारा दी गई औषधि पर आमाशय के विभिन्न पाचक रसों की प्रतिक्रिया होती है। तदुपरांत व्यक्ति विशेष की सामर्थ्य के अनुसार उसका कुछ अंश रक्त में जाकर शेष मल–मूत्र मार्ग से बाहर उत्सर्जित कर दिया जाता है। इस प्रकार औषधि का प्रभाव निश्चित ही मुखमार्ग द्वारा दी गई औषधि से अधिक और तुरन्त होता है। परन्तु उनके भी सूक्ष्म जीवकोशों–ऊतकों तक पहुंचने की पूरी संभावना सुनिश्चित नहीं है। वाष्पीकरण ऊर्जा के माध्यम से औषधि प्रवेश हेतु इसी मार्ग को प्रयुक्त किया जाता है। यज्ञ शब्द विशुद्ध रूप से सामूहिक प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके एकाकी प्रयोग को निरूत्साहित किया गया है और उसे परमार्थ भावनाओं के साथ जोड़ा गया है। आप्टे की संस्कृत टू इंग्लिश डिक्शनरी में यज्ञ ''टू सेक्रीफाइड'' बलिदान, त्याग के अर्थ में परिभाषित किया गया है। इसे व्यक्तित्व निर्माण के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। उत्कृष्ट भावनाओं के लिए भी।

एन. सी. वंद्योपाध्याय ने अपने ग्रन्थ ''डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू पॉलिटी एण्ड पॉलिटिकल थीअरीज'' में इस तथ्य को स्वीकारते हुए ऋग्वेद के मण्डल 2 से मण्डल 9 तक की अनेक ऋचाओं का हवाला दिया है। पश्चिमी मनीषी ए. बार्थ ने ''रिजीयंस ऑव इण्डिया'' में यज्ञ को मानव समाज और प्रकृति के बीच मधुर सम्बन्धों की व्यवस्था बताया है। संक्षेप मं यज्ञ दर्शन व्यक्तिगत जीवन में चरित्रनिष्ठा और लोक व्यवहार में समाज निष्ठा के आदर्श को अपनाए जाने की प्रेरणा देता है। व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति और सुख शान्ति का यही एक मार्ग है।

15.4 यज्ञोपचार की स्वास्थ्य संरक्षण प्रक्रियाः

औषधियों को वाष्पीभूत बनाकर उन्हें अधिक सूक्ष्म एवं प्रभावशाली बनाने की प्रक्रिया आयुर्वेद के विज्ञानी चिरकाल से अपनाते रहे हैं। उसके द्वारा अपेक्षाकृत अधिक सफलता भी मिलती

रही है। पाचन तंत्र के माध्यम से अथवा रक्त प्रवाह में सम्मिलित करके औषधि उपचार की पुरातन परिपाटी में जब वाष्पीकरण की नई पद्धति का समावेश हुआ तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम निकले।

यज्ञ चिकित्सा में भी रोग निदान की वैसी ही आवश्यकता पड़ती है जैसी अन्य पद्धतियों में चिकित्सक को रोगों के कारण जानने के लिए निदान करना पड़ता है। शरीर में कुछ उपयोगी वस्तुएं कम पड़ जाने एवं कुछ अनुपयोगी वस्तुएं बढ़ जाने से रोग उत्पन्न होते हैं। इसी कमी को पूरा करने एवं विष संचय को बहिष्कृत करने के लिए सभी चिकित्सक अपने–अपने ढ़ंग से उपाय करते हैं। यही यज्ञ चिकितसा में भी करना पड़ता है। देखना होता है कि शरीर की रोग निरोधक शक्ति को बढ़ाने के लिए समर्थता देने वाली क्या पुष्टाई आवश्यक है और उसे कितनी मात्रा में किन पदार्थों के द्वारा शरीर में पहुंचाया जा सकता है। देखना होता है किस अवयव में किस स्तर का कितना विष द्रव्य जमा हो गया है। उसे बाहर निकालने के लिए किस प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न की जाय और उसे उपयुक्त स्थान तक पहुंचाने के लिए किस उपाय का अवलम्बन किया जाय।

इस दृष्टि से हर विशिष्ट रोगी के लिए विशिष्ट हविष्य का निर्धारण करना होता है। इसमें दोनों ही स्तर की हवन सामग्रियों का सन्तुलन बिठाया जाता है। बलवर्धक और रोग निवारक दोनों ही तत्वों का संतुलन रखना होता है। यज्ञ प्रक्रिया में प्रायः पदार्थ की कारण शक्ति को उभारा जाता है। तभी वह यजन कर्त्ता के मन और अन्तःकरण में अभिष्ट परिवर्तन ला सकती है। कारण शक्ति का उत्पादन अभिवर्धन करने के लिए मंत्र विज्ञान का सहारा लिया जाता है। यज्ञ में नियत विधि व्यवस्था के अनुरूप मंत्रोच्चार का प्रयोग किया जाता है। इससे सम्बद्ध मनुष्यों को लाभ मिलता है। वातावरण में उपयोगी उत्तेजना उत्पन्न होती है और प्रयोग में आने वाले पदार्थों का कारण शक्ति को उभारना सम्भव हो जाता है कि वे अपना प्रभुत्व क्षमता का परिचय दे सकें।

अभ्यास प्रश्न – क

6. यज्ञ को धरती का क्या कहा जाता है ?
7. यज्ञ में यज् धातु के कितने अर्थ होते हैं ?
8. यज्ञ नाभि है –

   क. पृथ्वी की ख. चन्द्रमा की ग. सूर्य की घ. विश्व बह्माण्ड की

15.5 यज्ञ के प्रकार :–

भारतीय परम्परा के अनुसार प्राणियों के ज्ञान, शक्ति, विद्या, बुद्धि,बल आदि की न्युनाधिकता के कारण अधिकारानुरूप प्राणि–कल्याण के अनेक साधन बताये गये हैं। उनमें यज्ञ भी एक प्राणि–कल्याण का उत्कृष्ट साधन है। गीता 3/9 में भगवान कृष्ण ने सभी कार्यों को

बन्धन स्वरूप बतलाया है परन्तु यज्ञ को–यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्य् लोकोऽयं कर्मबन्धनः। कहकर बन्धन कारक नहीं बताया है। अतएव इसे बुद्धिमानों को भी पवित्र करने वाले पावनानि मनीषिणाम् कार्यों में परिगण्ति किया है।

इस महत्त्वपूर्ण यज्ञ कार्य के भेद–उपभेदों की गणना करना साधारण कार्य नहीं है। गीता के चतुर्थाध्याय के यज्ञनिरूपण–प्रकरण में यज्ञ के 15 मुख्य भेद बतलाए गये हैं। यदि इनकी विभिन्न शाखाओं की गणना की जाय, तो यज्ञ क्षेत्र को 'अनन्त' कहकर ही विश्राम करना पड़ेगा। अतएव हम इन भेदों की ओर न जाकर यज्ञकर्म के मुख्य शास्त्र कल्प और उसके विद्वानों की परम्परा की ओर ही ध्यान देकर कुछ उपयोगी विचार उपस्थित करते हैं।

महर्षि वेदव्यास की उत्कृष्ट रचना श्रीमद्भागवत भगवान के श्रीमुख का यह वचन है–

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधोन्मुखः।। – 11/27/7

इसके अनुसार सामान्यतः वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र ये तीन यज्ञानुष्ठान की शैलियाँ ज्ञात होती हैं। यहाँ तांत्रिक शब्द से तंत्र दर्शन प्रतिपादन योगादिक्रियाओं का, तथा कई विचारक दक्षिण और वाममार्ग नाम से प्रसिद्ध तंत्रपद्धति के कार्यों का निर्देश बताते हैं। परन्तु यांत्रिक विचारकों के अनुसार– **कर्मणां युगपद्भावस्तन्त्रम्'–1/7/1** इस कात्यायन महर्षि की परिभाषानुसार एक कार्य में ही विभिन्न शाखाओं में प्रतिपादित अनेकताओं की अविरोधी संकलन करना 'तंत्र' शब्द का अर्थ है। ऐसे ही कार्यों को 'तांत्रिक' कार्यों के लिए आजकल स्मार्त शब्द का व्यवहार प्रचलित है। शास्त्रकारों ने स्मार्त शब्द की जो व्याख्या की है, उससे भी अनेक शाखाओं तथा अनेक वेदों के कार्यों का एक जगह सम्मिश्रण माना गया है।

उक्त याज्ञिक विचार से यज्ञ की श्रौत (वैदिक) स्मार्त (तांत्रिक) और पौराणिक (मिश्र) ये तीन मुख्य शैलियाँ हैं।

15.5.1 श्रौतयज्ञ :– श्रुति अर्थात् वेद के मंत्र और ब्राह्मण नाम के दो अंश हैं। इन दोनों में या दोनों में से किसी एक में सांगोपांग रीति से वर्णित यज्ञों को श्रौतयज्ञ कहते हैं। श्रौत कल्प में 'यज्ञ' और होम दो शब्द हैं। जिसमें खड़े होकर वषट् शब्द के द्वारा आहुति दी जाती है और याज्या पुरोनुवाक्य नाम के मंत्र पढ़े जाते हैं, वह कार्य 'यज्ञ' माना जाता है। जिसमें बैठकर स्वाहा शब्द के द्वारा आहुति दी जाती है यह होम कहा जाता है। श्रौतयज्ञ–इष्टियाग, पशुयाग और सोमयाग इन नामों से मुख्यतया तीन भागों में विभक्त है। श्रौतयज्ञों के विधान की एक स्वतंत्र परम्परा है, उस प्रयोग परम्परा का जिस कार्य में पूर्णतया उल्लेख हो उसे 'प्रकृतिक याग' कहते हैं और जिस कार्य में विशेष बातों का उल्लेख और शेष बातें प्रकृतियाग से जानी जायें उसे विकृतियाग कहते हैं।

अतएव श्रौतयज्ञों के तीन मुख्य भेदों में क्रमशः दर्शनपूर्णमासेष्टि, अग्रीपोमीय पशुयाग और ज्योतिष्टोम सोमयाग के प्रकृतियाग हैं। अर्थात् इन कर्मों में किसी दूसरे कर्म से विधि का ग्रहण नहीं होता हैं इन प्रकृतियागों के जो धर्म ग्राही विकृतियाग है वे अनेक हैं। उनकी इयत्ता का संकलन भिन्न–भिन्न शाखाओं के श्रौतसूत्रों में किया गया है। यहाँ उनका बिना परिचय के नाम गिनाना अनुपयुक्त और अरोचक होगा। अतः श्रौत यज्ञ का सर्व सामान्य परिचय इस प्रकार समझना चाहिए।

श्रौतयज्ञ–आहवनीय, ग्रार्ह्यपत्य, दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियों में होते हैं इसलिए उन्हें त्रेताग्नियज्ञ भी कहते हैं। प्रायः सभी श्रौत यज्ञों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से कम या अधिक रूप से तीनों ही वेदों के मंत्रों का उच्चारण होता है, अतः श्रौत यज्ञ 'त्रयी' साध्य हैं।

इनमें यजमान स्वयं शरीर क्रिया में उतना व्यस्त नहीं रहता जितनें अन्य ब्राह्मण जिन्हें ऋत्विज कहते हैं वे कार्य संलग्न रहते हैं।

15.5.2 स्मार्त यज्ञ :–इनका श्रौत सूत्र कारों ने पाक यज्ञ तथा एकाग्नि शब्द से व्यवहार किया है। इनके मुख्यतया हुत, आहुत और प्रतिशत ये चार भेद है– जिन कार्यों में अग्नि में किसी विहित द्रव्य का हवन होता हो, वह हुत यज्ञ है। जिससे हवन न होता हो केवल किसी क्रिया का करना मात्र हो वह अहुत यज्ञ है। जिसमें हवन और देवताओं के उद्देश्य से द्रव्य का 'बलि' संज्ञा से त्याग हो, वह हुत यज्ञ है और जिसमें भोजन मात्र ही हो वह प्रतिशत यज्ञ है।

स्मार्त यज्ञ का आधार भूत अग्नि शास्त्रीय और लौकिक दोनों प्रकार होता है। शास्त्रीय अर्थात् आधान विधि के द्वारा स्वीकृत अग्नि औपासन, आवसथ्य, गृह्य, स्मार्त आदि शब्दों से कहा जाता है। इस अग्नि में जिसने उसको स्वीकार किया है, उसके सम्बन्ध का ही हवन हो सकता है। साधारण अग्नि लौकिक अग्नि है। इसे संस्कारों द्वारा परिशोधित भूमि में स्थापित करके भी स्मार्त यज्ञ होते हैं। स्मार्त यज्ञों की संख्या श्रौत यज्ञों की भांति अत्यधिक नहीं है। इन यज्ञों की विधि और इयत्ता बताने वाले ग्रन्थ को 'गृह्यसूत्र' या स्मार्त सूत्र कहते हैं। पंचमहायज्ञ, षोडसंस्कार और औध्वदैहिक (प्रचलित मृत्यु के बाद की क्रिया) प्रधानतया स्मार्त हैं। स्मृति ग्रन्थों में उपदिष्ट कार्य जिनका (विनायक शांति आदि का) पूर्ण विधान उपनध गृह्यसूत्रों में नहीं मिलता है, वे भी याज्ञिकों की परम्परा में स्मार्त ही कहलाते हैं। स्मार्त यज्ञ में प्रायः अकेला व्यक्ति भी कार्य कर सकता है। हवन वाले कार्यों में एक ब्रह्मा की तथा भोजनादि में अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। गृह्यसंस्कार ने स्मार्त यज्ञों में यजमान ब्रह्म और आचार्य (नामभेद) इन तीन की आवश्यकता बताई है।

इस समय शास्त्रीय अग्नि वाले कार्य प्रायः अग्नि वाले कार्य प्रायः लुप्त से हो गये हैं, क्योंकि इनमें भी अग्निरक्षा आदि का कार्य आजकल की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं बैठ पाता। जिनमें लौकिक अग्नि का ग्रहण है वे संस्कार, उपाकर्म, अन्तेष्टि आदि प्रचलित हैं पर वे भी गिनी चुनी संख्या में हैं स्मार्त यज्ञों में मानव के नैतिक गुणों के विकास का फल अधिक है। आज की बढ़ती हुई अनैतिकता में हमारे लिए भी एक कारण हो।

15.5.3 पौराणिक यज्ञ :– श्रुति स्मृति कथित कार्यों के अधिकारी अनाधिकारी सभी व्यक्तियों के लिए पौराणिक कार्य उपयोगी है। आज कल इन्हीं का प्रचार और प्रसार है। पौराणिक कार्यों में यज्ञ शब्द का प्रयोग कल्प सूत्रकारों की याज्ञिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। परन्तु गीता के व्यापक क्षेत्र से इनके लिए भी 'यज्ञ' शब्द का व्यवहार होता है। अतएव पौराणिक यज्ञों को हवन, दान, पुनरक्षण, शान्तिकर्म, पौष्टिक, इष्ट पूर्त व्रत, सेवा, आदि के रूप से अनेक श्रेणियों में विभक्त किया गया है। जिन जातियों को वेद के अध्ययन का अधिकार है, वे पौराणिक यज्ञों को वेदमंत्रों सहित करते हैं और जिन्हें वेद का अधिकार नहीं है, उनको पौराणिक मंत्रों से ही करते हैं। हमने भी सभी वर्गों की उपयोगिता की दृष्टि से इनका यह निर्देश किया है।

पौराणिक यज्ञों का विस्तार अधिक है, अतएव यहाँ इनका पृथक–पृथक विवेचन करना संभव नहीं हो सकता। साधारणतया पौराणिक यज्ञों में गणपति पूजन, पण्याहवाचन, षोडशमातृका पूजन, वसोर्धारा पूजन, नान्दी श्राद्ध, इन पांच स्मार्त अंगों के साथ ग्रहयाग प्रधानपूजन आदि विशेष रूप से होता है। इन यज्ञों में लौकिक हजारों तक कार्यक्षम व्यक्ति कार्य के अनुसार 'ऋत्विज्' बनाए जा सकते हैं। पौराणिक यज्ञों के विस्तार में न जाकर

यहाँ संक्षेप में श्रुति प्रतिपादित यज्ञों का परिचय दिया जा रहा है। यों तो यज्ञ के अंसख्य भेद अर्थात् प्रकार शास्त्रों में वर्णित हैं। उन सबका केवल नामोल्लेख भी इस छोटे से लेख में नहीं किया जा सकता, तो उनके स्वरूप का वर्णन, उसके अनुष्ठान के प्रकार एवं अवान्तर अंग–उपांग आदि का संक्षेपतः भी वर्णन यहां किस तरह किया जा सकता है। कई यज्ञ तो ऐसे हैं, जिनके अनुष्ठान का न तो आज तक कोई अधिकारी ही है न अनेक कारणों से उसका अनुष्ठान किया ही जा सकता है। जैसे भगवान अनन्त, अपार हैं, वैसे ही उनके स्वरूप भूत वेद तथा तत्प्रतिद्यात यज्ञ की महिमा भी आनन्द अपार है।

यज्ञों के अन्य विविध प्रकार :– श्रुति में वैदिक कर्मों के पांच विभाग बतलाये गये हैं– 1. अग्निहोत्र 2. दर्श–पूर्णमास, 3. चातुर्मास 4. पशु, 5. सोम। स्मृति में यज्ञों का विभाग निम्न प्रकार से किया है– 1. पाकयज्ञ संस्था, 2. हविर्यज्ञ संस्था, 3. सोम संस्था। पाक यज्ञ सस्था में– 1. औपासन होम, 2. वैश्वदेव, 3. पार्वण 4. अष्टका, 5. मासिश्राद्ध, 6 श्रावणा, 7. शूलयण, 4. चातुर्मास, 5. निरूढ पशु बन्ध, 6. सौत्रायणि और 7. पिण्डपितृयज्ञ हैं। सोम संस्था में 1. अग्निष्टोम, 2. अत्यग्निष्टोम 3. उक्थ्य, 4. षोडशी, 5. वाजपेय, 6. आतिरात्र और 7. अप्तोर्याम का समावेश होता है। इस तरह ''गौतम धर्मसूत्र'' में श्रौतस्मार्त कर्मों की संख्या मिलाकर 21 यज्ञ बतलाये हैं। इनमें पाकयज्ञ संख्याओं का निरूपण गृह्यसूत्रों एवं ब्राह्मणात्मक देवभाग में किया गया है।

इस तरह श्रौत–स्मार्त यज्ञों में से कुछ का नाम निर्देशमात्र ऊपर किया गया है। इसका संक्षिप्त विवरण लिखने में एक वृहत् ग्रन्थ लिखना पड़ जायेगा। इन यज्ञों के अतिरिक्त बहुत से पौराणिक, तांत्रिक एवं आगमोक्त यज्ञ हैं, जैसे कि विष्णुयाग, रुद्रयाग, महारुद्र, अतिरुद्र, गणेशयाग, चण्डयाग, गायत्री–याग, सूर्ययाग, विनायकशांति, ग्रहशांति, अद्भुतशांति, महाशांति, ऐन्द्रीशांति, लक्षहोम, कोटिहोम, वैष्णवेष्टि, वैभवीष्टि, पाद्यी, इष्टि, नारायणी, वारूदेवी, गारूढी, वैवूही, पावमानी, आनन्ती, वैश्वक्सेनी, सौदर्शनी, पवित्रष्टि, आदि अनेक यज्ञों का विधान पाया जाता है।

प्रत्येक गृहस्थ के लिए परमावश्यक नित्य कर्तव्य उन पांच महायज्ञों में से एक भी आज विरल आचरण देखने में आता है, जिनके न करने में दोष बतलाया गया है। ये पांच महायज्ञ हैं– ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्य यज्ञ इन्हीं के आहुत, हुत, प्रहुत, ब्रह्महुत और प्राशित नाम बतलाये गये हैं।

15.6 पंच महायज्ञ का स्वरूप :–

भारत के पूज्य ऋषिगणों ने पंच महायज्ञ निरूपित कर सभी को यज्ञशिष्ट भोग कर निष्पाप और भगवद् प्राप्ति के योग्य बनने का निर्देश दिया था वे ये हैं:–

1. **ब्रह्म यज्ञ**
2. **देव यज्ञ**
3. **पितृ यज्ञ**
4. **नृ यज्ञ**
5. **भूतबलि (वैश्वदेव यज्ञ)**

15.5.1 ब्रह्मयज्ञ :– ऋषियों की भांति अपना सा कुछ कुछ धन सम्पत्ति, ऐश्वर्य, शरीर–प्राण, मन–बुद्धि, हृदय आदि सभी परमात्मा को अर्पित कर दें और फिर उनके आदेश के अनुसार ही अपने जीवन में इन सबों का उपयोग करें। (सब कुछ वस्तुतः स्पष्ट होकर प्राप्त होने लगता है।) यह ब्रह्म यज्ञ है।

15.6.2 देव यज्ञ :— विश्व के कल्याण के लिए प्रत्यक्ष अग्नि में ऐसे आरोग्यमय, पुष्ट और मंगल द्रव्यों की श्रद्धा और भक्ति से आहुति दें, जिसे विश्व में फैले अनन्त देव ग्रहण कर सबों के कल्याण और शुभ के लिए पर्जन्य रूप में विविध वृष्टि कर पुनः विस्तृत रूप में हमें प्रदान करते हैं।

15.6.3 पितृ यज्ञ :— जीवन में पोषण, रक्षण एवं विविध कल्याणों की अभिवृद्धि करने—कराने वाले गुरु—पितृ—बड़ों की भक्ति और सेवा ही पितृ—यज्ञ है। शरीर छोड़ने के उपरान्त भी उनकी आज्ञा मानकर चलना तथा उनके आत्म—कल्याण के लिए सत्कर्मों का अनुष्ठान करना भी पितृ यज्ञ ही है।

15.6.4 नृ यज्ञ :— अपने स्वार्थ की संकीर्णता को विशाल परार्थता में परिणत करने के लिए अपरिचित अयाचित की देव और ईश्वर मान कर सेवा—अर्चन—भोजन—शयन—आदर और स्वागत वाणी से सत्कार करना ही नृ (मनुष्य)यज्ञ है।

15.6.5 भूत बलि या वैश्वदेव—यज्ञ :— स्थूल, सूक्ष्म दिव्य जितने भी प्राणी या देव हैं, सबों की तृप्त करने की भावना से भोज्य सामग्री की हवि प्रदान करना ही भूत या वैश्वदेव यज्ञ है। इससे व्यक्ति का हृदय और आत्मा विशाल होकर अखिल विश्व के प्राणियों के साथ एकता सम्मिलन का अनुभव करने में होता है।

यज्ञ एक प्राचीन पौराणिक परम्परा है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार के उद्‌देश्यों को पूर्ण किया जा सकता है तथा इस प्रकार शरीर के रोगों के निवारण के लिए यज्ञ का उपयोग सर्वजन्य के लिए हितकारी एवं लाभकारी है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. श्रीमद्‌भागवत पुराण में यज्ञ के कितने प्रकार बताये गये हैं ? तीन
2. श्रोत यज्ञ किसे कहते है ?
3. नृ यज्ञ का क्या अर्थ है ?

15.7 यज्ञ चिकित्सा की वैदिक विधि

वेद के पमुख विषय 'कर्मकाण्ड' के अन्तर्गत यज्ञ एवं अग्निहोत्र विषय का विशद् विवेचन मिलता है। आचार्य श्रीराम शर्मा ने वेदोक्त विधियों को आधार बनाकर एक संक्षिप्त एवं सरल 'यज्ञ पद्धति' निर्दिष्ट की है। अतः उसके सभी सोपान वेदोक्त हैं। उन्होंने यज्ञ के भावनात्मक प्रयोजन के साथ ही उसकी विज्ञान सम्मत व्याख्या प्रस्तुत कर उसका वैज्ञानिक महत्व स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यज्ञ का प्रत्येक कर्मकाण्ड भावन एवं संकल्प प्रधान है। यज्ञ में प्रयुक्त समस्त पात्र, समिधा, हव्यपदार्थ आदि की भावनात्मक शुद्धि हेतु यजुर्वेद के मंत्रों का अवलम्बन है, जिनसे उन वस्तुओं के कुसंस्कारों को दूर कर सुसंस्कारों की स्थापना की जाती है।

।। मंगलाचरणम् ।।

होता गणों के उत्साह, उमंग एवं कल्याण के लिए, पीले अक्षत की उन पर वृष्टि करते हुए स्वागत किया जाता है। यज्ञाचार्य मंत्रों के उच्चारण करते हैं। यजुर्वेद का निम्न मंत्र निर्दिष्ट किया गया है।

¬ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा, भद्रंपश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ¦ सस्तनूभिः, व्यशेमहि देव हितं यदायुः।।

इसके पश्चात् षट्कर्म की क्रिया की जाती है। जिसके निम्नलिखित सोपान हैं — पवित्रीकरण, आचमनम्, शिखावन्दनम्, प्राणायाम, न्यास एवं पृथ्वीपूजनम्।

।। पवित्रीकरणम्।।

शुभ उद्देश्य के लिये देवत्व का वरण करना अभिष्ट है। इसलिये पवित्रीकरण की भावना करते हुये बांयें हाथ की हथेली में जल लेकर दाहिने हाथ की हथेली से ढ़क लिया जाता है। यज्ञाचार्यों के मंत्रोच्चारण के पश्चात् यह जल सम्पूर्ण शरीर पर अभिसिंचन किया जाता है।

ऊँ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।
ऊँ पुनातु पुण्डरीकाक्षः पुनातु, पुण्डरीकाक्षः पुनातु।

।। आचमन।।

यह कृत्य स्थूल शरी, सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर की पवित्रता अर्थात् वाणी, मन व अन्तःकरण की भावनात्मक शुद्धिकरण हेतु किया जाता है। इसमें यही प्रेरणादायी निर्देश दिया गया है कि एक—एक चम्मच जल, एक—एक मंत्र के पश्चात् दिया जाये एवं भावनाओं को परिष्कृत करने का अभ्यास किया जाये।

ऊँ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।।1।।
ऊँ अमृतापिधानमसि स्वाहा।।2।।
ऊँ सत्यं यशः श्रीर्मयि, श्रीः श्रयतां स्वाहा।।3।।

।। शिखावन्दनम्।।

आचार्य श्रीराम शर्मा का मत है कि मानव—मस्तिष्क विचारों का केन्द्र है, इसमें सद्विचार ही एकत्र हों, इसलिये शिखा वन्दन का विधान है। इस महत्वपूर्ण स्थल का ज्ञान ऋषियों को था। उनके अनुसार यह स्थान ब्रह्माण्डीय शक्तियों का आदान—प्रदान करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। शिखाबंधन से मनुष्य के मस्तिष्कीय केन्द्र से, श्रेष्ठ विचारों का क्षरण नहीं होता।

बायें हाथ की हथेली में जल लेकर उसमें दाहिने हाथ की पांचों अंगुलियाँ डूबोकर उनसे शिखा स्थान का स्पर्श सभी याजकगण करते हैं। —

ऊँ चिद्रूपिणि! महामाये! दिव्यतेजः समन्विते!
तिष्ठ देवि! शिखामध्ये, तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे ।।

।। प्राणायाम।।

श्वास को धीमी गति से गहरी खींचकर रोकना व बाहर निकालना प्राणायाम के क्रम में आता है। श्वास खींचने के साथ भावना करें कि प्राण शक्ति श्रेष्ठता श्वास के द्वारा अन्दर खींची जा रही है, छोड़ते समय यह भावना करें कि हमारे दुर्गुण, दुष्प्रवृत्तियाँ, बुरे विचार

प्रश्वास के साथ बाहर निकल रहे हैं। प्राणयाम निम्न मन्त्र के उच्चारण के साथ किया जाता है।

ऊँ भूः ऊँ भुवः ऊँ स्वः ऊँ महः, ऊँ जनः ऊँ तपः ऊँ सत्यम्। ऊँ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। आपोज्योतीरसोऽमृतं, ब्रह्म भूर्भुवः स्वः ऊँ।

।। न्यास।।

न्यास का अर्थ है धारण करना या स्थापना। जिसके द्वारा दिव्यत्व को धारण करने का संकल्प किया जाता है। इसका प्रयोजन है– शरीर के सभी महत्वपूर्ण अंगों में पवित्राता का समावेश तथा अन्तः की चेतना को जगाना, ताकि देवपूजन जैसा श्रेष्ठ कृत्य किया जा सके । बाएँ हाथ की हथेली में जल लेकर दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियों को उसमें भिगोकर, बताए गए स्थानों को मन्त्रोच्चार के साथ स्पर्श किया जाता है।

ऊँ वांड्गमे आस्येऽस्तु। (मुख को)
ऊँ नसोर्मे प्राणोऽस्तु। (नासिका के दोनों छिद्रों को)
ऊँ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। (दोनों नेत्राों को)
ऊँ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। (दोनों कानों को)
ऊँ बाह्वोर्मे बलमस्तु।(दोनों भुजाओं को)
ऊँ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु।(दोनों जंघाओं को)
ऊँ अरिष्टानि मेऽड्गानि, तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। (समस्त शरीर पर)

।। पृथ्वी–पूजनम् ।।

इस प्रक्रिया से मातृत्व के प्रति हमारे कर्त्तव्यों का बोध होता है।

ऊँ पृथ्वि! त्वया धृता लोका, देवि! त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि! पवित्रं कुरु चासनम्।।

।। स्वस्तिवाचनम्।।

"स्वस्तिवाचन से कल्याणकारी भावनाओं का सूक्ष्म प्रवाह, सूक्ष्म जगत में जाता है, जिनसे सूक्ष्म वातावरण का भी परिष्कार होता है।" वस्तुतः आज ऐसे महत्वपूर्ण एवं जीवनोपयोगी कृत्यों की आवश्यकता है। इन्हीं आवश्यकताओं को अनुभव करते हुए इसमें यजुर्वेद के निम्न मंत्रों का प्रयोग किया गया है।

ऊँ गणानां त्वा गणपति ग्वंग हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपति ग्वंग हवामहे, निधीनां त्वा निधिपति ग्वंग हवामहे, वसोमम् आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्।
ऊँ स्वस्तिनः इन्द्रो वृद्धाश्रवाः, स्वस्तिनः पूषा विष्ववेदाः।
स्वस्तिनस्ताक्ष्योऽअरिष्टनेमिः, स्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु ।।
ऊँ विष्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव। यदभद्रं तन्न आ सुव।।
ऊँ शांतिः! शांतिः!! शांतिः!!!

।। देव आवाहन।।

गुरु परमात्मा की दिव्य चेतना का अंश है, जो साध्क का मार्गदर्शन करता है। सद्गुरु का आवाहन निम्न मन्त्रोच्चार के साथ किया जाता है।

ऊँ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुःसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

।। पंचोपचार पूजन।।

ये पाँचों उपचार व्यक्तित्व को सत्प्रवृत्तियों से संपन्न करने के लिए किये जाते हैं। कर्मकाण्ड के पीछे भावना महत्वपूर्ण है।

¬ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः/गन्धाक्षतं/पुष्पाणि/धूपं/दीपं/नैवेद्यं समर्पयामि।।
ततो नमस्कारम् करोमि।

पश्चात् दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया जाता है –

¬ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रानाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटी युगधरिणे नमः।

।। अग्निस्थापनम्।।

अग्नि स्थापना में यजुर्वेद का निम्न मंत्र प्रयुक्त किया गया है –

ऊँ भूर्भुवः स्वद्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि, पृष्ठेऽग्निमन्नाद्यायादधे। अग्निं दूतं पुरोदधे। हव्यवाहमुपब्रुवे देवाँऽआसादयादिह। ऊँ अग्नये नमः। आवाहयामि,स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।।

।। समिधाधानम्।।

इसमें चार समिधाएं रहती हैं, जिन्हें चार आश्रमों में धर्म पालन का प्रतीक मानकर आहुत किया जाता है। मंत्र इस प्रकार है।

1. **ऊँ अयन्त इध्म आत्मा, जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व। चेद्ध वर्धय, चास्मान् प्रजया, पषुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, अन्नाद्येन समेधय स्वाहा। ऊँ अग्नये जातवेदसे इदं न मम्।**
2. **ऊँ समिधाग्निं दुवस्यत, घृतैबोधयता तिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। ऊँ अग्नये इदं न मम्।**
3. **ऊँ सुसमिद्धाय शोचिषे, घृतं तीव्रं जुहोतन्। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदंमग्नये जातवेदसे इदं न मम्।**
4. **ऊँ तं त्वा समिद्भिरंगिरोघ्रतेन वर्धयामसि। वृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदंमग्नये अंगिरसे इदं न मम्।**

।। गायत्री मन्त्र आहुति।।

इसमें गायत्री की 24 आहुतियाँ समर्पित की जाती है तथा साथ ही रोग विशेष की आहुतियाँ भी प्रदान की जाती है। गायत्री मंत्र इस प्रकार है –

ऊँ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

।। स्विष्टकृत् होमः।।

हम अपने जीवन में माधुर्य का भावनात्मक विकास करें इसी भावना के साथ स्विष्टकृत सम्पन्न किया जाता है।

ऊँ यदस्य कर्मणो त्यरीरिचं, यद्वान्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं। स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्व प्रायष्चित्ताहुतीनां कामानां, समर्धयत्रे सर्वान्न कामन्तसमर्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम्।

।। पूर्णाहुतिः।।

यज्ञ कार्य की पूर्णता की भावना करते हुए, स्रुचिपात्र में सुपारी या नारियल रखकर घृत मिलाकर यज्ञकुण्ड में यह आहुति दी जाती है।

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावषिष्यते। स्वाहा।।
ऊँ सर्वं वै पूर्ण ग्वंग स्वाहा।

।। वसोर्धारा।।

इस कृत्य में घृत या गौदुग्धकी धार छोड़ने का निर्देश है,।

ऊँ वसोः पवित्रमसि शतधारं, वसोः, पवित्रमसि सहस्र धारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः, पवित्रेण षतधारेण सुप्वा कामधुक्ष स्वाहा।।

।। घृत अवघ्राणम्।।

इस क्रिया में यज्ञ की धूम्र को हाथ में घृत लगाकर अग्नि से सुगंधित करके सूंघा जाता है। तत्पश्चात् मुंह व हाथ में मल लिया जाता है।

ऊँ तनूपा अग्नेऽसि, तन्वं मे पाहि।
ऊँ आयुर्दा अग्नेऽसि, आयुर्मे देहि।।

।। भस्म धारणम्।।

इस कृत्य में भस्म को निम्न मंत्र बोलते हुए लगाया जाता है –

ऊँ त्र्यायुषं जमदग्नेः इति ललाटे।
ऊँ कष्यपस्य त्र्यायुषम् इति ग्रीवायाम्।
ऊँ यद्देवेषु त्र्यायुषम् इति दक्षिण बाहुमूले।
ऊँ तन्नोअस्तु त्र्यायुषम् इति हृदि।

।। शुभकामना।।

इस कृत्य में समस्त विश्व के कल्याण के लिएसभी याजकगण प्रार्थना करते हैं।

ऊँ सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वेसन्तुनिरामयाः।
सर्वे भद्राणि पष्यन्तु, मा कष्चिद् दुःखमाप्नुयात्।

।। शांतिअभिसिंचनम्।।

इस आध्यात्मिक प्रयोग से जो प्रेरणा और अनुदान प्राप्त हुए है, वे स्थिर हों, फलित हों, सभी तरह के पापों का शमन हो, सभी को शांति प्राप्त हो। इस भावना के साथ शांतिपाठ किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न – ग

1. यज्ञ चिकित्सा विधि में षट्कर्म का कौन–कौन से हैं ?
2. न्यास का अर्थ क्या है ?
3. स्विष्टकृत होत क्यों किया जाता है ?

15.8 सारांश

प्राचीनकाल में यज्ञ किसी विशेष साधना या मंत्र–तंत्र की तरह नहीं समझे जाते थे, वरन् वे मनुष्य जीवन का एक स्वाभाविक अंग थे। यज्ञों के जो विभाग किए गए थे, उनमें से कुछ ऋतुओं के आधार पर थे, कुछ मनुष्यों के कर्त्तव्य कर्म को दृष्टिगोचर रखकर नियत किए थे और कुछ राष्ट्रीय व्यवस्था से सम्बन्ध रखते थे। इस प्रकार आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समस्याओं की पूर्ति के लिए जो सामुदायिक और सामाजिक कार्य किए जाते थे। पंच महायज्ञों द्वारा सौर और चन्द्र संसार को आप्लावित करके अतिथियों, वृद्धों, रोगियों, पतितों, पशु–पक्षियों और कीट पतंगों तक को आहार पहुंचाने से बढ़कर सेवा की भावना और पुण्य कार्य क्या हो सकता है ? इससे मनुष्यों में करूणा, क्षमा, अहिंसा के भावों की वृद्धि होती है और उनका जीवन केवल भौतिक में न रहकर दैवी गुणों से सम्पन्न होता है। जो मनुष्य इतना सब करके भी निःस्वार्थ भाव से कहता है 'इदं न मम' अर्थात यह मेरा नहीं है, जो कुछ है सब ईश्वर का ही है, वह सांसारिक प्रपंच और कर्म–बंधन में नहीं फंस सकता है। यही निष्काम भावना 'यज्ञ' की सबसे बड़ी विशेषता है। जैसा भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है **यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः** अर्थात यज्ञीय कर्मों के अतिरिक्त समस्त कर्म बंधन करने वाले ही हैं। इस प्रकार यज्ञ का कर्म समझने वाला और तदनुसार आचरण करने वाला मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

15.9 शब्दावली

सूक्ष्मीकरण – स्थूल वस्तुओं का सबसे छोटा सा छोटा रूप करना।
यज्ञोपैथी – यज्ञ (अग्नि कुण्डों) में विभिन्न औषधियों के प्रयोग द्वारा रोगों की निवारण प्रक्रिया।
यज्ञशिष्ट – यज्ञोपरान्त बचा हुआ प्रसाद।
पोटेन्सी – शक्ति, क्षमता।
आत्मसंयम – स्वयं पर नियंत्रण
पंचक – पांच औषधियों का समूह।

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क 1. लघु सूर्य 2.तीन 3. विश्व बह्माण्ड की

अभ्यास प्रश्न – ख 1. तीन
2. वेद या ब्राह्मण में सांगोपांग रीति से वर्णित यज्ञों को श्रौतयज्ञ कहते हैं।

3. मनुष्य
अभ्यास प्रश्न – ग 1. पवित्रीकरण, आचमनम्, शिखावन्दनम्, प्राणायाम, न्यास एवं पृथ्वीपूजनम्। 2. स्थापना, धारण 3. जीवन में माधुर्य विकास हेतु

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. यज्ञ चिकित्सा – ब्रह्मवर्चस्
2. यज्ञ का ज्ञान–विज्ञान वांगमय 25 – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
3. यज्ञ एक समग्र उपचार प्रक्रिया वांगमय 26 – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
4. आर्यों की यज्ञ प्रक्रिया – डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त
5. आध्यात्मिक मान्यताओं का वैज्ञानिक प्रतिपादन – डॉ. उषा खण्डेलवाल
6. अध्यात्म के स्वर – डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

15.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यज्ञ के अर्थ एवं स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालिए ?
2. यज्ञ के प्रकारों का सोदाहरण विस्तार पूर्वक वर्णन किजिए ?
3. यज्ञ की स्वास्थ्य संरक्षण प्रक्रिया का वर्णन कीजिए ?
4. यज्ञ मानव जाति का मूल धर्म रहा है। इस तथ्य की पुष्टि कीजिए ?
5. यज्ञ चिकित्सा विधि में वर्णित षट्कर्म के स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए ?

इकाई – 16 यज्ञोपैथी द्वारा रोगोपचार

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 यज्ञोपैथी : सर्वांगपूण उपचार प्रक्रिया
16.3.1 एक समग्र चिकित्सा पद्धति
16.3.2 एक सशक्त वैकल्पिक उपचार पद्धति
16.3.3 यज्ञोपैथी का सूक्ष्म विज्ञान
16.4 यज्ञ का समर्थ उपचार प्रक्रिया
16.4.1 यज्ञ कुण्ड की आकृति
16.4.2 समिधाओं का चुनाव और उनका विषेष दहन
16.4.3 मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण
16.4.4 यज्ञ का समय विचार (मुहुर्त एवं प्रभाव)
16.4.5 सामग्री का गुण विष्लेषण
16.5 यज्ञ चिकित्सा का विधि–विधान
16.6 यज्ञ चिकित्सा का सर्वोत्तम काल
16.7 यज्ञोपैथी व रोगोपचार
16.7.1 सर्वरोगहारी औषधि (कॉमन हवन सामग्री)
16.7.2 अपच एवं संबंधित रोगों के लिए विषेष हवन सामग्री
16.7.3 वमन–उल्टी तथा संबंधित रोगों के लिए विषेष हवन सामग्री
16.7.4 दस्त, डॉयरिया की विशेष हवन–सामग्री
16.7.5 साधारण बुखार की विषेष हवन सामग्री
16.7.6 रक्त विकार की विशेष हवन–सामग्री
16.7.7 खांसी की विशेष हवन सामग्री
16.7.8 चर्मरोग की विशेष हवन सामग्री
16.7.9 वात–व्याधि की विशेष हवन–सामग्री
16.7.10 शीतज्वर की विशेष हवन–सामग्री
16.7.11 'स्ट्रेस' या तनाव एवं हाइपरटेंषन की विषेष हवन सामग्री
16.7.12 सरस्वती पंचक विशेष हवन सामग्री
16.8 सारांश
16.9 शब्दावली
16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
16.12 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना –

भारतीय धर्म संस्कृति के साथ यज्ञ परम्परा अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । जन्म से लेकर मरण पर्यन्त समय–समय पर होने वाले शोडष संस्कारों का विधान है। हमारे ऋषि–मुनि उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे। पदार्थ विज्ञान से लेकर चेतना जगत के विभिन्न घटकों की गहन शोध उनके द्वारा सम्पन्न होती रही व निष्कर्ष के रूप में उनके प्रतिपादन दर्शन, मनोविज्ञान, चिकित्सा, विज्ञान तथा पदार्थ जगत सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्धारणों के रूप में सामने हैं। देव संस्कृति के हर पक्ष, प्रतीक–कर्मकाण्ड, मन्त्रोच्चार–यजन प्रक्रिया, अग्निहोत्र तथा जीवन यज्ञ को उनने सूक्ष्म प्रज्ञा के द्वारा गहराई से विज्ञान सम्मत आधार पर विवेचन कर प्रतिपादित किया।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वैदिक दिनचर्या का शुभारंभ हवन, यज्ञ, अग्निहोत्र आदि से होता था। तपस्वी ऋषि–मनीषियों से लेकर सद्गृहस्थों, बटूक–ब्रह्मचारियों तक नित्य प्रति प्रातः सायं यज्ञ करके संसार के विविध विधि रोगों का निवारण किया करते थे। यज्ञ को भारतीय संस्कृति का मूल माना गया है। प्राचीनकाल से ही आत्मसाक्षात्कार से लेकर स्वर्ग–सुख, बंधन–मुक्ति, मनःशुद्धि, पाप प्रायश्चित, आत्मबल, ऋद्धि–सिद्धियों आदि के केन्द्र में यज्ञ ही थे। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ प्राप्त होते हैं। गायत्री महामन्त्र के साथ–साथ शास्त्रोक्त हर्विद्रव्यों के द्वारा भावप्रवणता के साथ जो विधिवत हवन किया जाता है, उससे एक दिव्य वातावरण विनिर्मित होता है। उस दिव्य यज्ञीय वातावरण में बैठने मात्र से रोगी मनुष्य निरोग हो सकते हैं। चरक ऋषि ने अपने अनुपम ग्रन्थ चरक संहिता में लिखा है–''आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को विधिवत् हवन करना चाहिए।'' बुद्धि को शुद्ध करने की यज्ञ में अपूर्व क्षमता है। जिन व्यक्तियों के मस्तिष्क दुर्बल हैं, बुद्धि मलीन है अथवा मानसिक विकृतियों से घिरे हुए हैं, यदि वे यज्ञ करें तो उससे उनकी मानसिक दुर्बलताएं शीघ्र दूर हो सकती हैं। यज्ञ करने वाले स्त्री–पुरूषों की संतान बलवान, बुद्धिमान, सुन्दर और दीर्घजीवी होती है। यज्ञ चिकित्सा विज्ञान का उद्देश्य विश्वमानवता को समग्र स्वास्थ्य उपलब्ध कराना है।

यज्ञोपैथी से मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि के साथ–साथ शारीरिक रोगों के निवारण में भी सहायता मिलती है। यज्ञोपैथी सरल और उपयोगी चिकित्सा पद्धति है, जिसके द्वारा शरीर के लिए मारक और पोषक दोनों तत्वों को आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

प्रस्तुत इकाई में आप यज्ञोपैथी की सर्वांपूर्ण चिकित्सा प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे। साथ ही यह जान पाएंगे कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति (एलोपैथी) की कार्य प्राणाली संवर्धन की अपेक्षा सारा ध्यान संहार उपचार पर ही केन्द्रित रहता है। यह एकांगीपन जब तक दूर नहीं किया जाएगा, तब तक चिकित्सा प्रक्रिया अधूरी ही बनी रहेगी। परन्तु यज्ञोपैथी एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है, जिसके द्वारा वायुभूत बनाए गए पदार्थों का सेवन मुंह द्वारा खाए गए और पेट द्वारा पचाए गए पदार्थों की तुलना में कहीं अधिक लाभप्रद पौष्टिक सिद्ध होता है। बीमारियों से लड़ने वाली जीवनीशक्ति व विषाणुओं के आक्रमण को निरस्त करने में भी यज्ञोपैथी का सफल उपयोग है। आजकल रोग निदान के आधुनिकतम साधनों के होते हुए भी रोगों का बाहुल्य है, एक रोग मिटता है और उसके लिए प्रयुक्त औषधि ही दूसरे रोग को जन्म देती है, इस तरह उपचार के नाम पर हताशा ही हताशा है।

हमें उम्मींद है कि आपको इससे यज्ञ के सूक्ष्म विज्ञान का सर्वांपूर्ण ज्ञान हो सकेगा तथा महसूस होगा कि ऐसी चिकित्सा पद्धति जो मानव का सम्पूर्ण उपचार कर सके अर्थात् आस्थाओं का शोधन, मानसिक विकारों का निराकरण, शरीरगत अव्यवस्थाओं का सुगढ़तापूर्ण संयोजन कर सकने वाली कोई चिकित्सा पद्धति है तो वह केवल यज्ञोपैथी ही है।

16.2 उद्देश्य

- यज्ञोपैथी का अर्थ व उसके प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- यज्ञोपैथी के सूक्ष्म विज्ञान के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- यज्ञोपैथी के महत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- यज्ञोपैथी के सूक्ष्म उपचार प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे।
- असाध्य रोगों को दूर करने के लिए यज्ञोपैथी की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- विभिन्न शारीरिक व मानसिक रोगों के लिए विशेष हवन–सामग्री का अध्ययन करेंगे।

16.3 यज्ञोपैथी : एक सर्वांगपूण उपचार प्रक्रिया

यज्ञ को भारतीय संस्कृति का मूल माना गया है। प्राचीनकाल से ही आत्मसाक्षात्कार से लेकर स्वर्ग–सुख, बन्धन–मुक्ति, मनःशुद्धि, पाप प्रायश्चित, आत्मबल, ऋद्धि–सिद्धियों आदि के केन्द्र यज्ञ ही थे। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ प्राप्त होते हैं। उससे एक दिव्य वातावरण विनिर्मित होता है। उस दिव्य यज्ञीय वातावरण में बैठने मात्र से रोगी मनुष्य नीरोग हो सकते हैं। चरक ऋषि ने अपने अनुपम ग्रंथ चरक संहिता में लिखा है –''आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को विधिवत् हवन करना चाहिए।'' बुद्धि को शुद्ध करने की यज्ञ में अपूर्व क्षमता है। जिन व्यक्तियों के मस्तिष्क दुर्बल हैं, बुद्धि मलीन है अथवा मानसिक विकृतियों से घिरे हुए हैं यदि वे यज्ञ करें तो उससे मानसिक दुर्बलताएं शीघ्र ही दूर हो सकती हैं। गीता आदि शास्त्रों में इसलिए यज्ञ को आवश्यक धर्मकृत्य बताया गया है।

यज्ञ चिकित्सा का दूसरा नाम 'यज्ञोपैथी' है। यह एक दिव्य एवं समग्र चिकित्सा की विशुद्ध वैज्ञानिक पद्धति है जो एलोपैथी, होम्योपैथी आदि उपचार पद्धतियों से अत्यन्त श्रेष्ठ व सफल सिद्ध हुई है। भिन्न–भिन्न रोगों के लिए विशेष प्रकार की हवन सामग्री प्रयुक्त करने पर उनके जो परिणाम सामने आए हैं, वे बहुत ही उत्साहजनक हैं। यज्ञोपैथी का मूल सिद्धान्त ही यह है कि जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती जाती है, वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली एवं उपयोगी बनती जाती है, विशिष्ट मन्त्रों के साथ जब औषधियुक्त हविर्द्रव्यों का हवन किया जाता है तो यज्ञीय ऊर्जा से पूरित धूम्र ऊर्जा रोगी के शरीर में रोम छिद्रों एवं नासिका द्वारा अन्दर प्रविष्ट करती है और शारीरिक एवं मानसिकरोगों की जड़ें कटने लगती हैं। इससे रोगी शीघ्र ही रोगमुक्त होने लगता है। इतना ही नहीं मंत्र ऊर्जा के प्रभाव से मन पर चढ़ी हुई कषाय–कल्माषों की परतें भी घुलने–मिटने लगती हैं और व्यक्ति आत्मोत्कर्ष की ओर अग्रसर होने लगता है।

16.3.1 यज्ञोपैथी : एक समग्र चिकित्सा पद्धतिः मानवीय काया सृष्टि की सर्वोपरि संरचना है। इसके रोम–रोम में विलक्षणता संव्याप्त है। शरीर की स्थूल गतिविधियों के मूल

में अनेकानेक जादू भरी विशेषताएं छिपी पड़ी हैं। पंचतत्व से बनी इस काया का प्रकृतिपरक स्थूल अंश ही जब इतना अद्भूत है तो फिर उसकी सूक्ष्म सत्ता की महत्ता तो अकल्पनीय है। सच तो यह है कि स्थूल–सूक्ष्म की कृपा पर ही निर्भर है। इस तथ्य का प्रतिपादन शरीर के महत्वपूर्ण घटक हारमोन्स करते हैं। कार्य–संरचना एवं व्यक्तित्व का निर्धारण तो ये करते ही हैं। जीवनीशक्ति, जिजीविषा, भावना, संवेदनाएं, आवेग आदि महत्वपूर्ण अदृष्य सामर्थ्यों का विकास भी हारमोन्स की दया से ही होता है।

उपरोक्त तथ्य दृश्यमान स्थूल के अन्तराल में छिपी सूक्ष्म सत्ता की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं, पर मानव ने मात्र स्थूल जगत की क्रियाओं एवं स्वरूप को देखा है तथा उसी से प्रभावित भी हुआ है। अनेकों विभ्रम एवं रोग–शोकों का कारण यही बाह्य दृष्टि रही है। मात्र बाह्य सुख सुविधाओं पर ध्यान देने का दुष्परिणाम यह हुआ है कि अन्तः के स्रोत सूख गए हैं। अन्तःकरण की संवेदनाओं का स्तर ही शारीरिक स्वास्थ्य का निर्धारण करता है। वृक्षका बाहरी स्वरूप तो फल फूल पत्तियों के रूप में दिखाई देता है पर इस बाह्य ऐश्वर्य के मूल में जो सत्ता काम कर रही है वह उसकी जड़ में है यही बात, शारीरिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में भी है। अन्तःकरण की शुष्कता एवं मनोविकार बाहर से स्वस्थ दिखाई देने वाले व्यक्ति को भी आध्यात्मिक मान्यता के अनुसार अस्वस्थ ही ठहराते हैं। महत्ता यहां भी इन सूक्ष्म विकारों की है जो स्थूल चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देते।

आवश्यकता आज ऐसी चिकित्सा पद्धति की है जो मानव का सम्पूर्ण उपचार कर सके, समग्र उपचार अर्थात् आस्थाओं का परिशोधन, मानसिक विकारों का निराकरण एवं शरीरगत अव्यवस्थाओं का सुगढ़ता पूर्ण संयोजन कर सके। इसी वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में आर्ष मानवों ने यज्ञ चिकित्सा की परिकल्पना की थी। यज्ञ ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा दिव्य संस्कारीय औषधियों एवं पुष्टाई को सूक्ष्म संस्थानों तक पहुचाया जा सकता है। सूक्ष्म विकारों की जड़जिन स्थानों पर होती है, वहां तक अन्य औषधियां नहीं पहुच पातीं। परन्तु धूमीकृत औषधि विभिन्न मार्गो द्वारा पहुंचकर तत्काल अपना प्रभाव दिखाती है एवं मानव को कष्ट पीड़ा से मुक्ति दिलाती है। यह विज्ञान अपने चिरपुरातन समय में शिखर पर था एवं उस काल के वैज्ञानिकों ने इस पर शोध कर इस पद्धति को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया था।

यज्ञ चिकित्सा के आधार सुदृढ़ हैं। यज्ञोपैथी का मूलदर्शन है रोग की जड़ तक औषधियों की पहुंच। श्वास पर ही मानव जीवन आधारित है। श्वास–प्रश्वास के माध्यम से प्राण वायु का रक्त में प्रवेश एवं विकारों का निष्कासन होता है। रक्त तक पहुंचने के लिए किसी भी वस्तु के लिए सर्वसुलभ मार्ग श्वास मार्ग है। क्लोरोफार्म, ईथर नाइट्रस–आक्साइड द्वारा मूर्छित कर आपरेशन करने की विधि यही विचार कर निकाली गयी है। दम घुटने पर अथवा मृत्यु के अन्तिम क्षणों में नाक मार्ग से आक्सीजन देकर ही रोगी को जीवित करने की चेष्टा चिकित्सकों द्वारा की जाती है। स्वस्थ रहने के लिए स्वच्छ वायु की महत्ता इसी कारण दी गयी है।

यज्ञ शब्द के तीन अर्थ होते हैं। दान–देवपूजन–संगतिकरण। इन्हें प्रकारान्तर से उदारता, उत्कृष्टता एवं सहकारिता की दिषाधारा कहा जा सकता है। यज्ञीय दर्शन को जीवन में उतारने वाला कोई भी व्यक्ति इसी जीवन में स्वस्थ समृद्ध, समुन्नत एवं सुसंस्कृत रह सकता है। ऐसे व्यक्ति को आंतरिक प्रसन्नता एवं बाह्य प्रफूल्लता का अभाव नहीं रहता । यज्ञकृत्य कराने और सम्मिलित होने वालों को प्रत्येक विधि–विधान की व्याख्या करते हुए यह समझाया जाता है कि उनका चिन्तन और चरित्र, दृष्टिकोण एवं व्यवहार निरन्तर

उत्कृष्टता की ओर बढ़ता रहे। उद्गाता यही गाते हैं। अध्वर्यु यही सिखाते हैं, ब्रह्मा इसी की योजना बनाते हैं और आचार्य को ऐसी व्यवस्था बनानी होती है कि इसी प्रकार भावप्रवाह उस समूचे वातावरण पर छाया रहे। रोगोपचार के पीछे यही तथ्य छिपा हैकि नीतिवान नीरोग, बलिष्ठ एवं दीर्घजीवी होता है। यज्ञ के पुनीत अनुष्ठान के साथ ही इसी नीतिदर्शन को प्रत्येक याजक को समझाया जाता है।

यज्ञ विज्ञान की अनुसंधान प्रक्रिया का शुभारम्भ जिन प्रश्नों से किया गया है वे हैं—यज्ञ से रोग निवारण, स्वास्थ्य सम्वर्धन, प्रकृति सन्तुलन एवं वनस्पति संवर्धन, दैवी अनुकूलन, समाज शिक्षण, शक्ति जागरण तथा यज्ञ की विकृतियँ एवं विसंगतियाँ। यज्ञ विज्ञान के इन्हीं प्रमुख आठ पक्षों को प्रयोग परीक्षण की कसौटी पर रखा गया है।

16.3.2 एक सशक्त वैकल्पिक उपचार पद्धति :—

यज्ञ चिकित्सा इतनी सरल और उपयोगी है कि उसके आधार पर मारक और पोषक दोनों ही तत्वों को शरीर में आसानी से पहुंचाया जा सकता है। यों यज्ञ विज्ञान के अनेक पक्ष हैं। इनमें एक रोगोपचार भी है। मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि के साथ—साथ शारीरिक रोगों के निवारण में भी इससे ठोस सहायता मिलती है।

औषधि उपचार में शरीर के विभिन्न अवयवों तक पदार्थ को पहुंचाने का माध्यम रक्त है। रक्त यदि दूषित निर्बल हो तो यह प्रेषित उपचार पदार्थ का ठीक तरह परिवहन नहीं कर सकता। फिर एक कठिनाई और भी है कि रक्त में रहने वाले स्वास्थ्य प्रहरी श्वेत कण किसी विजातीय पदार्थ को सहन नहीं करते, उससे लड़ने—मरने को तैयार बैठे रहते हैं। औषधि जब तक रोग—कीटाणुओं पर आक्रमण होन पर प्रयुक्त औषधि और स्वास्थ्य कण आपस में भिड़ जाते हैं और यह नया विग्रह और खड़ा हो जाता है। पेट की पाचन क्रिया रक्त में उन्हीं पदार्थों को सम्मिलित होने देती है जो शरीर संरचना के साथ तालमेल रखते हैं। इसके अतिरिक्त जो बच जाता है, वह विजातीय कहा जाता है और उसे मल, मूत्र, स्वेद, कफ आदि के रूप में बाहर किया जाता है। इस पद्धति को देखते हुए यह भी एक अति जटिल कार्य है कि औषधियों में रहने वाले रसायन किस प्रकार विषाणुओं तक पहुंचे और किस तरह वहां जाकर अपना निवारक उपक्रम आरंभ करके उसे सफलता के स्तर तक पहुँचाएं।

इस कठिनाई का हल यज्ञ—प्रक्रिया को चिकित्सा के लिए प्रयुक्त करने पर सहज ही संभव हो जाता है। औषधि को पेट में पचाकर रक्त में मिलकर श्वेतप्रहरियों से लड़ने के उपरान्त पीड़ित स्थान तक पहुंचने की लम्बी मंजिल पार नहीं करनी पड़ती वरन इस सारे जंजाल से बचकर एक नया ही रास्ता उसे मिल जाता है। शरीर शास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि मात्र रक्त ही जीवकोशों की खुराक पूरी नही करता, वरन आहार श्वास द्वारा भी शरीर में पहुँचता है और वह इतना महत्वपूर्ण होता है कि उसकी गरमी मुंह द्वारा खाए और पेट द्वारा पचाए गए आहार की तुलना में किसी भी प्रकार से कम नहीं होती। रक्त की भांति प्राणवायु भी ऑक्सीजन के रूप में समस्त शरीर में परिभ्रमण करती है। पोषण पहुंचाने और गंदगी को हटाने में उसका बहुत बड़ा हाथ है। दृश्य रूप से जो कार्य पाचन और रक्ताभिसरण पद्धति से होता है अदृश्य रूप से वही सारा कार्य श्वासोच्छास क्रिया द्वारा भी सम्पन्न होता है। यह दोनों ही पद्धतियाँ मिलकर दो पहियों की गाड़ी की तरह जीवन रथ को गतिशील बनाए रहती है।

16.3.3 यज्ञोपैथी का सूक्ष्म विज्ञान :–स्वास्थ्य सुधार और रोग निवारण की आवश्यकता को पूरा करने के लिए श्वासोच्छास प्रक्रिया को अवलंम्बन बनाने पर अधिक लाभ उठाया जा सकता है जो रक्ताभिसरण पद्धति से आमतौर पर काम में लाया जाता है। इस मायम से न केवल विषाणुओं से सफलतापूर्वक संघर्ष संभव हो सकता है वरन् पोषण की आवश्यकता भी पूरी हो सकती है। यज्ञ द्वारा वायुभूत बनाई गई औषधियाँ सूक्ष्मता की दृष्टि इस स्तर पर पहुँच सकती है कि विषाणुओं से भी सूक्ष्म होने की विशेषता के कारण उन पर आक्रमण करके सरलतापूर्वक परास्त कर सकें। पाचन, परिवहन और प्रहरियों से उलझने जैसे झंझट इस मार्ग में नहीं हैं और विलय का अवरोध भी नहीं है। सांस द्वारा अभीष्ट पदार्थों को शरीर के अंतरंग किसी भी अंग–अवयव तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है। इस चिकित्सा सिद्धान्त के अनुसार विषाणुओं का मारण जितना आवश्यक समझा जाता है, उससे कहीं अधिक स्वस्थ कोशिकाओं में समर्थता का एक पक्ष जहाँ विषाणुओं को मारना होता है, वहीं दुर्बलता को दूर कर संबलता का परिपोषण करना भी होता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति का सारा ध्यान संहार उपचार पर ही केन्द्रित रहता है। यह एकांगीपन जब तक दूर नहीं किया जाएगा, तब तक चिकित्सा प्रक्रिया अधूरी ही बनी रहेगी।

यज्ञ चिकित्सा में ये दोनों ही विशेषताएँ विद्यमान हैं। उसके माध्यम से उपयोगी रासायनिक पदार्थों को इतना सूक्ष्म बना दिया जाता है कि इस कारण वे अपने–अपने उपयुक्त प्रयोजनों को पूरा कर सकें। अणुओं में पाया जाने वाला चुंबकत्व अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए वातावरण में से अभीष्ट मात्रा अनायास ही ग्रहण करता रहता है। यज्ञ–प्रक्रिया के सहारे वायुभूत रासायनिक पदार्थ शरीर संस्थान के समस्त भीतरी अवयवों में अनायास ही जा पहुँचते हैं और स्थानीय जीवाणुओं की आवश्यकता पूरी करते हैं। पेड़ आकाश में परिभ्रमण करने वाले बादलों को अपनी ओर खींचते हैं। घास की पत्तियाँ हवा में रहने वाले जलांश को अपने ऊपर ओंस के रूप में बरसा लेती है। सशक्त वायुभूत रसायन जब शरीर के भीतर पहुंचता है तो वहाँ की आवश्यकता सहज ही पूरी होने लगती है।

यज्ञोपैथी का सिद्धान्त विज्ञान के मूल सिद्धान्त पर आधारित है। विज्ञान में ताप, ध्वनि और प्रकाश को शक्ति की मूलभूत इकाई माना गया है। मन्त्र केवल ध्वनि है। शब्द की अपेक्षा ताप और प्रकाश की गति तीव्र है। मन्त्र को व्यापक बनाने के लिए उसके साथ ताप और प्रकाश को यज्ञ के रूप में जोड़ना पड़ता है तभी वह अधिक शक्तिशाली और विश्वव्यापी बनता है तथा विभिन्न उददेश्यों में कारगर होता है। किसी भी चिकित्सा की सफलता के लिए भावनाएँ एवं विश्वास दोनों आवश्वक है। यज्ञ चिकित्सा के अन्तर्गत इन दोनों तत्त्वों का समावेश हमेशा रहता है।

यज्ञ द्वारा रोग निवारण की प्रक्रिया – यज्ञाग्नि जीवन ऊर्जा का मूल आधार है। जब हम यज्ञाग्नि में घृत, अन्न औषधियों आदि की आहुति देते है तब उनकी रोग निवारक गन्ध वायु मण्डल में फैल जाती है। उस वायु को श्वास द्वारा हम अपने फेफड़ों में भरते हैं। वहाँ उस वायु का रक्त से सीधा सम्पर्क होता है। वह वायु अपने विद्यमान रोग निवारक परमाणुओं को रक्त में पहुँचा देती है। उससे रक्त में जो रोग कृमि होते हैं वे मर जाते हैं और जब हम वायु को बाहर निकालते है तब उसके साथ वे दोष भी हमारे शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ द्वारा सुसंस्कृत वायु में बार–बार श्वास लेने से शनैः–शनैः रोगी स्वस्थ हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न – क

1 यज्ञोपैथी का मूलदर्शन क्या है ?

2 यज्ञोपैथी का सिद्धान्त विज्ञान के किन मूल सिद्धान्त पर आधारित है ?

3 जीवन ऊर्जा का मूल आधार क्या है ?

16.4 यज्ञ का समर्थ उपचार प्रक्रिया

यज्ञ ज्ञान का भण्डार है और विज्ञान का उद्‌गम। वैदिक ऋषियों द्वारा अविष्कृत यज्ञ मात्र श्रद्धा नहीं अपितु अद्‌भूत विज्ञान है, जो बहु उपयोगी है। यह ईश्वर भक्ति का साधन है, पर्यावरण की शुद्धि का कारक है, ग्रह शुद्धि का आधार, रोगों के बचाव के साधन है और रोगाणु नाशक है।

यज्ञ की वैज्ञानिकता को समझने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है। –

1 यज्ञ कुण्ड की आकृति
2 समिधाओं का चुनाव और उनका विशेष दहन
3 मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण
4 यज्ञ का समय विचार (मुहुर्त एवं प्रभाव)
5 सामग्री का गुण विश्लेषण।

16.4.1 यज्ञ कुण्ड की आकृति – यज्ञ कुण्ड का ज्यामितीय आकार बहुत महत्व रखता है यह उल्टे पिरामिड के आकार का होता है। नीचे संकरा ऊपर चौड़ा। जितना आयतन होता है, उतनी ही समिधाएँ डाली जाती हैं व उतनी ही हवन सामग्री ; ताकि संतुलित ऊर्जा उत्पन्न होती रहे, अग्नि प्रदीप्त रहे और धुआँ उत्पन्न न हो। विभिन्न कामनाओं एवं यज्ञ के विभिन्न स्वरूपों के अनुसार कुण्डों की आकृति परिवर्तित होती है। जैसे – योनि कुण्ड, अष्ट कुण्ड, षष्टकुण्ड आदि। दूसरे शब्दों में इसे हम यज्ञ का एक विशेष यन्त्र कह सकते हैं जो कि ब्रह्माण्डीय शक्ति को आकर्षित कर अभिष्ट फल प्रदान करता है। मध्यमा और अनामिका अंगुली पर जितनी मात्रा में जौकुट हवन सामग्री आ जाए लेनी चाहिए। ताम्रपात्र या हवन कुण्ड इतनी दूर होता है कि याजक तो अधिक गर्मी अनुभव न करे और जो भी धूम्र ऊर्जा बने, वह श्वास मार्ग से अन्दर जाती रहे। आधे घण्टे का औसत प्रयोग पर्याप्त माना जाता है।

यों तो हवन कुण्ड कई प्रकार के होते हैं, और विविध यज्ञीय प्रयोजनों में उद्‌देश्यानुसार प्रयुक्त होते हैं। प्रख्यात मनीषी श्रीमद विट्‌ठल दीक्षित ने अपने अनुपन ग्रंथ 'मण्डपकुण्डसिद्धि' में कुण्डों के दो भेद बतलाये गये हैं – 1. आयाम भेद एवं 2. आकृति

भेद। आयाम भेद के अनुसार हवनकुण्ड पांच प्रकार के होते हैं– एकहस्तात्मक, द्विहस्तात्मक, चतुर्हस्तात्मक, षड्हस्तात्मक, अष्टहस्तात्मक और दसहस्तात्मक। आकृति भेद के अनुसार कुण्डों के तीन प्रकार बताए गये हैं – 1. कोणात्मक कुण्ड– जिसके अन्तर्गत त्रिकोणकुण्ड, चतुस्त्रकुण्ड, पंचास्त्र,षडास्र, सप्तास्र, अस्टास्र, नवास्र, रूद्रकुण्ड आते हैं। 2. वर्तुलकुण्ड–इसके अन्तर्गत वृत्तकुण्ड, अर्धचन्द्र, पद्म, एवं सूर्य कुण्ड आते हैं। 3. विशिष्ट कुण्ड – इसके अन्तर्गत योनि, असि, कुंत, चाप, शनि, आदि ग्रह के कुण्ड आते हैं। शारदातिलक तंत्र तृतीय पटल, श्लोक 85–87 मे कहा गया है– चतुस्रकुण्ड का प्रयोग करने से कार्य सिद्धि होती है। योनि कुण्ड के पगयोग से समस्त स्त्री रोगों का शमन एवं पुत्र की प्राप्ति होती है। अर्धचन्द्र कुण्ड से कल्याण होता है। त्रिकोणकुण्ड के प्रयोग से शत्रु दमन एवं वर्तुल या वृत्ताकार कुण्ड से शांति प्राप्ति होती है। षडस्र कुण्ड का प्रयोग मारण कर्म के लिए किया जाता है। पद्म कुण्ड को सौम्य, पुष्टिवर्धक, परम शुभदायी, सुख–समृद्धि देने वाला तथा वर्षा कारक माना गया है। अष्टास्र कुण्ड सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला तथा आरोग्य प्रदान करने वाला होता हैं पंचास्र कुण्ड का उपयोग अभिचार क्रियाओं की शांति के लिए तथा सप्तास्र कुण्ड का उपयोग भूतदोषों की शांति के लिए होता है।

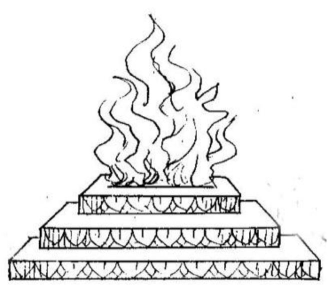

चतुष्कोणास्र कुण्ड

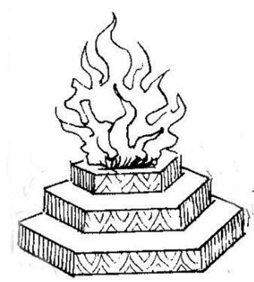

समषडस्रकुण्ड

वृत्त कुण्ड

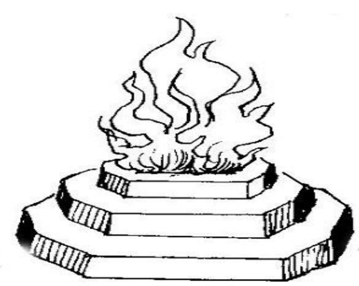

सम अष्टास्र कुण्ड

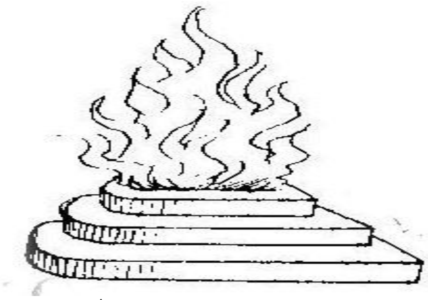

योनिकुण्ड पद्म कुण्ड

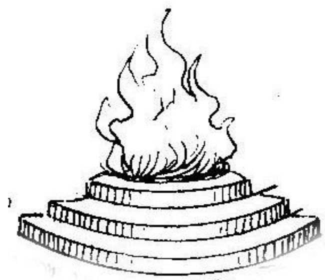
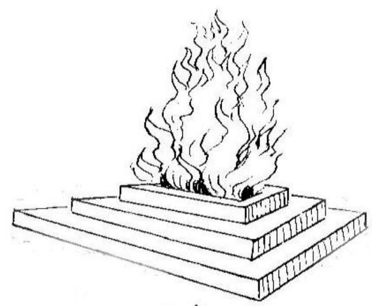

अर्द्धचन्द्र कुण्ड त्रिकोण कुण्ड

16.4.2 समिधाओं का चुनाव और उनका विषेष दहन – यज्ञ में समिधा का प्रयोग करने में महत्वपूर्ण विज्ञान छुपा हुआ है, जिन वृक्षों की समिधाएँ प्रयोग में ली जाती है, उनमें विशेष प्रकार के गुण होते हैं। किस प्रयोग के लिए किस प्रकार की हव्य वस्तुएँ होमी जाती है इसका भी विज्ञान है। उन वस्तुओं के जलने से एक विशेष गुण युक्त सम्मिश्रण तैयार होता है जो वायुमंडल में एक विशिष्ट प्रभाव पैदा करता है। समिधा के रूप में पलाश, गुलर,आम, मदार, पीपल, शमी आदि का प्रयोग होता है। भिन्न–भिन्न वृक्षों की समिधाओं के फल भी अलग–अलग कहे गये हैं। ग्रहों और देवताओं के हिसाब से भी कुछ समिधाएँ शास्त्रों में उल्लेख किया गया है।

देवताओं के लिए पलाश वृक्ष की समिधा कहा गया हैं पीपल सन्तान, संतति के लिए, गुलर को स्वर्ग देने वाली, शमी को पाप नाश करने वाली, दूर्वा को दीर्घायु देने वाली, मदार को रोग नाश करने वाली और कुशा की समिधा सभी मनोरथ को सिद्ध करने वाली बताई गई है।

16.4.3 मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण – मनुष्य की शक्ति उसकी पहुंच बहुत सीमित है स्थूल रूप से वह दिव्य शक्तियों से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता है। सूर्य के पास जाकर कोई बैठना चहेगा तो उसका अस्तित्व ही मिट जाएगा। अग्नि, इन्द्र, वरूण यह सभी शक्तियाँ है। शक्तियों से स्थूल सम्पर्क नहीं साधा जा सकता है। इसलिए वैदिक ऋषियों ने उसके लिए एक विज्ञान की खोज की। जिसे वैदिक मन्त्र कहा जाता है। यज्ञ प्रक्रिया में मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण से विभिन्न प्रकार के तरंग पैदा होता है।

1 ध्वनि तरंग

2 भाव तरंग
3 विचार तरंग
4 औषधिय गैस तरंग।

वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्नि के मुख में आहुतियाँ डालते हैं। शब्द शक्ति भावनाओं के साथ पदार्थ को सूक्ष्म बनाकर उर्ध्वलोकों तक पहुँचाती है। मन्त्र में जिस शक्ति की प्रेरणा होती है अग्नि उस आहुति को उस देवता तक पहुँचा देती है। इस विज्ञान को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से ऋषियों ने खोजकर मानव जाति की कठिनाई दूर कर दी और किसी भी देव शक्ति से सम्पर्क स्थापित कर लाभान्वित होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

16.4.4 यज्ञ का समय विचार (मुहुर्त एवं प्रभाव) – परमात्मा की प्रसन्नता के लिए पापों से छुटकारा पाने के लिए, बड़े यज्ञ जैसे रूद्रयज्ञ, लक्ष्य होम, कोटि होम, ज्योतिष्टोम आदि का अनुष्ठान करें तो ज्योतिष नियमों के अनुसार उनके मुहुर्त निकाले जाते हैं।

परसुराम दीपिका में कहा गया है जब पास में पैसा हो और चित्त में श्रद्धा हो तो उसी समय को पुण्य काल, शुभमुहुर्त मान लेना चाहिए। क्योंकि जीवन का कोई ठिकाना नहीं है आज है कल प्राण चला जा सकता है। इसलिए यज्ञ आदि शुभ कर्मों के लिए सभी दिन शुभ है।

सकाम यज्ञों में मुहुर्तों की आवश्यकता पड़ती है। यज्ञ आदि शुभ कर्मों में सोम, बुद्ध, गुरु, शुक्रवार सिद्धिप्रद हैं। **सोम सोम्य गुरु शुक्र वासराः कर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः।** (रत्नमाला) शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, द्वादशी और त्रयोदशी विशेष उत्तम है। नारद संहिता में आर्द्रा, शतभिषा, स्वाति, रोहिणी, श्रवण, पूर्वाषाढ़ा, जेष्ठा, श्लेषा, रेवती, चित्रा, हस्त, घनिष्ठा यह नक्षत्र यज्ञ में शुभ माने गये हैं।

16.4.5 सामग्री का गुण विष्लेषण – यज्ञ कार्य में प्रयुक्त होने वाले सम्पूर्ण सामग्री जैसे काष्ठ पात्र, पूजन पात्र, धूपदीप नैवेद्य एवं हवन सामग्री। इनकी शुद्धता एवं पवित्रता भी यज्ञ की महत्ता में विशेष स्थान रखता है।

ऋतुओं के आधार पर हवन सामग्री प्रयोग में लाया जाता है। छः ऋतुओं के लिए अलग–अलग हवन सामग्री प्रयुक्त होता है।

अभ्यास प्रश्न – ख

4. कुण्डों के कितने भेद बतलाये गये हैं ?
5. किन यज्ञों में मुहुर्तों की आवश्यकता पड़ती है ?

16.5 यज्ञ चिकित्सा का विधि–विधान

हवन करने वाले हवन कुण्ड के आसपास बैठें। यदि रोगी भी हवन पर बैठ सकता हो तो उसे पूर्व की ओर मुख करके बैठाना चाहिए। ऐसे हवन देवावाहन के लिए नहीं, चिकित्सा प्रयोजन के लिए होते हैं, इसलिए इनमें देवपूजन आदि की सर्वांपूर्ण प्रक्रियाएँ न बन पड़ें तो

चिन्ता की बात नहीं है। शरीरशुद्धि, मार्जन, शिखाबंधन, आचमन, प्राणायाम, न्यास आदि गायत्री मंत्र से करके कोई ईश्वर प्रार्थना हिन्दी या संस्कृत की करनी चाहिए। विस्तृत यज्ञीय कर्मकाण्ड के लिए ईकाई 15 का अवलोकन किया जा सकता है। वेदी और यज्ञ का जल, अक्षत आदि से पूजन करके गायत्री मंत्र अथवा सूर्य गायत्री मंत्र के साथ हवन आरंभ कर देना चाहिए। यदि कोई जानकार यज्ञकर्ता हो, तो उन पद्धतियों में से जितना अधिक संभव हो, विधि–विधान से प्रयोग कर सकता है। यदि रोगी के निकटवर्ती को उतनी जानकारी न हो तो एक लोटे में जल तथा आज्याहुति एवं वसोधारा आदि के लिए कटोरी में घृत रख कर रोग की विशिष्ट हवन सामग्री से आहुतियाँ देनी आरंभ कर देनी चाहिए। कम से कम 24 आहुतियां अवश्य देनी चाहिए।

हवन के पश्चात् समीप रख हुए जल पात्र में दूर्वा, कुष अथवा पुष्प डूबोकर गायत्री मंत्र पढ़ते हुए रोगी पर अभिसिंचन करना चाहिए। साथ ही यज्ञ की भस्म मस्तक, हृदय, कण्ठ, पेट, नाभि एवं दोनों भुजाओं पर लगानी चाहिए। इसी प्रकार घृतपात्र में जो घृत बचा रहता है, उसमें से कुछ बूंदें लेकर रोगी के मस्तक एवं हृदय पर लगाना चाहिए। देखा गया है कि इन प्रयोगों से सामान्य औषधि चिकित्सा की अपेक्षा रोगी को अधिक लाभ मिलता है। इसका प्रभाव रोगी के शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही क्षेत्रों में पड़ता है, परिणामस्वरूप वह जल्दी स्वस्थ हो जाता है। जीवनी शक्ति बढ़ जाने से वह दुबारा उस बीमारी से आक्रान्त नहीं होने पाता।

शास्त्रों में सूर्य को स्वास्थ्य का केन्द्र माना गया है। सूर्य में रोग निवारण की प्रचंण्ड शक्ति विद्यमान है। यजुर्वेद में सूर्य को संसार की आत्मा कहा गया है –''सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च'' शास्त्रकारों का भी कहना है कि ''आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'' अर्थात् आरोग्य की कामना सूर्य संपर्क से करें। सूर्य शक्ति का प्रयोग करने से कई प्रकार के रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है और पूर्ण दीर्घायुष्य का आनन्द उठाया जा सकता है। नीरोगता, बलिष्ठता, दीर्घायु एवं सुख–समृद्धि के लिए सूर्य गायत्रीमंत्र का उपयोग किया जाता है।

सूर्य गायत्री मंत्र इस प्रकार है –

''ऊँ भूर्भुवः स्वः भास्कराय विद्महे दिवाकराय धीमहि तन्नः सूर्यो प्रचोदयात्।''

उक्त् मंत्र का उच्चारण करते हुए मंत्र के अंत में 'स्वाहाः' इदम् सूर्याय इदम् न मम्''। कहते हुए कम से कम चौबीस आहुतियाँ नित्य डालनी चाहिए।

16.6 यज्ञ चिकित्सा का सर्वोत्तम काल

यज्ञ चिकित्सा का लगभग वही समय है जो सामान्यतया यज्ञ का होता है। अरूणोदय से लेकर अर्थात् सुबह लगभग पांच–छः बजे से लेकर नौ बजे तक एवं शाम को सूर्यास्त से एक घण्टा पहले से सूर्यास्त–गोधूलि बेला तक दो तीन घण्टे की अवधि में की गई यज्ञ चिकित्सा सर्वाधिक लाभ पहुंचाती है। शास्त्रों में यज्ञोपचार का सर्वोत्तम समय सूर्योदय एवं सूर्यास्त काल की संधिबेला को माना गया है। विभिन्न वैज्ञाानिक प्रयोग–परीक्षणों द्वारा भी अब यह तथ्य सिद्ध हो चुका है।

16.7 यज्ञोपैथी व रोगोपचार

यज्ञ विज्ञान के अनेकों पक्ष हैं। इसमें मानसिक और आत्मिक स्वास्थ की अभिवृद्धि के साथ शारीरिक रोगों के निवारण में भी असाधारण सफलता मिलती है। स्वास्थ्य संवर्द्धन की यह उपचार प्रक्रिया इतनी सरल और उपयोगी है कि इसके आधार पर मारक और पोषक दोनों ही तत्वों को शरीर के विभिन्न अंग–अवयवों में आसानी से पहुँचाया जा सकता है। विभिन्न औषधीय वनस्पतियों, पोषक द्रव्यों की हवि से हर कोई व्यक्ति बल, पोषण एवं रोगनिरोधक शक्ति प्राप्त कर सकता हैतथा आगत व अनागत विभिन्न रोगों से बचकर दीर्घायुष्य प्राप्त कर सकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यज्ञीय ऊर्जा के साथ सूक्ष्मीभूत हुए औषधीय एवं पोषक तत्व सांस के साथ सीधे रस–रक्त में शीघ्रता से मिल जाते हैं और जैवकोशिकाओं को प्रभावित कर शरीर के रोग प्रतिरोध क्षमता की अभिवृद्धि एवं जीवनी शक्ति को विकास असाधारण रूप से करते हैं। इसके प्रभाव से मन मस्तिष्क से संबंधित सिरदर्द, आधासीसी, अनिद्रा, सनक, पागलपन, उन्माद आदि एवं नासिका, गला, फेफड़े, आदि से संबंधित सर्दी, जुकाम, खांसी, दमा, ब्रौंकाइटिस, टी.बी. आदि रोगों में देखते–देखते लाभ पहुँचता है।

यज्ञ–चिकित्सा पद्धति में भी अन्य पद्धतियों के समान यह देखा जाता है कि शरीर में किन–किन तत्त्वों की कमी है, क्योंकि रोगों का प्रमुख कारण शरीर में अनावश्यक तत्वों की वृद्धि एवं आवश्यक तत्वों की कमी ही होती है। आचार्य श्रीराम शर्मा ने शरीर की रोगनिरोधक सामर्थ्य की वृद्धि में 'यज्ञकर्म' को प्रधानता दी है। इस पद्धति को 'यज्ञ चिकित्सा' के नाम से भी जाना जाता है।

इस प्रकार रोग निरोधक सामर्थ्य को विकसित करने में 'यज्ञ में होमकृत' पदार्थों या हविष्य को प्रमुख माना गया है। इस हविष्य में औषधियों का सम्मिश्रण, घृत, समिधाएँ एवं पूर्णाहुति में डाले जाने वाले पदार्थ प्रमुख हैं। इन सभी के गुण व प्रभावकारी घटक पृथक–पृथक हैं।

16.7.1 सर्वरोगहारी औषधि (कॉमन हवन सामग्री) – आचार्य श्रीरामशर्मा ने कुछ प्रमुख औषधियों को सभी रोगों के निवारण हेतु लाभदायी पाया है। उन्होंने इन औषधियों का निर्धारण वेदों तथा आयुर्वेदिक पद्धति के आधार पर किया है, जिसे प्रयोग व परीक्षाण के आधार पर उपयुक्त सिद्ध किया जा चुका है।

ये औषधियाँ हैं – अगर, तगर, देवदारु, चन्दन, रक्त चन्दन, गुग्गुल, जायफल, लौंग, चिरायता, अश्वगंधा एवं गिलोय इत्यादि। इन औषधियों को समान मात्रा मे, रोगानुसार निर्धारित अन्य औषधियाँ को भी इसी मिश्रण में मिला लेना चाहिए, तैयार मिश्रण में उसके दसवें भाग के बराबर शर्करा एवं दसवाँ भाग घृत मिलाना चाहिए। तत्पश्चात् इस मिश्रण से हवन करना लाभदायी है।

नोट :– इन विशिष्ट औषधियों से बनी हवन सामग्री के साथ ही अन्य रोगों से संबंधित हवन सामग्रीयों को समान मात्रा में मिलाकर प्रयोग किया जाना चाहिए।

विभिन्न रोगों की विशेष हवन–सामग्रीः

16.7.2 अपच एवं संबंधित रोगों के लिए विषेष हवन सामग्री

अपच के लिए निम्नांकित औषधियों को बराबर मात्रा में लेकर हवन सामग्री तैयार की जाती है – 1. तालीसपत्र 2. तेजपत्र 3. पोदीना 4. हरड़ 5. अमलतास 6. नागकेसर 7. कालाजीरा 8 सफेद जीरा।

कॉमन हवन सामग्री के साथ मिलाकर हवन करने के साथ ही उपर्युक्त आठों चीजों के कपड़छन चूर्ण को मिलाकर सुबह–शाम एक–एक चम्मच चूर्ण मट्ठा या जल के साथ रोगी को खिलाने से शीघ्र लाभ मिलता है।

16.7.3 वमन–उल्टी तथा संबंधित रोगों के लिए विषेष हवन सामग्री

इसके लिए निम्नांकित औषधियों को सम भाग में मिलाकर हवन सामग्री तैयार करते हैं – 1. बायविडंग 2. पीपल 3. छोटी पिप्पली 4. ढाक या पलाश के बीज या सूखे फल 5. गिलोय 6. निशोथ 7. नीबू की जड़ या सूखे फल 8. आम की गुठली 9. प्रियंगु 10 धाय के बींज

उक्त सभी दस चीजों के महीन छने हुए चूर्ण को सुबह–शाम एक–एक चम्मच शहद से खिलाना भी चाहिए।

16.7.4 दस्त, डॉयरिया की विशेष हवन–सामग्री – डायरिया, आंव एंव सम्बन्धित रोगों में

1. सफेद जीरा, 2. दालचीनी, 3. अजमोद, 4. बेलगिरी, 5. चित्रक 6. अतीस, 7. सोंठ, 8. चव्य, 9. ईसबगोल, 10. मौलश्री की छाल 11. तालमखाना 12. छुआरा।।

उपर्युक्त सभी 12 चीजों को कूट–पीसकर जौकूट हवन सामग्री बनाकर उससे हवन करने के साथ ही इसका कुछ भाग सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एक–एक चम्मच सुबह–शाम दही या मठ्ठा के साथ रोगी को खिलाते रहना चाहिए। जब दस्त लग रहे हों, तो परहेज का, पथ्यापथ्य का विशेष ध्यान रखा जाता है। ऐसी स्थिति में दूध व दूध से बने मीठे पदार्थ, तली–भूनी चीजें एवं गरिष्ट चीजें नहीं देनी चाहिए।

इन्हीं औषधियों की सूर्य गायत्रीमंत्र से हवन करना चाहिए।

16.7.5 साधारण बुखार की विषेष हवन सामग्री –

इसके लिए निम्नांकित औषधियां बराबर मात्रा में ली जाती हैं –

1 चिरायता 2. तुलसी की लकड़ी 3. तुलसी के बीज 4. पटोलपत्र 5. करंज की गिरी 6. नागरमोथा 7. लाल चन्दन 8. लाल कनेर के पुष्प 9. नीम छाल 10. गिलोय 11. कुटकी 12. मुलहठी।

उपर्युक्त सभी 12 चीजों को कूट–पीसकर जौकूट हवन सामग्री बनाकर उससे हवन करने के साथ ही इसका कुछ भाग सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एक–एक चम्मच सुबह–शाम कुनकुने जल के साथ रोगी व्यक्ति को सेवन भी कराते रहना चाहिए।

16.7.6 रक्त विकार की विशेष हवन–सामग्री :–

इसके लिए निम्नलिखित औषधियों को बराबर मात्रा में मिलाकर हवन सामग्री तैयार की जाती है –

1. धमासा, 2. सारिवा 3. कुटज कुड़े की छाल 4. अडूसा 5. शरपुंखा, 6. मंजीष्ठा, शुद्ध रास्ना, 8. खदिर खैर, 9. शीतल चीनी, 10. चोप चीनी, नीम के फूल

या पत्ते, 12. दारूहलदी, 13. कपूर, 14. मेथी के बीज, 15. पद्माख, 16. मेंहदी पत्र, 17. चक्रमर्द बीज, 18. चमेली के पत्ते, 19. हरड़।

सभी 19 चीजों को मिलाकर कपड़छन किए हुए पाउडर में से एक चम्मच सुबह, एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम को जल के साथ रोगी को खिलाते रहने से तत्काल लाभ मिलता है। रक्त विकार में पथ्य–परहेज का विशेष ध्यान रखना चाहिए और प्रभावित व्यक्ति को खटाई एवं तली–भूनी वस्तुएँ नहीं देनी चाहिए। इसी सामग्री से विधिपूर्वक सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करना चाहिए।

16.7.7 खांसी की विशेष हवन सामग्री :– सर्दी, जुकाम एंव सम्बन्धित ज्वरों पर निम्न औषधियों का प्रयोग किया जाता है –

1. मुलहठी, 2. पान जड़, कुरदान, 3. हलदी 4. अनार, 5. कंटकारी, 6. बहेड़ा 7. उन्नााव, 8. अंजीर की छाल।

नोट– सभी 8 चीजों को मिलाकर एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम को शहद से खिलाएं। इसी सामग्री से विधिपूर्वक सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करें।

16.7.8 चर्मरोग की विशेष हवन सामग्री :– इसमें निम्न औषधियों का प्रयोग किया जाता है –

1. चोप चीनी, 2. नीम के फूल या पत्ते, 3. चमेली के पत्ते, 4. दारूहलदी 5. कपूर, 6. मेथी के बीज, 7. पद्माख, 8. मेंहदीपत्र, 9. चकोड़ा चक्रमर्द बीज।

नोट– सभी 9 चीजों को मिलाकर एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम जल से खिलाएं। परहेज खट्टा एवं गरिष्ठ पदार्थ न खायें।

16.7.9 वात–व्याधि की विशेष हवन–सामग्री :– साइटिका, कमर दर्द, जोड़ों के दर्द

1. ग्वारपाठे की जड़ , 2. रास्ना, 3. गुरगुल, 4. सलई गोंद 5. बालछड़ जटामांसी, 6 सहजन मुनगा छाल, मेथी के बीज, पुनर्नबा, 9. तेजपत्र, 10. निर्गुंडी सम्हालू।

नोट सभी 10 चीजों को मिलाकर एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम शहद से खिलाएं। परहेज खटाई एवं ठंडी चीजें न लें। इन्हीं औषधियों की हवन–सामग्री से सूर्य गायत्रीमंत्र से हवन करें।

16.7.10 शीतज्वर की विशेष हवन–सामग्री :–

1.पटोल पत्र, नागरमोथा, 2. कुटकी, 3. नीम की छाल, 4. गिलोय, 5. कुडे की छाल, 6. करन्जा, 7. नीम के पुष्प।

16.7.11 'स्ट्रेस' या तनाव एवं हाइपरटेंषन की विषेष हवन सामग्री

तनाव से छुटकारा पाने के लिए निम्नलिखित अनुपात में औषधियों की जैकूट हवन सामग्री बनाई जाती है –

1.ब्राह्मी	100 ग्राम	2. शंखपुष्पी	100 ग्राम
2. शतावर	100 ग्राम	4. सर्पगंधा	100 ग्राम
5. गोरखमुंडी	100 ग्राम	6. मालकांगनी बीज	100 ग्राम
7. मौलश्री छाल	100 ग्राम	8. गिलोय	100 ग्राम
9. सुगंधकोकिला	100 ग्राम	10. नागरमोथा	200 ग्राम
11. घुड़बच	50 ग्राम	12. मीठी बच	50 ग्राम
13. तिल	100 ग्राम	14. जलकुंभी	100 ग्राम
15. जौ	100 ग्राम	16. चावल	100 ग्राम

17. घी	100 ग्राम	18. खांडसारी गुड़	50 ग्राम

इन सभी 18 चीजों के कूट–पीसकर उनका जौकूट पाउडर बना लेते हैं। इस प्रकार से तैयार की गई विशेष हवन सामग्री से चन्द्र गायत्री मंत्र के साथ हवन करने से तनाव एवं उससे उत्पन्न अनेकों बीमारियाँ तथा हाइपरटेंशन से प्रयोक्ता को शीघ्र लाभ मिलता है।

चन्द्र गायत्री मंत्र इस प्रकार है –

ऊँ भूर्भुवः स्वः क्षीरपुत्राय विद्महे, अमृत–तत्वाय धीमहि तन्नो चंद्रः प्रचोदयात्।

16.7.12 सरस्वती पंचक विशेष हवन सामग्री :– विद्यार्थियों, बुद्धिजीवियों के लिए बुद्धि, स्मरणशक्ति एवं मेधा संवर्द्धक 'सरस्वती पंचक' का प्रयोग निम्न हैं –

सरस्वती पंचक का यह प्रयोग सभी के लिए उपयोगी व लाभकारी है। नर, नारी, बच्चे, युवा वृद्ध सभी आयु वर्ग के व्यक्ति इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं। जिन लोगों को अपने मन–मस्तिष्क से ज्यादा काम लेना पड़ता है, जैसे विद्यार्थी, कॉम्पिटीशन में बैठने वाले, लेखक, वकील, कलाकार आदि के लिए 'सरस्वती पंचक' सबसे उत्तम टॉनिक है। दिमागी थकान, बुद्धिवर्धक, मेधासंवर्द्धक, मिरगी, अनिद्रा, पागलपन आदि मस्तिष्कीय रोगों में लाभकारी होने के साथ ही यह विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

1. ब्राह्मी, 2. शंखपुष्पी 3. शतावर, 4. गोरखमुंडी, 5. मीठी वच।

इन सभी पाँचों औषधियों को समान मात्रा में अर्थात् 100–100 ग्राम लेकर कूट–पीसकर उनका बारीक पाउडर बनाकर कपड़े से छान करके एक डिब्बे में रख लेते हैं। इस पाउडर में से बच्चों को आाधा–आधा चम्मच एवं बड़ों को एक–एक चम्मच सुबह–शाम दूध के साथ नित्य देते रहने पर उपर्युक्त सभी लाभ दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

सरस्वती पंचक की विशिष्ट हवन सामग्री

1. ब्राह्मी, 2. शंखपुष्पी 3. शतावर, 4. गोरखमुंडी, 5. मीठी वच 6. तिल 7. चावल 8. जौ 9. गुड़ या शक्कर 10. घी।

इन दस चीजों को मिलाकर तैयार की गई हवन सामग्री के बराबर ही पहले से बनी हुई 'कॉमन हवन सामग्री' को लेकर हवन करना चाहिए।

सरस्वती गायत्री मंत्र – ऊँ भूर्भुवः स्वः सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्मपुत्रये धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।

अभ्यास प्रश्न – ग

4. यजुर्वेद में संसार की आत्मा किसे कहा गया है ?
5. प्लेग के रोग में किन–किन हवन सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है ?
6. भारतवर्ष में मन्त्र व यज्ञोपैथी का प्रथम प्रयोगशाला कहाँ स्थापित है ?
7. बुद्धिवर्धक, मेधासंवर्द्धक हवन सामगी का क्या नाम हैं ?

16.8 सारांश

प्राचीनकाल में यज्ञ किसी विशेष साधना या मंत्र–तंत्र की तरह नहीं समझे जाते थे, वरन् वे मनुष्य जीवन का एक स्वाभाविक अंग थे। यज्ञों के जो विभाग किए गए थे, उनमें से कुछ ऋतुओं के आधार पर थे, कुछ मनुष्यों के कर्त्तव्य कर्म को दृष्टिगोचर रखकर नियत किए थे और कुछ राष्ट्रीय व्यवस्था से सम्बन्ध रखते थे। इस प्रकार आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समस्याओं की पूर्ति के लिए जो सामुदायिक और सामाजिक कार्य किए जाते थे।

पंच महायज्ञों द्वारा सौर और चन्द्र संसार को आप्लावित करके अतिथियों, वृद्धों, रोगियों, पतितों, पशु–पक्षियों और कीट पतंगों तक को आहार पहुंचाने से बढ़कर सेवा की भावना और पुण्य कार्य क्या हो सकता है ? इससे मनुष्यों में करूणा, क्षमा, अहिंसा के भावों की वृद्धि होती है और उनका जीवन केवल भौतिक में न रहकर दैवी गुणों से सम्पन्न होता है। जो मनुष्य इतना सब करके भी निःस्वार्थ भाव से कहता है 'इदं न मम' अर्थात यह मेरा नहीं है, जो कुछ है सब ईश्वर का ही है, वह सांसारिक प्रपंच और कर्म–बंधन में नहीं फंस सकता है। यही निष्काम भावना 'यज्ञ' की सबसे बड़ी विशेषता है। जैसा भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है **यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः** अर्थात यज्ञीय कर्मों के अतिरिक्त समस्त कर्म बंधन करने वाले ही हैं। इस प्रकार यज्ञ का कर्म समझने वाला और तदनुसार आचरण करने वाला मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

16.9 शब्दावली

1. रक्ताभिसरण – रक्त की प्रवाह शीलता।
2. यज्ञाग्नि – यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि।
3. यज्ञशिष्ट – यज्ञोपरान्त बचा हुआ प्रसाद।
4. पोटेन्सी – शक्ति, क्षमता।
5. पंचक – पांच औषधियों का समूह।

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क
1. रोग की जड़ तक औषधियों की पहुंच।
2. ताप, ध्वनि और प्रकाश
3. यज्ञाग्नि

अभ्यास प्रश्न – ख
1. 1. आयाम भेद एवं 2. आकृति भेद।
2. सकाम

अभ्यास प्रश्न – ग
1. सूर्य
2. घी, चावल और केशर मिलाकर
2. ब्रह्मवर्चस हरिद्वार
3. सरस्वती पंचक

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 यज्ञ चिकित्सा – ब्रह्मवर्चस्
2 यज्ञ का ज्ञान–विज्ञान वांगमय 25 – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
3 यज्ञ एक समग्र उपचार प्रक्रिया वांगमय 26 – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
4 आर्यों की यज्ञ प्रक्रिया – डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त
5 आध्यात्मिक मान्यताओं का वैज्ञानिक प्रतिपादन – डॉ. उषा खण्डेलवाल
6 अध्यात्म के स्वर – डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

16.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यज्ञोपैथी के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालिए ?
2. यज्ञ हेतु समय का विस्तार पूर्वक वर्णन किजिए ?
3. यज्ञ चिकित्सा का क्या महत्ता है ? उदाहरण सहित लिखिए।
7. मानसिक रोगों के उपचार हेतु विशिष्ट हवन सामग्रियों द्वारा उपचार प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन करें ?
8. यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए ?

इकाई – 17 यज्ञ चिकित्सा के लाभ व सावधानियाँ

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 यज्ञोपैथी का वैज्ञानिक आधार
17.4 यज्ञ चिकित्सा के लाभ
 17.4.1 यज्ञ एक आध्यात्मिक चिकित्सा विज्ञान
 17.4.2 यज्ञ द्वारा वायुमण्डल शोधन
 17.4.3 रोगाणु निरोधक एवं कीटनाशक के रूप में उपयोग
 17.4.4 कृषि में यज्ञोपैथी का सफल प्रयोग
 17.4.5 यज्ञ द्वारा अमृतमयी वर्षा –
 17.4.6 प्राकृतिक प्रकोपों का निवारण –
 17.4.7 सूक्ष्म जगत एवं जनमानस का परिष्कार –
 17.4.8 सात्विक गुणों के अभिवर्द्धन एवं मानसिक संतुलन में उपयोगी
17.5 यज्ञ की सावधानियाँ
17.6 सारांष
17.7 शब्दावली
17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना –

सर्व साधारण को प्रेम, परोपकार और संयम–सदाचार की शिक्षा देता है। अग्नि की तरह प्रकाशवान, ज्वलन्त बनाने, सम्पर्क में आने वालों को अपने में आत्मसात् कर लेने सदा प्रकाशवान और प्रखर रहने के लिए जो उपलब्ध है उसे लोकमंगल के लिये बिखेर देने, विषम परिस्थितियों से सिर नीचा कराने वाले घटिया आचरण न करने की प्रेरणा, अग्नि के क्रियाकलाप से मिलते हैं। इसलिये यज्ञाग्नि को ईश्वर स्वरूप मानकर हम पूजते हैं। इस पूजा का प्रयोजन उपरोक्त आदर्शों को जीवन में घुला लेना भी है। जीवन को यज्ञ जैसा सुगन्धित और मंगलमय बना लेने की प्रेरणा यज्ञ–आयोजन से मिलती है। यह प्रेरणाएँ जितनी अधिक व्यापक बन सकें, उतना ही व्यक्ति एवं समाज का कल्याण एवं उत्थान होगा।

यज्ञ का आयोजन भारतीय धर्म–संस्कृति की उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता के अभिवर्धन का एक महत्वपूर्ण उपचार है। इससे आध्यात्मिक, भौतिक एवं सामाजिक अगणित लाभ हैं। नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिये इस देश में समय–समय पर ऐसे पर ऐसे आयोजन होते रहे हैं। उस लुप्त परम्परा का पुनरुत्थान हेतु हमें प्राचीन काल जैसी गौरवपूर्ण परिस्थितियों एवं सुख–शान्ति का आनन्द पुनः ले सकें।

प्रस्तुत इकाई में आप यज्ञ के लाभ एवं सावधानियों के साथ यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरुप का सोदाहरण ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे। हमें उम्मींद है कि आपको इससे यज्ञ के सूक्ष्म विज्ञान का सर्वांपूर्ण ज्ञान के साथ उसके महत्वपूर्ण सावधानियों की बारीकियों का ज्ञान हो सकेगा।

17.2 उद्देश्य

- यज्ञ का अर्थ व उसके प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- यज्ञ के प्रकार के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- यज्ञोपैथी के महत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- यज्ञोपैथी के सूक्ष्म विज्ञान का अध्ययन करेंगे।
- विभिन्न शारीरिक व मानसिक रोगों के लिए विशेष हवन–सामग्री के लाभों का अध्ययन करेंगे।
- यज्ञ चिकित्सा के विशेष सावधानियों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

17.3 यज्ञोपैथी का वैज्ञानिक आधार

आज का युग विज्ञान और बुद्धिवाद का युग है, हर एक बात को विज्ञान और बुद्धि की कसौटि से तोला जाता है, क्यों और कैसे का उत्तर पूछा जाता है। आज का बुद्धिशील मानव केवल विश्वास और श्रद्धा के ही आधार पर किसी कार्य को करने के लिए तैयार नहीं है वह बुद्धि और विज्ञान पर परखने के पश्चात् ही उस पर आस्था रखना अधिक पसंद करता है। यज्ञ के सम्बन्ध में भी यही बात है। प्रायः यह सुना जाता है कि यज्ञों में सहस्त्रों रुपयों का घी और सामग्री होमी जाती है, जिसका कोई लाभ नहीं होता। लोगों को घी खाने को नहीं मिलता, यह बेकार में इसे नष्ट कर देते हैं। जितना यज्ञों में व्यय होता है, इतने धनसे अनेको की आवश्यकता पूर्ति हो सकती है, भिखारियों को भोजन आदि खिला कर पुण्य कमाया जा सकता है। ऐसी धारणाओं का हमारे मनःक्षेत्र में प्रवेश करना ही स्वाभाविक है, क्योंकि हम यज्ञ के विज्ञान से बिल्कुल परिचित नहीं हैं।

यज्ञ कोई अन्धविश्वास पर आधारित परम्परा नहीं चली आ रही है, यज्ञ करना बुद्धि व विज्ञान रहित नहीं है बल्कि इसका श्रीगणेश बहुत लम्बे समय की वैज्ञानिक खोज के पश्चात् ही किया गया था। हमारे प्राचीन ऋषि व महात्मा भौतिकवादी नहीं थे, वे अध्यात्म व सूक्ष्मवादी थे। वे इस तत्व को भली–भांति जानते थे कि स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की महत्व अत्याधिक होता है, क्योंकि स्थूल, सूक्ष्म पर ही आधारित होता है। सूक्ष्म का गुण गतिशीलता है, स्थूल गति रहित है। स्थूल की गति सूक्ष्म के बिना होना असम्भव है।

शरीर में प्राण का उदाहरण ले लीजिये, यदि प्रााण है तो खाना–पीना, उठना–बैठना, चलना–फिरना, लिखना आदि सब क्रियायें होती रहती हैं। प्राण के शरीर से निकल जाने के पश्चात् शरीर अपने आप एक सैकिण्ड के लिए भी कोई कार्य नहीं कर सकता। प्राण के बिना शरीर में गति होना असम्भव है। प्राणशक्ति की निर्बलता से ही रोग उत्पन्न होते हैं। प्राणशक्ति के निर्बल होने से शरीर क्षीण होने लगता है।

सूक्ष्म में महान शक्ति है। सिंह और हाथी में शारीरिक शक्ति अधिक होती है, पर मनुष्य अपनी सूक्ष्म बुद्धि–शक्ति के सहारे उन्हें अपना गुलाम बना लेता है। ऋषियों के शाप–वरदान सूक्ष्म शक्ति के ही चमत्कार होते थे। सृष्टि संचालन प्रक्रिया पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि सूक्ष्म शक्तियों के सहारे ही करोड़ों, अरबों, खरबों मनों की पृथ्वी सूर्य के चारो ओर चक्कर लगा रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म शक्ति

स्थूल से अति अधिक होती है। जितना–जितना वस्तु का स्थूलत्व कम होता जाता है, उतनी ही उसमें शक्ति बढ़ती जाती है। ध्वंस ही सृष्टि का मुख्य कारण है। रगड़ से बिजली पैदा होती है। आप देखते हैं कि बादाम को घिसने से उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। कुछ औषधियों को मिलाकर जब सुरमा बनाते हैं तो उसे बहुत बारीक किया जाता है, क्योंकि उसका स्थूलत्व जितना कम होता जाता है उतनी ही उसमें आरोग्यशक्ति बढ़ती जाती है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में भस्म व कुश्तों को बहुत शक्ति वर्धक बताया जाता है। उनका विज्ञान भी यही है कि औषधियों के स्थूलत्व को बहुत कम करने की चेष्टा की जाती है। रोटी के ग्रास यदि खूब चबा–चबा कर खाये जाये तो वह बहुत लाभदायक होते हैं। जल स्थूल है, जल में उतनी शक्ति नहीं होती जितनी कि उसके स्थूलत्व को कम करके 'भाप' में होती है। होमियोपैथी औषधि बनाने का भी यही विज्ञान है वह औषधि के स्थूलत्व को बिलकुल नष्ट कर देते हैं जिससे वह औषधि बहुत शक्तिशाली बन जाती है। यज्ञ का भी यही विज्ञान है। अनुभव से देखा गया है कि जो रात–दिन सुस्त पड़े रहकर मौत की प्रतीक्षा करते थे, वही यज्ञ चिकित्सा करने पर कुछ दिनों में उत्साह और शक्ति का प्रदर्शन करने लगे। इसके पक्ष में अनेक युक्तियाँ दी जा सकती हैं पर विस्तार में न जाकर हम वैज्ञानिकों के कुछ परीक्षण लिखते हैं। मद्रास के अंग्रेजी राज्य के सिनेटरी कमिश्नर डॉ. कर्नल किंग आर एम.एस. ने वहाँ प्लेग फैलने पर कॉलेज के विद्यार्थियों को उपदेश दिया कि घी, चावल और केशर मिलाकर जलाने से तुम रोग से सुरक्षित रहोगे।

फ्रांस के विज्ञानवेता प्रोफेसर टिलवट साहब कहते हैं कि जलती हुई खांड, शक्कर के धुंए में वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति है। इससे हैजा, तपैदिक, चेचक इत्यादि का विष शीघ्र नष्ट हो जाता है। डॉ. टाटलिट साहब ने मुनक्का, किशमिश इत्यादि सूखे फलों को जलाकर देखा और मालूम किया कि इनके धुएं से टाइफाइड ज्वर के कीटाणु केवल आधा घंटे में और दूसरे रोगों के कीटाणु घंटे से दो घंटे में समाप्त हो जाते हैं।

फ्रांस के हेफकिन साहब, जिन्होंने चेचक के टीके का अविष्कार किया है, कहते हैं कि घी जलाने से रोग–कृमि का नाश हो जाता है।कविराज पं. सीताराम शास्त्री अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि ''मैंने कई वर्षों की चिकित्सा के अनुभव से निश्चय किया कि जो महारोग, औषधि–भक्षण से दूर नहीं होते, वह वेदोक्त यज्ञों द्वारा अर्थात् यज्ञ– चिकित्सा से दूर हो जाते हैं।''बरेली निवासी डॉ. फुन्दनलाल अग्निहोत्री ने अपनी पुस्तक में लिख है '' मैं प्रथम 25 वर्ष तक खोज और परीक्षण के पश्चात् अब 26 वर्ष से क्षय–रोग की यज्ञ द्वारा चिकित्सा सैकड़ों रोगियों की कर चुका हूँ। उनमें ऐसे भी रोगी थे, जिनके क्षति, केविटी कई–कई इंच लम्बी थी और जिनको वर्षों सेनिटोरियम और पहाड़ पर रहने पर भी अंत में डॉक्टरों ने असाध्य बता दिया पर वह यज्ञ चिकित्सा से पूर्ण निरोग होकर अब अपना कारोबार कर रहे हैं।यज्ञ चिकित्सा की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा अब यह सिद्ध हो गया है कि वासा तथा गुग्गल जैसी औषधियों के हवन से उत्पन्न ऊर्जा तपेदिक जैसी घातक बीमारियों के जीवाणुओं को नष्ट कर देती है। अपराजिता नामक धूम्र ऊर्जा का उपयोग सभी प्रकार के कीटाणुओं–विषाणुओं का शमन करने में होता है। इसी प्रकार के गुण नीम, नागरमेथा और वच में भी हैं। इनका अधिकतर उपयोग रक्त शोधन एवं व्रण आदि में किया जाता है। इसकी पुष्टि भावप्रकाश नामक प्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रन्थ में भी की गई है। परीक्षणोपरांत निष्कर्ष निकाला गया है कि गुग्गल, लौंग, घी, शर्करा, चन्दनचूरा आदि का नित्य हवन करने वाले साधकों के शरीर में अग्नि–तत्व की प्रधानता होती है। फलस्वरूप रोग प्रतिरोधी क्षमता में अभिवृद्धि एवं जीवनीशक्ति का विकास साथ–साथ होता

है। इसी तरह जायफल, गुग्गल आदि का मिश्रण हव्य रूप में प्रयुक्त करने पर जो यज्ञीय ऊर्जा वातावरण में फैलती है उससे प्रायः उसी प्रकार के रोगकारक जीवाणु–विषाणु नष्ट हो जाते हैं। रासायनिक विश्लेषण की दृष्टि से भी जायफल, जावित्री, चंदन, अगर, नागरमोथा जैसे पदार्थों में मनुष्य शरीर में पाए जाने वाले रोगों का निराकरण करने की क्षमता बताई गई है। सुगंधित तेल, गैसों का फेफड़ों की दृढ़ता पर अच्छा प्रभाव पड़ने की बात कही गई है। इसी तरह अग्निहोत्र से जो प्रचंड ऊर्जायुक्त सुगंधित ऊष्मा उत्पन्न होती है उससे आस–पास का वातावरण गरम हो जाता है और उससे एक प्रकार का फाइगोसाइटोटिस चक्र विनिर्मित होता है। एम्यूनिटी और फाइगोसाइटोटिस दोनों प्रक्रियाएँ यजनकर्त्ता को स्वास्थ्य संवर्द्धन का लाभ देती है।

शरीरशास्त्रियों के अनुसार एक सामान्य युवा व्यक्ति के फेफड़ों में 230 वर्ग इंच वायु रहती है जिसमें से केवल 30 वर्ग इंच तक की वायु सांस छोड़ने पर बाहर निकलती है। शेष फेफड़ों में ही जमी रहती है। पर यदि जोर से गहरी श्वास ली जाए तो 130 वर्ग इंच तक अंदर की दूषित वायु बाहर निकल सकती है। इस प्रकार जितनी अधिक मात्रा में विषैली वायु बाहर निकलती है, श्वसन तंत्र में उतनी ही अधिक परिमाण में शुद्ध प्राणवायु भीतर भर जाती है। इस तरह अधिक मात्रा में प्रविष्ट हुई शुद्ध प्राणवायु उसी अनुपात से रक्त परिशोधन एवं शरीर का पोषण करती है। जीवनशक्ति की अभिवृद्धि होती है और अग्नि प्रदीप्त होकर रस और रक्त में सिंचित विषाक्तता को निष्कासित करती है। देखा गया है कि जहाँ यज्ञ आयोजन हो रहा होता है, वहाँ के वातावरण में यदि मनुष्य स्वाभाविक रूप से गहरी श्वास–प्रश्वास लें और अपने फेफड़ों को प्राणवायु से भरें, तो इसका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा एवं स्थायी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

इस संदर्भ में मूर्द्धन्य चिकित्सा विज्ञानी डॉ. त्रिले ने गहन खोजें की हैं। उनके अनुसार अग्निहोत्र में अग्नि के प्रज्वलन से वायु भार कम होता है और वह तीव्र गति से फैलता है। प्रकाश की अधिकता एवं तीव्र ताप के कारण सुगन्धित हव्य सामग्री शाकल्य के परमाणु वायु को शुद्ध करते हैं और श्वास तथा रोम–कूपों द्वारा शरीर में प्रवेश कर स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। पाया गया है कि वनौषधि और समिधाओं के जलने से जो उपयोगी वाष्पीभूत धूम्र एंव ताप ऊर्जा निकलती है, उससे सभी प्रकार के रोगोत्पादक जीवाणुओं का शमन होता है। साथ ही वातावरण में प्राण की सशक्त तरंगें प्रवाहित होने लगती हैं और काया से प्रवेश कर नवजीवन प्रदान करती हैं। प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाती है एवं सामर्थ्य भरती हैं। यज्ञीय ऊर्जा से शारीरिक, मानसिक व्यथाएँ तो दूर होती ही हैं, मस्तिष्कीय क्षमताओं, विचारणाओं, भावनाओं में उच्च स्तरीय परिवर्तन का लाभ भी हस्तगत होता है।

अभ्यास प्रश्न – क

8. रोग उत्पत्ति का मूल कारण हैं ?
9. मुनक्का व किशमिश के सूखे फलों को जलाकर किस रोग के किटाणुओं को नष्ट किया जाता है ?
10. यज्ञीय ऊर्जा से किस प्रकार की व्यथाएँ तो दूर होती हैं ?

17.4 यज्ञ चिकित्सा के लाभ –

यज्ञों की भौतिक और आध्यात्मिक महत्ता असाधारण है। भौतिक या आध्यात्मिक जिस क्षेत्र पर भी दृष्टि डालें उसी में यज्ञ की महत्वपूर्ण उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है। वेद में ज्ञान, कर्म और उपासना तीन विषय हैं। कर्म का अभिप्राय कर्मकाण्ड से है, कर्मकाण्ड यज्ञ को कहते हैं। वेदों का लगभग एक तिहाई मंत्र भाग यज्ञों से सम्बन्ध रखता है। यों तो सभी वेद मंत्र ऐसे हैं जिनकी शक्ति को प्रस्फुटित करने के लिए उनका उच्चारण करते हुए यज्ञ करने की आवश्यकता होती है।

जिस प्रकार आजकल यन्त्रों की सहायता से भौतिक जीवन के अनेकों सुख साधन उत्पन्न किये जाते हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में मन्त्रों के द्वारा मानव जीवन की सभी आवश्यकताओं को सरल करने का विज्ञान विकसित हुआ था। शब्द–विद्या एक बड़ी विद्या है। इसी रहस्य को जानने में ऋषियों ने हजारों वर्षों तक श्रम किया था और शब्द–विद्या के वैज्ञानिक तथ्यों को जानकर मन्त्र शास्त्र की रचना की थी।

सब विद्वान जानते हैं कि स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म अधिक शक्तिशाली होता है तथा सूक्ष्म–सूक्ष्म में प्रवेश कर सकता है। आटे में मिले हुए बूरे के सूक्ष्म परमाणु पृथक करने को मनुष्य की स्थूल अंगुलियाँ असमर्थ हैं, पर चींटी की सूक्ष्म मुंह से उसे सुगमता से पृथक कर सकता है। सोने का एक छोटा टुकड़ा मनुष्य खा ले जो उस पर कोई प्रभाव न होगा पर उसी टुकड़े को सूक्ष्म करके अर्क बनाकर खाएं तो प्रथम दिन से ही उसकी गरमी अनुभव होगी और कुछ समय में चेहरे पर लाली और शरीर में शक्ति आ जाएगी।

होम्योपैथिक चिकित्सा विधि से इसी नियम के आधार पर औषधियों की पोटेन्सी तैयार की जाती है और औषधि का भाग जितना सूक्ष्म होता जाता है उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि जो औषधि स्थूल रूप में दिन में बार–बार खाने से साधारण रोग दूर कर सकती है, वही औषधि बहुत सूक्ष्म रूप में केवल एक मात्रा खाने से बड़े–बड़े रोगों को दूर कर देती है।

इस नियम पर दृष्टि रखते हुए विचार कीजिए कि क्षय कीटाणु की लम्बाई 1/15000 इंच और चौड़ाई 1/150000 इंच होती है। इतनी सूक्ष्म चीज पर बड़े कण वाली औषधियों की पहुँच जब न हुई तब वैज्ञानिकों ने उसको सूक्ष्मतम करने को इंजेक्शन की प्रथा चलाई, पर यह सब जानते हैं कि अग्नि से अधिक पदार्थों को सूक्ष्म और कोई नहीं कर सकता। हम नित्य ही देखते हैं कि एक लाल मिर्च को घोंटने लगे तो पास बैठे अनेक लोगों को खांसी आने लगेगी। अब यदि उसी मिर्च को आग में डाल दें तो उसकी धूम्र का प्रभाव दूर–दूर तक बैठे मनुष्यों पर हो जाएगा। इसी प्रकार हवन–यज्ञ में डाली औषधियों के परमाणु बहुत बारीक होकर श्वास द्वारा सीधे रक्त में प्रवेश करके रक्त को शुद्ध कर देते हैं। इसके वैज्ञानिक परीक्षण किए गए तो ज्ञात हुआ कि लौंग, जायफल जलाने पर गैंसों में तेलों के परमाणु 1/10000 से 1/100000000 सेंटीमीटर तक व्यास वाले पाए गए। अतः यह रोग–कृमि से अधिक सूक्ष्म होने के कारण सुगमता से उनके भीतर प्रवेश कर सकते हैं और अपने वैज्ञानिक गुण के कारण उनको मार सकते हैं।

यह पदार्थ विज्ञान से सिद्ध हो चुका है कि किसी पदार्थ का नाश नहीं होता केवल रूप बदल जाता है। अतः अग्नि में हवि जलाने से उसके परमाणु ही सूक्ष्म हो जाते हैं, उसका नाश नहीं होता। गुग्गल, घी, कपूर, इत्यादि क्षति भरने का कार्य नहीं ले सकते पर अग्नि में जलाकर उनके सूक्ष्म परमाणु सुगमता और सरलता से फेफड़ों में पहुँचा सकते हैं।

यजुर्वेद के 40 वें अध्याय के प्रथम मंत्र में संसार को **'जगत्याम् जगत्'** बताकर इस सिद्धान्त का ज्ञान प्रभु ने कहा है कि जगत का प्रत्येक परमाणु गतिशील है। आज के वैज्ञानिक भी परीक्षण के पश्चात् इस सिद्धान्त को सत्य स्वीकार करते हैं और साथ ही यह भी बताते हैं कि यह गति किसी नियम में बंधी हुई है। प्रत्येक परमाणु की गति एक सी नहीं होती। किन्तु किसी की गति एक समान होती है और किसी की एक दूसरे के विपरीत। दो समान वस्तुएँ एक दूसरे को अपनी ओर खींचती हैं और दो विरुद्ध वस्तुएँ एक दूसरे को भगाती हैं। अतः जिन दो वस्तुओं के परमाणु एक सी गति करते हैं, उनमें परस्पर आकर्षण होता है और विरुद्ध गति वाले परस्पर एक दूसरे को भगाते हैं।

इस नियम के आधार पर जो लोग शरीर में सड़न उत्पन्न करने वाले पदार्थ मांस, तम्बाकू इत्यादि प्रयोग करते हैं, उनके निकट जब क्षय कीटाणु पहुंचते हैं तो समानता के कारण उनका शरीर अपनी ओर उन्हें खींच लेता है और जो लोग लौंग, गुग्गल, घी इत्यादि क्षयनाशक पदार्थों से हवन यज्ञ करके उनके सूक्ष्म परमाणु अपने शरीर में रखते हैं तो जब क्षय–कीटाणु उनके निकट आते हैं तब विरुद्ध गति होने के कारण वह दूर भाग जाते हैं। इसी कारण नित्यप्रति नियमपूर्वक यज्ञ करने वाले को कभी क्षय रोग नहीं हो सकता।

क्षय रोग के विशेषज्ञ डॉक्टर इस बात को स्वीकार करते हैं कि क्षय रोगी को अधिक मात्रा में ऑक्सीजन युक्त वायु की आवश्यकता होती है। इसी कारण असाध्य रोगी को भी पहाड़ पर जाने की सहमति दी जाती है और बहुत असाध्य दिखने वाले रोगी भी इस प्राकृतिक ढंग से अच्छे भी हो जाते हैं, क्योंकि ऑक्सीजन फेफड़ों और आंतों की क्षति को शीघ्र सुखाने की शक्ति रखता है। साथ ही ऑक्सीजन की रगड़ से शरीर में अग्नि उत्पन्न होकर पाचनशक्ति को बढ़ाती है, जो क्षय रोगी में न्यून हो जाती है। इस ऑक्सीजन का एक सूक्ष्म भाग ओजोन होता है, जो बहुत धीमी सुगंध से शरीर में प्राणशक्ति का संचार करता है। जिस पहाड़ पर चीड़ के वृक्ष अधिक होते हैं उस पर ओजोन का यह भाग अधिक पाया जाता है। वैज्ञानिक ढंग से परीक्षण करके देख लिया गया है कि हवन–गैस में ओजोन का यह भाग बड़ी मात्रा में पाया जाता है।

संसार के समस्त वैज्ञानिकों के पास कोई ऐसी औषधि नहीं है कि जो क्षयरोगी को पौष्टिक पदार्थ अधिक मात्रा में पचा दे, पर हवन यज्ञ में हलवा, लड्डू, खीर, मेवा, घी इत्यादि सभी पदार्थ बड़ी मात्रा में जलाकर उनके सूक्ष्म परमाणु रोगी के रक्त में पहुंचा सकते हैं जो नाश न होने वाले वैज्ञानिक सिद्धान्त से शरीर में पहुंचकर उसकी प्राणशक्ति को बढ़ाएंगे और अग्नि को मंद करने के स्थान में अपने ओषजन के गुण से और तीव्र करेंगे।

17.4.1 यज्ञ एक आध्यात्मिक चिकित्सा विज्ञान – वस्तुतः यज्ञ एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक चिकित्सा विज्ञान है, जिसमें औषधि के रूप में द्रव्य होम किए जाते हैं। ये बिना नष्ट हुए रूपांतरित होकर उच्चारित गायत्री महामंत्र की सम्मिलित एवं प्रभावपूर्ण स्वर शक्ति से परिपूरित होकर वातावरण में आध्यात्मिक तरंगे फैलाती हैं, जिससे मानव मन में संव्याप्त विकृतियों, विद्वेष, दुर्भाव, अनीति, अत्याचार, संकीर्ण स्वार्थपरता, कुटिलता आदि बुराईयों का शमन होता है तथा तनाव मिटता है। इस तथ्य का अन्वेषण प्राचीनकाल में ऋषियों ने बहुत पहले कर लिया था और यज्ञ को जीवन का एक अभिन्न अंग मानकर उसे दिनचर्या में सम्मिलित किया था।

अथर्ववेद के सूत्र **'इदं मे अग्रे पुरुषां मुमुरवम्'** में कहा गया है कि उन्माद–सनकी व्यक्ति भी इस यज्ञाग्नि के प्रभाव से रोगमुक्त हो जाते हैं। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से

होती है कि यज्ञ चिकित्सा के क्षेत्र में हुए आधुनिकतम अनुसंधानों का सिलसिला अब विश्वभर में चल पड़ा है। कैलीफोर्निया की अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी एंव सोलिसवर्ग, स्विटजरलैंड की यूरोपियन रिसर्च यूनिवर्सिटी ने इस सम्बन्ध में गहरे अन्वेषण किए हैं और इसके परिणामों से विज्ञान क्षेत्र की प्रतिभाओं को अवगत कराया है। वर्जीनिया में एक अग्निहोत्र मंदिर की ही स्थापना की गई है, जिसमें विशेष स्तर की अग्नियों पर कुछ विशेष प्रकार के पदार्थ एवं वनस्पतियां हवन की जाती हैं, साथ ही खाद्य पदार्थ पकाए और रोगियों को खिलाए जाते हैं। यज्ञाग्नि से बची हुई भस्म का भी औषधियों की तरह प्रयोग किया जाता है। इसी तरह के प्रयोग—परीक्षण चिली, पोलैंड तथा पश्चिमी जर्मनी में भी चल रहे हैं।

इन प्रयोगों में न केवल अनेक वनौषधियां प्रयुक्त होती हैं, वरन अनेक स्तर की समिधाओं का भी एक दूसरे से भिन्न प्रकार का प्रतिफल पाया गया है। अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि जिन क्षेत्रों में इस प्रकार के यज्ञ आयोजन हुए हैं, वहाँ अपराधों की संख्या कम हुई है। नशेबाजी, घटना, हड़तालें कम होना, सड़क दुर्घटनाओं में कमी होना, मानसिक तनाव एवं पारस्परिक मनोमालिन्य में घटोतरी दिखाई पड़ना आदि यज्ञीय वातावरण की प्रत्यक्ष उपलब्धियाँ देखी गयी हैं। जिन परिवारों में अग्निहोत्र का प्रचलन हुआ है, उनमें बीमारी के प्रकोप एवं औषधि व्यय में कमी हुई है। कैलीफोर्निया में सीनेटर रॉबर्ट बोडार्ड एवं अमेरिकी मनोवैज्ञानिक बेरी राथनेर ने इस दिशा में बहुत काम किया है।

अमेरिका के रेंडल टाउन, मैरीलैंड स्थित लेडी लिंडका का 'अग्निहोत्र संस्थान' हवन चिकित्सा के लिए ख्याति प्राप्त कर रहा है। वहाँ नित्य नियमित रूप से यज्ञ होता है और रोगियों पर उसके प्रभाव—प्रतिफल की वैज्ञानिक जांच—पड़ताल की जाती है। अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि यज्ञीय धूम्र—ऊर्जा का लाभदायक परिणाम तो होता ही है, यज्ञ भस्म भी चमत्कारी सत्परिणाम प्रस्तुत करती है। इसके प्रयोग से हर कोई लाभान्वित हो सकता है।

यज्ञ भस्म हवनकुण्ड में शेष बची हुई राख को कहते हैं। यों इसे अधिक से अधिक कोई मांगलिक पदार्थ माना जा सकता है, पर कई बार उसके उपयोग से बहुमूल्य औषधियों से भी अधिक प्रभावी परिणाम निकलता देखा गया है। उसे पौष्टिक खाद्य पदार्थों के रूप में स्वास्थ्य —संवर्द्धन के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। सूक्ष्म सामर्थ्य से सम्पन्न यज्ञ भस्म—चरू अथवा कोई भी पदार्थ अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक, बलवर्द्धक हो सकता है। जिसकी तुलना महंगी औषधियाँ एवं फल—मेवे भी नहीं कर सकते। पश्चिम जर्मनी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक बर्ट होल्ड जैहल ने हवन की भस्म पर गहन अनुसंधान किया है। वे इस राख का विभिन्न बीमारियों पर नये—नये परीक्षण करने में निरत हैं। उनका कथन है कि हवन से बची अवशिष्ट राख रोगों के उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। होम्योपैथी दवाओं की तरह तथा आयुर्वेद के अनुपान भेद की विधि द्वारा रोगियों को देन के उपरान्त उसका परिणाम जांचने—परखने के बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि सामान्य सी लगने वाली इस भस्म में असामान्य रोग निरोधक क्षमता विद्यमान होती है। होम्योपैथी एंव एलोपैथी दवाओं के प्रयोग से होने वाले साइड इफेक्ट का शमन करने की क्षमता इसमें विद्यमान है। अपने अनुसंधान कार्य को आगे बढ़ाते हुए अब तक हवन—भस्म को खाने, मलहम लगाने, अग्निहोत्र आईड्राप, अग्निहोत्र शलाका, अग्निहोत्र क्रीम इत्यादि के निर्माण में सफलता पाई है।

शारीरिक रोगों से अधिक इन दिनों मानसिक रोग फैले हैं। व्यक्तित्व को विकृत बनाने वाली सनकें तथा आदतें ऐसी मानसिक बीमारियां हैं, जो मनुष्य को अर्द्ध विक्षिप्त बनाए रखती हैं। ऐसे व्यक्ति स्वयं दुःख भोगते और साथियों को दुःख देते हैं। उनका कारगर उपचार अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ तो प्रस्तुत नहीं कर सकीं, पर विश्वास है कि यज्ञोपचार शारीरिक और मानसिक रोगों से उससे कहीं अधिक छुटकारा दिला सकेगा जितना कि अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियां मिल–जुलकर दिलाती हैं।

17.4.2 यज्ञ द्वारा वायुमण्डल शोधन –अग्निहोत्र के अनेकानेक लाभ हैं। उनमें से एक यह भी है कि आकाश में संव्याप्त गंदगी की काट करने की उसमें अपूर्व क्षमता है। यह ठीक है कि अग्नि जहां भी जलेगी वहां ऑक्सीजन जलेगी और कार्बन उपजेगी। किन्तु यह नहीं मान लेना चाहिए कि गन्दगी से उत्पन्न तथा सुगन्ध से उत्पन्न हुई कार्बन दोनों एक ही स्तर की हैं। उनमें जमीन आसमान जैसा अन्तर है। इतना ही नहीं ये परस्पर विरोधी भी हैं। उनमें काटने की नहीं बनाने की क्षमता है। तलवार आक्रमण के लिए ही काम नहीं आती, उससे आत्मरक्षा भी हो सकती है। यह सिद्धान्त सर्वमान्य है – **''विषस्य विषमौषधम्''** विष की काट दूसरा विष करता है। होम्योपैथी के सिद्धान्त में तो पूरी तरह इस तथ्य को अपनाया गया है। उनमें रोगों की उत्पत्ति का कारण भी विष माना गया है और निवारण भी उसी को औषधि के रूप में देकर किया जाता है। यह बात अग्निहोत्र द्वारा कार्बन के उपाय द्वारा वायुमंडलीय विषाक्तता के शमन का प्रयोजन पूरा होते देखा गया है।

वस्तुतः पेड़–पौधे वातावरण के स्थूल भाग के परिशोधन तक ही सीमित हैं। सूक्ष्म वातावरण के परिशोधन में यज्ञ–अग्निहोत्र सर्वाधिक सशक्त एवं महत्वपूर्ण दूसरा उपाय हैं। इससे निकलने वाली दिव्य औषधियों की ऊर्जा, सुक्ष्मीकृत औषधि धूम्र, अपने प्रभाव से, वायु प्रदुषण निवारण कर सकने में समर्थ हैं। मोटी बुद्धि वाले कहते सुने गये हैं कि धूम्र किसी प्रकार का हो, कार्बन डायआक्साइड गैस उत्पन्न करता है। प्राणवायु नष्ट करता है। पर यह बात सर्वथा ऐसा नहीं है। यह बात तभी सही मानी जाती है जब यज्ञ प्रक्रिया में भी कारखानों की चिमनियों जैसा विषैला धुआं निकलता हो। यज्ञाग्नि को जिस वैज्ञानिक ढ़ंग से निरन्तर प्रज्वलित रखने का विधान है, उससे मात्र ऊर्जा निकलती है–धूम्र नहीं। सुगन्धित, पोषक, रोगनाशक औषधियों द्वारा विनिर्मित यज्ञ ऊर्जा वायुमण्डल के विपरीत प्रभाव को समाप्त करती है। दुर्गन्धित स्थानों पर सुगन्धित वस्तुएं जलाकर उनका परिमार्जन किया जाता है। सभी धर्म स्थानों में किसी न किसी रूप में सुगन्धित पदार्थों का जलाना पूजा विधान का एक अंग माना जाता है। अगरबत्ती, धूपबत्ती, लोबान आदि जलाकर कमरे मंदिर या अन्य पूजास्थल महकाये जाते हैं और सुगन्धित वातावरण में प्रवेश करने वाले प्रसन्नता अनुभव करते हैं, मानसिक उल्लास प्राप्त करते हैं।

वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि हवन से जो वायु बनती है उसमें अधिक भाग ओषजन होती है। इसका प्रमाण यह है कि हवन की वायु में सुगन्धित वायु अधिक मात्रा में होती है और औषजन युक्त वायु का ही दूसरा नाम प्राण–प्रद वायु है। गुगल, कपूर आदि पदार्थों के गुण सर्वविदित हैं। उन्हें रोग वाले स्थानों में जलाया जाता है। घृत दीपक मं भी यह विशेषता है। गुड़, शक्कर जलने से भी मात्र रोगकारक जीवाणुओं–विषाणुओं का ही हनन होता है, सजातीय जीवाणु नहीं मरते, जबकि एण्टी बॉयोटिक औषधियां सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार के जीवाणुओं को मारकर नफा–नुकसान बराबर कर देती हैं।

वातावरण को प्रसन्नतावर्धक–आरोग्य–समर्थक बनाने के लिए प्रत्येक शुभ कार्य को आरम्भ करते समय हवन किया जाता है। जिन लोगों में विधिवत हवन करने की पद्यति का

प्रचलन नहीं है, वे गुगल, कपूर, चन्दन आदि वस्तुएँ जलाकर सुगन्धित वायु उत्पन्न कर लेते हैं। इसे मांगलिक माना जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक प्रसन्नता बढ़ाने की विशेषता भी इसमें है। यह सब यज्ञ के अस्त–व्यस्त रूप हैं। सिद्धान्त इनके पिदे यही है कि यज्ञीय ऊर्जा सूर्य किरणों के समतुल्य है और वह मनुष्य के लिए हर दृष्टि से उपयोगी है। दूषित वायु को सुगन्धित वायु में परिवर्तित करने के सिद्धान्त का इस प्रक्रिया में समावेश है। अतः संवर्धन एवं वातावरण परिशोधन दोनों के लिए किसी न किसी रू‹ में यज्ञ को दैनिक क्रिया में सम्मिलित किया ही जान चाहिए।

अग्निहोत्र से न केवल मनुष्य लाभान्वित होता है, वरन अन्यान्य प्राणियों के स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन प्रक्रिया के अतिरिक्त भी इसके अनेकानेक लाभ हैं। वायुमण्डल में व्याप्त विषाक्तता का अनुपात कम करने, उसे निरस्त करने की उसमें अपूर्व क्षमता है। हवन की गैसों में कार्बन मोनोऑक्साइड का अत्यल्प अंश रहने पर भी औषधियों, घृत आदि द्रव्य पदार्थों का वाष्पीय प्रभाव उसे नष्ट करके लाभकारी बना देता है। उसमें स्थित उड़नशील सुरभित पदार्थ निर्विघ्न रूप से लाभदायक परिणाम प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त हवन–गैस से स्थान, जल, मिट्टी आदि अनेक तत्वों की शुद्धि हो जाती है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है और पोषक अणुओं को बढ़ाने वाले आवश्यक तत्व उसमें बढ़ जाते हैं। इसी कारण अग्निहोत्र धूम्र से पूरित पर्जन्य से युक्त मेघ अणु और औषधियों को निर्मलता तथा पुष्टि प्रदान करते हैं।

17.4.3 रोगाणु निरोधक एवं कीटनाशक के रूप में उपयोग – पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने रोग–कीटाणुओं के नाश के लिए दो पदार्थ निकले हैं – 1. एन्टीसेप्टिक, विष विरोधी और 2. डिस इन्फैक्ट्स, छूत के प्रभाव को रोकने वाले। प्रथम श्रेणी के पदार्थ रोग–कीटाणुओं से मनुष्य की रक्षा करते हैं, मारते नहीं। इस श्रेणी में फिनाइल, क्रियोजोट, हाइड्रोजन परऑक्साइड आदि की गणना की जाती है। दूसरी श्रेणी के पदार्थ रोगाणुओं को सीधे मार देते हैं। कुछ पदार्थों में दोनों गुण उसकी सघनता और विरलता की स्थिति के अनुसार पाए जाते हैं, पर इन तत्वों का सही प्रयोग कुशल वैज्ञानिक ही कर सकते हैं। साधारण लोग उसकी मात्रा का सही परिणाम नहीं कर सकने के कारण लाभ के स्थान पर हानि भी उठा सकते हैं और यह हानि तीव्र घातक होती है।

हवन–गैस इस दोष से रहित है। कदाचित कुछ विषैला अंश रहे भी तो घृत का वाष्पीय प्रभाव उसे नष्ट करके लाभकारी बना देता है। इसमें स्थित क्रियोजोट, एल्डीहाइड, फिनायल और दूसरे उड़नशील सुरभित पदार्थ वैसा ही लाभ देते हैं, जिससे सभी निर्विघ्न रूप से लाभ उठा सकते हैं।

शुद्ध वायु के अतिरिक्त हवन गैस से स्थान, जल आदि अनेक तत्वों की शुद्धि भी हो जाती है, जिससे पर्जन्य के द्वारा अन्न और औषधियाँ भी निर्मल और परिपुष्ट हो जाती हैं। इससे मानव शरीर रोगाणु निरोधक अणुओं से भरपूर हो जाता है। फिर उस पर रोगों का आक्रमण हो जाए तो कदाचित सफल भी हो जाए तो उसके शरीर में स्थित शक्तिशाली रोग–विध्वंशक अणु उसे अधिक समय तक जीवित रहने नहीं देते, उनका शीघ्र ही विनाश कर देते हैं।

खरगोश और चूहों पर ये परीक्षण करके हवन–गैस की रोग निरोधक और रोग विनाशक शक्तियाँ सिद्ध कर ली गई हैं।

परीक्षण के लिए रोग–कीटाणुओं का घोल तैयार किया गया है। उसे सबल–स्वस्थ जानवरों को देह में प्रवेश कराने से वह उस रोग से आक्रांत हो जाता है। उसी के या

दूसरे स्वस्थ जानवरों के शरीर में जब उस घोल में हवन–गैस मिश्रित कर प्रवेश कराया जाता है, तब वह रोगी नहीं होता। बारम्बार यह प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है।

17.4.4 कृषि में यज्ञोपैथी का सफल प्रयोग – कृषि में भी हवन–गैस की लाभदायकता सिद्ध हो चुकी है। मिट्टी में दो तरह के कीटाणु होते हैं, उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाल तथा दूसरे उसे नष्ट करने वाले। पाश्चात्य विज्ञान ने उर्वरा शक्ति नष्ट करने वाले कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए जो घातक द्रव्य तैयार किया है उसे मिट्टी में मिला देने से उर्वरा शक्ति–विनाशक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, जिससे पोषक कीटाणुओं की वृद्धि होकर उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। पर उनमें दोष यह है कि उसे शीघ्र ही मिट्टी से अलग नहीं करने पर वह उर्वरा शक्तिवर्द्धक कीटाणुओं का भी विनाश कर डालती है।

इस संदर्भ में अमेरिका के वाशिंगटन शहर में एक अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी की स्थापना की गई है। इसे साईं परांजये ने स्थापित किया है। वे यज्ञ द्वारा खेतों में फसल के बढ़ने का प्रतिपादन करते हैं। रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाओं से ऊबे अमेरिकनों को वे विकल्प के रूप में मंत्रोच्चार से दी गई घी की आहुतियों का मार्ग सुझाते हैं। विश्वविद्यालय की यह मान्यता है कि फसलों के सभी रोगों का रामबाण इलाज यज्ञ है। यज्ञ से फसल उत्पादन में वृद्धि की इस पद्धति को उन्होंने 'होम थेरेपी फार्मिंग' नाम दिया है।

खेतों में नियमित किए गए यज्ञ से वातावरण शुद्ध होता है एवं इससे पौधों में तेजी से बढ़ने व जमीन से अधिक शक्ति खींचने की सामर्थ्य आती है। इससे जो फसल होती है वह स्वादिष्ट होती है। 200 एकड़ तक के खेतों के मध्य किए गए यज्ञ से पौधों की जड़ों का स्वरूप ही बदल जाता है। लंबाई में भले ही कोई फरक न आए, उनकी जमीन से पोषकतत्व खींचने की सामर्थ्य में निश्चित ही वृद्धि होती है। इसके लिए विश्वविद्यालय ने अपने खेतों पर ही प्रयोग किए हैं, निष्कर्ष यह निकाले गए हैं कि यज्ञ करने से जमीन में नमी ज्यादा बनी रहती है। यदि पानी की सिंचाई के साथ स्नेह, श्रद्धा का पुट हो एवं मंत्रोच्चार भी किए जाए तो परिणाम और भी अच्छे होते हैं। पौधे भी स्नेह के भूखे हैं। यदि किसान अपनी फसल से प्यार करे, उन्हें पुचकारे तो वे बीमार नहीं होते, अच्छा उत्पादन देते हैं।

सभी का अनुभव है कि पौधों की बीमारियों के लिए प्रयुक्त कीटनाशक दवाओं से जमीन कमजोर होती है एंव फसल का उत्पादन भले ही बढ़ जाए, गुणवत्ता की दृष्टि से वह गौण होती है। इसी कारण कीटनाशक दवाओं के उपयोग पर अब पुनर्विचार किया जा रहा है। अग्निहोत्र विश्वविद्यालय कीटाणुओं के नाश के लिए यज्ञ की राख एंव गोबर की खाद का प्रचार कर रहा है। पानी में राख मिलाकर उसकी सिंचाई से पौधों की जीवनीशक्ति में वृद्धि होती है, जिससे वे कीटाणुओं से ठीक तरह लड़ पाते हैं। मंत्रोच्चार के साथ की गई सिंचाई पौधों की सामर्थ्य में और भी वृद्धि कर देती है। अग्निहोत्र विश्वविद्यालय के अनुसार ये मंत्र पौधों के लिए टॉनिक का काम करते हैं।

आज की फसलों की गिरती गुणवत्ता के पीछे वे वातावरण प्रदूषण को मुख्य कारण मानते हैं। इसीलिए यज्ञ की महत्ता भी प्रतिपादित करते हैं, जो वातावरण को शुद्ध करता है। धूम्रकृत औषधियाँ, घी, धान, हवा में मिलकर उसे शुद्ध करती हैं एवं फिर वर्षा के माध्यम से जमीन में पहुंचकर जड़ों का पोषण करती हैं। उनके अनुसार यज्ञ का धुआँ पहले पूरब की ओर उड़ता है, फिर घड़ी की तरह घूमता है। इसका प्रभाव आठ किलोमीटर की

परिधि में होता है। इससे उन्हें विश्वास है कि अमेरिका के दक्षिणी भाग में लगने वाले 'अल्बीनो' नामक फसल नाशक कीड़े को समाप्त कर सकेंगे।

वैज्ञानिकों द्वारा हवन–गैस को कुछ समय तक मिट्टी पर डालकर देखा गया है और पाया गया कि इससे उसकी उर्वराशक्ति बहुत बढ़ जाती है और पोषक अणुओं को बढ़ाने वाले आवश्यक तत्व उसमें भर जाते हैं। उनका निष्कर्ष है कि इन्हीं तत्वों के कारण यज्ञीय–गैसों से पूरित पर्जन्य और बादल अन्न और औषधियों को निर्मलता और पुष्टि प्रदान करते हैं।

17.4.5 यज्ञ द्वारा अमृतमयी वर्षा –

यज्ञ का वर्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यज्ञ द्वारा वर्षा करना और रोकना ऋषियों के लिए सरल था। अपनी इसी सफलता का उद्घोष करते हुए उन्होंने यज्ञ की महत्त गाई और कहा –

यज्ञेनाऽऽप्याग्यिता देवा बुष्टयुत्सर्गेण मानवाः।

आप्यायनं वै कुर्वन्ति यज्ञाः कल्याण हेतवः।।

पद्मपुराण सृष्टि खण्ड 3/124

यज्ञ से देवता परिपुष्ट होते हैं। यज्ञ से वर्षा होती है और मनुष्य का पालन होता है। यज्ञ ही कल्याण का हेतु है।

यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्टयुत्सर्गेण वै प्रजाः।
आप्यायन्ते तु धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याण हेतवः।। विष्णु पुराण 6/18

यज्ञ से देवताओं का अभिवर्धन होता है।यज्ञ द्वारा वर्षा होने से प्रजा का पालन होता है। यह यज्ञ ही कल्याण का हेतु हैं।

अन्नाद्भवति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्म समुद्भवः।। गीता 3/14

समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है वर्षा यज्ञ से होती है और वह यज्ञ कर्म से होता है।

वर्षा कराने और रोकने में अतिवृष्टि और अनावृष्टि रोकने में यज्ञों की सामर्थ्य अद्भुत है।

''निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु''

इच्छानुसार वर्षा करना, वर्षा पर मानुषी आधिपत्य कराना यज्ञ भगवान के हाथ में है। केवल जल वर्षा ही नहीं, यज्ञ से उसे प्राण की वर्षा भी होती है जो समस्त प्राणियों को स्वस्थ, सजीव और चिरस्थाई बनाता है। वस्तुतः पर्जन्य से तात्पर्य अन्तरिक्ष से प्राण वर्षा होने का है। जिस प्रकार भूमि में रासायनिक खाद लगा देने से उत्पादन कहीं अधिक बढ़ जाता है, उसी प्रकार यह प्राण शक्ति बादलों के साथ या बिना बादलों के भी धरती पर बरसती है तो उसका लाभ वनस्पत्तियों, जीवधारियों, विशेषकर मनुष्य को मिलता है। उस प्राण में ही यह पृथ्वी स्थिर है। अमृत प्राण जो यज्ञ का प्रधान उपहार है इस धरती माता को हरी–भरी बनाये हुए है। इसीलिए कहा गया है– **''यज्ञाः पृथिवीं धारयन्ति''** अर्थववेद

'यज्ञ ही इस पृथ्वी को धारण किए हुए है।' केवल ऋषि वाक्यों से ही नहीं, वैज्ञानिक प्रमाणों से भी यह सिद्ध हो गया है कि यज्ञों द्वारा जब चाहे वर्षा करा दी जा

सकती है तथा अनावश्यक वृष्टि को रोका भी जा सकता है। ऋतुओं में अभिष्ट परिवर्तन एवं प्रकृति संतुलन के लिए यज्ञों की उपयोगिता असंदिग्ध है।

17.4.6 प्राकृतिक प्रकोपों का निवारण –

गीता में कहा गया है –

देवान्यावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

तुम सब यज्ञीय कर्मों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करो। देवता प्रसन्न होकर अपने अनुग्रह की वर्षा करेंगे।

देवताओं को प्रसन्न रखने से अभिप्राय यहां प्रकृति को सन्तुलित एवं व्यवस्थित रखने से भी है। प्रकृति देवीय शक्तियों की क्रीड़ा भूमि है। उसके अनुदानों से ही विश्व वसुन्धरा पुष्पित–पल्लवित होती तथा समुन्नत बनती है। विभिन्न दैवीय शक्तियाँ ही अपना स्थूल परिचय प्रकृति की हलचल बन कर देती है। जिनका अलंकारिक वर्णन पौराणिक उपाख्यानों में आता है। इनमें वर्णन है कि देवता मनुष्य के सत्कर्मों से प्रसन्न होकर अनुदान बिखेरते हैं। इन देवताओं के अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए इन्हें प्रसन्न रखना होता है। प्रसन्न रखने का अभिप्राय यहां उन्हें प्रसाद, उपहार देने से नहीं है, न उनकी आवश्यकता ही देवी–देवताओं को है। वे शक्तियाँ मात्र अनुनय–विनय पर प्रसन्न नहीं होती। मानवी परम्परा अपनाकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जा सकता है।

शास्त्रों में वर्णन है कि मनुष्य जितनी गंदगी फैलाता है उसकी स्वच्छता के लिए तथा वातावरण को परिशोधित करने के लिए यज्ञ कृत्य करने चाहिए। यज्ञ देवता वातावरण को परिशोधित करते तथा संतुलित रखते हैं। उसके प्रभाव से ऋतुएं समय पर आती है। सन्तुलित वातावरण मानवी सुख–समृद्धि का आधार बनता है। पौष्टिक अन्न, वनस्पत्तियाँ उपजाती हैं। मनुष्य स्वस्थ एवं निरोग बनता है। यज्ञ प्रयोगों के सत्परिणामों से सभी परिचित हैं। अतीत में जब तक यज्ञ प्रक्रिया चलती रही प्रकृति का सन्तुलन बना रहा। कहते हैं कि भारत ने विश्व मानव को तृप्त किया था। कालान्तर में यही प्रक्रिया बन्द हो गई। मनुष्य का भ्रष्ट चिन्तन तथा दुष्ट कर्तृत्व वातावरण में ऐसे प्रदूषण भरने लगा जो वायुमण्डल में बढ़ती जाने वाली विषाक्तता से भी अधिक भयंकर है।

यज्ञ के अनन्त लाभ हैं। उसके द्वारा मन और आत्मा पर पड़ने वाल प्रभाव को न भी मानों तो भी अनुसंधान के द्वारा यह तथ्य तो प्रकाश में लाए ही जा सकते हैं कि यज्ञीय धूम्र में वायु के विषैले तत्वों को नष्ट करने की विलक्षण क्षमता है। ऋषि इस बात को अच्छी तरह जानते थे। अथर्ववेद में कहा गया है '' **वायुः अंतरिक्ष स्याधिपति**'' (5/24/8) अर्थात् वायु अन्तरिक्ष का अधिपति है। **वायुर्यजर्विद्** अर्थात् वायु ज्ञान से सम्बन्धित विज्ञान ही यजुर्वेद है। वेद शास्त्रों में स्थान–स्थान पर इस बात का उल्लेख किया गया है कि यज्ञ वायु का शोधन करने वाला मनुष्य का प्राणदाता है और वायु को शुद्ध रखने के लिए यज्ञ आवश्यक है। यज्ञ में आहुति की गई औषधियाँ केवल दूषित तत्वों, कृमि कीटकों को ही नहीं मार भगाते वरन् पौष्टिक तत्वों का अभिवर्धन भी करते हैं। अस्तु, वायुमंडल को दूषित होने से बचाने और जीवधारियों एवं वृक्ष वनस्पतियों की जीवन रक्षा के लिए यज्ञ ही एक मात्र साधन है।

17.4.7 सूक्ष्म जगत एवं जनमानस का परिष्कार –

यज्ञ का ज्ञान पक्ष यह है कि मनुष्य व्यक्तिगत जीवन में पवित्र और सामाजिक जीवन में उदार बनकर रहें। सामूहिकता, जागरूकता, अनुशासन जैसी सत्प्रवृत्तियों का

अभ्यास बढ़ाया और इस तरह का वातावरण बनाया जाय। यह दोनों ही पक्ष ऐसे हैं जिनका सही रीति से कार्यान्वयन करने से व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुलता है। देखने में यज्ञ एक कृत्य मालूम पड़ता है पर वस्तुतः वह चेतना का एक प्रवाह है। उसे सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय भी कह सकते हैं। शास्त्रकार ने सच ही कहा है यज्ञ में देवत्व का परिपोषण होता है और उस पुष्टि प्रक्रिया का प्रतिफल सर्वजनीन सम्पन्नता और प्रसन्नता की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने के रूप में मिलता है।

यज्ञ का सूक्ष्म विज्ञान है। उसके तत्वज्ञान और विधि–विधान में ऐसे तत्व विद्यमान है जो सूक्ष्म जगत के अदृश्य वातावरण में देवत्व की मात्रा बढ़ाते हैं। उससे सर्वजनीन सुख–शांति में अदृश्य सहायता मिलती है। वायु शोधन को यज्ञ का प्रधान उद्देश्य समझा जाता है। वातावरण का निर्माण यज्ञों का प्रमुख प्रयोजन है। पवित्र वेद मन्त्रों का उच्चारण विश्व चेतना में पवित्रता के तत्व भरने वाले दिव्य कम्पन्न उत्पन्न करता है। सामान्य आग को यज्ञाग्नि–देवाग्नि बनाने का कार्य अध्वर्यु, उदगाता जैसे विशिष्ट याजकों की श्रद्धा और संकल्प शक्ति करती है। पवित्र हवन द्रव्यों के जलने से उत्पन्न हुई ऊर्जा से सूक्ष्म जगत में उपयोगी परिवर्तन होते हैं। एकरूपता, समस्वरता, सहक्रिया की विशिष्ट शक्ति सर्वत्र स्वीकारी जाती है। यज्ञ में ऐसे–ऐसे अनेकानेक आधारों का समन्वय है जिनका सम्मिलित प्रभाव वातावरण में ऐसे उपयोगी तत्वों का समावेश करता है जो अविज्ञात रूप से विश्व–कल्याण की भूमिका सम्पन्न कर सकें।

संव्याप्त विकृतियों के निराकरण का एकमात्र उपाय 'दमन' ही नहीं है, दूसरा उपाय शमन भी है। शमन अर्थात् समझाया जाना–समाधान। दमन के लिए दण्ड विधानों का आश्रय लेना पड़ता है और शमन के लिए लोक शिक्षण का जन–जागरण का उपाय अपनाना होता है। संसार के शक्तिशाली तन्त्र दो ही हैं एक धर्म और दूसरा शासन। दोनों ही क्षेत्रों में सामयिक समाधान के लिए अपने–अपने क्षेत्रों के प्रतिभाशाली लोगों का सम्मेलन बुलाया जाता था और उसमें विचार विनिमय के माध्यम से ऐसा निर्धारण किया जाता था। जो सुधार की आवश्यकता पूरी कर सके। ऐसे आयोजनों को विशिष्ट यज्ञ कहा जाता था। इनमें धर्म क्षेत्र के आयोजनों को बाजपेय यज्ञ और शासन क्षेत्र के सम्मेलनों को राजसूय यज्ञ कहते थे। राजसूय यज्ञों में अश्वमेध की प्रधानता थी। बाजपेय यज्ञों में गायत्री यज्ञों की । सामयिक समस्याओं के समाधान में इनका असाधारण योगदान रहता था।

17.4.8 सात्विक गुणों के अभिवर्द्धन एवं मानसिक संतुलन में उपयोगी –

बादलों को सात्विक गुणों वाले एंव निर्मल– पुष्ट बनाने के लिए यज्ञ–धूम्र के अणुओं का उसमें प्रविष्ट कराना सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिए जिस देश में अधिक अग्निहोत्र और यज्ञ कर्म होते हैं, वहां की सृष्टि सवगुणों से भरी होने के कारण अन्न और औषधियों में भी वे गुण ओत–प्रोत हो जाते हैं। अन्न का सूक्ष्म अंश ही मन की पुष्टि करता है। अतः यज्ञीय देशों के निवासियों का मन भी सात्विक निर्मलता से अनुप्राणित होता रहता है। वहां के निवासियों के जीवन और गति में सात्विक तत्व संचरित होता है। आज सारे संसार में ही अग्निहोत्र करने की विशेष आवश्यकता है। गत महायुद्ध में भिन्न–भिन्न विषैली गैसों के कारण आकाश, वायु, बादल आदि सभी में वह विष भर रहा है। इसी से सर्वत्र विषैली राजसी–तामसी भावनाओं ने ही अन्न, वनस्पति, सभी प्राणी और मनुष्यों में अपना आधिपत्य जमा रखा है। फलतः सर्वत्र रोग, पीड़ा अशांति और संघर्ष फैला हुआ है। इसके निवारण का एक ही हल है सभी देशों और स्थानों में शास्त्रीय विधि से किए गए विभिन्न अग्निहोत्र।

अग्निहोत्र से जो वायुमण्डल में घी और हवन–सामग्रियों के धुंए के अणु फैलते हैं, उनमें नेगेटिव चार्ज के विद्युत अणु प्रवेश कर जाते हैं। यह आज के भौतिक विज्ञान के प्रयोग द्वारा सिद्ध हो चुका है कि नेगेटिव चार्ज के लिए विद्युत अणु वायुमंडल में से नमी को खींच लेते हैं अैर धीरे–धीरे इसके आस–पास बादल के खंड बन जाते हैं। ये बादल यज्ञीय धूम्र अणुओं से ओत–प्रोत रहते हैं। इनका विषैला अंश नष्ट हो जाता है। ऐसी वृष्टि से भी केवल मनुष्य में ही नहीं प्राणीमात्र, वनस्पति और मिट्टी में भी साविक भावों का संचार हो जाता है।

जर्मनी में वैज्ञानिकों द्वारा किए प्रयोगों से भी अब यह सिद्ध हो गया है कि रोग–कीटाणुओं को मारने की जितनी शक्ति यज्ञ ऊर्जा में है उतनी सरल, व्यापक और सस्ती पद्धति अभी तक नहीं खोजी जा सकी है। यज्ञ को प्राचीनकाल में शारीरिक व्याधियों और मानसिक व्याधियों के शमन में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा रहा है। यज्ञ चिकित्सा के खोये हुए पृष्ठ यदि फिर से ढूंढ़े जा सकें और इस विज्ञान को नये सिरे से सुव्यवस्थित किया जा सके तो ऐसे सत्परिणामों की पूरी–पूरी संभावना है कि शारीरिक ही नहीं, मानसिक रोगों का भी सफल उपचार किया जा सके। चिकित्सा पद्धतियों में यज्ञ चिकित्सा को इसलिए वरिष्ठता मिल सकती है कि औषधियों को सूक्ष्म वायुभूत बनाकर शरीर में अत्यन्त सरलता से पहुंचाया जा सकता है। औषधि उपचार में स्थूल प्रक्रिया अपनाये जाने के कारण इतनी गहरी पैठ इतनी जल्दी नहीं हो सकती। आज के रुग्णता का पर्यवेक्षण करने से प्रतीत होता है कि शारीरिक रोगों से भी अधिक अर्द्ध–विक्षिप्तता, सनकें, बुरी आदतें, अपराधी प्रवृत्तियां, उच्छृंखलता, आवेशग्रस्तता, अचिंत्य, चिंतन, दुर्भावना जैसी मानसिक व्यथाएं मनुष्य को कहीं अधिक दुःख दे रही हैं और विपत्ति का कारण बन रही हैं। इस संकट का निवारण यज्ञोपचार का सुव्यवस्थित रूप बन जाने पर भली प्रकार हो सकता है। जिस–तिस रूप में चल रही वर्तमान यज्ञ–प्रक्रिया में किसी न किसी रूप में शारीरिक और मानसिक व्याधियों के समाधान में बहुत कुछ सहायता मिलती है।

यज्ञोपचार प्रक्रिया में किस रोग में, किस विधान से, किस मंत्र एवं औषधि का उपयोग किया जाए, इसकी रहस्यमयी विद्या का मंथन आज फिर से किया जाना जरूरी है। शांतिकुंज के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में यज्ञविद्या को, विशेषतया अग्निहोत्र को अपने शोध में सम्मिलित किया गया है। ब्रह्मवर्चस अग्निहोत्र प्रयोगशाला विश्व में अपने ढंग की अनोखी है। उसमें बहुमूल्य वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा इस प्रक्रिया का समग्र विश्लेषण किया जा रहा है। एक विशाल वनौषधि उद्यान भी यहां लगाया गया है। इन प्रयोगों से जो प्रतिफल सामने आए हैं, वे आशाजनक एंव उत्साहवर्द्धक हैं।

यज्ञ के अन्य विषेष लाभ

(1) मनुष्य शरीर से निरन्तर निकलती रहने वाली गन्दगी के कारण जो वायु मण्डल दूषित होता रहता है, उसकी शुद्धि यज्ञ की सुगन्ध से होती है। हम मनुष्य शरीर धारण करके जितना दुर्गन्धपैदा करते हैं उतनी ही सुगन्ध भी पैदा करें तो सार्वजनिक वायु तत्व को दूषित करने के अपराध से छुटकारा प्राप्त करते हैं।

(2) यज्ञ धूम्र आकाश में जाकर बादलों में मिलता है उससे वर्षा का अभाव दूर होता है। साथ ही यज्ञ धूम्र की शक्ति के कारण बादलों में प्राणशक्ति उसी प्रकार भर जाती है जिस प्रकार इन्जेक्शन की पिचकारी से थोड़ी सी दवा भी शरीर में प्रवेश करा दी जाय तो उसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। यज्ञ कुण्डों को इन्जेक्शन की पिचकारी, मन्त्रों को सुई और आहुतियों कोदवा मान कर आकाश में जो इन्जेक्शन लगाया जाता है उसका फल

प्राणप्रद वर्षा के रूप में प्रकट होता है। ऐसी वर्षा से अन्न, घास पात, वनस्पतियां, जीव जन्तु सभी बलवान परिपुष्ट एवं शक्तिशाली सम्पन्न बनते हैं।
(3) यज्ञ के द्वारा जो शक्तिशाली तत्व वायु मण्डल में फैलाये जाते हैं उनसे हवा में घूमते हुए असंख्यों रोग कीटाणु सहज ही नष्ट होते हैं। यज्ञ की वायु सर्वत्र पहुंचती है और प्रयत्न न करने वाले प्राणियों की भी सुरक्षा करती है। मनुष्यों की ही नहीं पशु पक्षियों, कीटाणुओं एवं वृक्ष वनस्पतियों के आरोग्य की भी यज्ञ से रक्षा होती है।
(4) यज्ञ द्वारा पृथक–पृथक रोगों की भी चिकित्सा हो सकती है। यज्ञ तत्व का ठीक प्रकार उपयोग करके अन्य चिकित्सा के मुकाबले में अधिक मात्रा में और अधिक शीघ्रतापूर्वक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
(5) यज्ञ द्वारा विश्वव्यापी पंच तत्वों की तन्मात्रों की, तथा दिव्य शक्तियों की परिपुष्टि होती हैं। इसके क्षीण हो जाने पर दुखदायी असुरता संसार में बढ़ जाती है और मनुष्य को नाना प्रकार के त्रास सहने पड़ते हैं।
(6) यज्ञ में जिन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है उनकी शक्ति असंख्यों गुनी अधिक होकर संसार में फैल जाती है, और उस शक्ति का लाभ सारे विश्व को प्राप्त होता है। उसका प्रभाव समस्त प्राणियों पर पड़ता है और वे सदबुद्धि से, सद्भावना से, सत्प्रवृत्तियों से अनुप्राणित मनुष्य संसार में सुख–शान्ति की स्थापना का प्रमुख आधार बनते हैं।
(7) यज्ञकी ऊष्मा मनुष्य के अन्तःकरण पर देवत्व की छाप डालती है। जहां यज्ञ होते हैं वह भूमि एवं प्रदेश सुसंस्कारों की छाप अपने अन्दर धारण कर लेता है और वहां जाने वालों पर भी दीर्घकाल तक प्रभाव डालती रहती है। प्राचीन काल में तीर्थ वहीं बने हैं जहां बडे–बड़े यज्ञ हुए हैं।
(8) कुबुद्धि, कुविचार, दुर्गुण एवं दुष्कर्मो से व्यक्तियों की भी मनोभूमि में यज्ञ से भारी सुधार होता है। इसलिए यज्ञ को पाप नाशक कहा गया है। यज्ञीय प्रभाव से सुसंस्कृत हुई विवेकपूर्ण मनोभूमि का प्रतिफल जीवन के प्रत्येक क्षण को स्वर्गीय आनन्द से भर देता है, इसलिए यज्ञ को स्वर्ग देने वाला कहा गया है।
(9) यज्ञीय धर्म प्रक्रियाओं में भाग लेने से आत्मा पर चढ़े हुए मल विक्षेप शुद्ध होते हैं।फलस्वरूप तेजी से उसमें ईश्वरीय प्रकाश आने लगता है। यज्ञ से आत्मा में ब्राह्मणत्व तत्व, ऋषित्व की वृद्धि दिन–दिन होती है। और आत्मा को परमात्मा से मिलाने का परम लक्ष्य बहुत सरल हो जाता है।
(10) यज्ञ त्यागमय जीवन के आदर्श का प्रतीक है। इदन्न मम (यह मेरा नहीं सम्पूर्ण समाज का है) इन भावनाओं के विकास से ही हमारा सनातन आध्यात्मिक समाजवाद जीवित रह सकता है।
(11) यज्ञ हमारा सर्वोत्तम शिक्षक है जो अपना आदर्श अपनी क्रिया से स्वयम् ही प्रकट करता रहता है। (क) अग्नि का स्वभाव है कि सदा उष्णता और प्रकाश धारण किये रहती है हम भी उत्साह, श्रमशीलता, स्फुर्ति, आशा एवं विवके शीलता की गर्मी और रोशनी अपने में धारण किये रहें। (ख) अग्नि में जो वस्तु पड़ती है उसे वह अपने समान बना लेती है, हम भी अपने निकटवर्ती लोगों को अपने समान सद्गुणी बनावें। (ग) अग्निकी ज्योति सदा ऊपर को ही उठती है, उलटने पर भी मुंह नीचे को नहीं करती, हम भी विषम परिस्थितियां आने पर भी अधोगामी न हों वरन् अपने आदर्श ऊँचे ही रखें। (घ) अग्नि कोई वस्तु अपने पास नहीं रखती वरन् जो वस्तु मिली उसे सूक्ष्म बनाकर आकाश में फैला देती है, हम भी उपलब्ध वस्तुओं को अपने लिए ही न रखें वरन् उन्हें समाज के हित में वितरण करते रहें।

(ड) अग्नि का ही यह शरीर भेंट किया जाने वाला है, इसलिये चिता का सदा स्मरण रखें, मृत्यु को सामने देखें और सत्कर्मों में शीघ्रता करने एवं दुष्कर्मो से बचने को तत्पर रहें। इन भावनाओं के प्रतिनिधि रूप में यज्ञाग्नि की पूजा की जाती है।

(12) यज्ञ आयोजनों में सामूहिकता, सहकारिता और एकता की भावनाएं विकसित होती है।

(13) हिन्दु जाति का प्रत्येक शुभ कार्य, प्रत्येक पर्व, त्यौहार संस्कार यज्ञ के साथ सम्पन्न होता है। यज्ञ भारतीय संस्कृति का पिता है। यज्ञ भारत की सर्वमान्य एवं प्राचीनतम वैदिक उपासना है। धार्मिक एकता एवं भावनात्मक एकता को लाने के लिये यज्ञ आयोजनों की सर्वमान्य साधना का आश्रय लेना सब प्रकार दूरदर्शिता पूर्ण है।

अभ्यास प्रश्न – ख

11. यज्ञ वेद के किस विषय से संबंधित हैं ?
12. वातावरण को प्रसन्नतावर्धक–आरोग्य–समर्थक बनाने के लिए प्रत्येक शुभ कार्य में किस पदार्थ का हवन किया जाता है। ?
13. धर्म क्षेत्र के आयोजनों को ....यज्ञ और शासन क्षेत्र के सम्मेलनों को .... यज्ञ कहते थे ?

17.5 यज्ञ की सावधानियाँ –

यज्ञ की सफलता के लिए यह आवश्यक है, कि उसके सब कार्य विधि–व्यवस्था पूर्ण हों। आग तापने या होली जलाने जैसा कौतुहल करने के लिये हवन करना व्यर्थ ही नहीं हानिकारक भी है। कहा भी है–**'नास्ति यज्ञ समं रिपु'** अविधि पूर्वक किया गया हवन, शत्रु के समान हानिकारक भी होता है, जबकि विधिपूर्वक किया हुआ हवन कामधेनु गौ एवं कल्पवृक्ष के समान हमारे अभावों को दूर करने वाला सिद्ध हो सकता है।

यज्ञ एक प्रकार का वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जो वैज्ञानिक प्रक्रिया जितनी शक्तिशाली होती है, उसमें उतनी ही सावधानी बरतनी पड़ती है। बढ़िया बारूद बनाने के कारखाने में यदि रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण में लापरवाही होने लगे, तो वहाँ रददी बारूद बनेगी और जब उसका बन्दुक में उपयोग किया जाएगा, तो लक्ष्य वेध में सफलता न मिलेगी, इसलिए उस बारूद के कारखाने के व्यवस्थापक पूरी सावधानी से यह देखभाल करते रहते हैं, कि कारखाने का हर कार्य पूर्ण रूपेण नियम पूर्वक हो। यदि बारूद पिसने वाले या कारतूस भरने वाले कर्मचारी ढील–पोल की नीति से काम करें, लापरवाही बरतें, बीड़ी पीकर चिनगारी बखेर दें, तो सारे कारखाने का ही स्वाहा कर सकते हैं। घटिया कार्यों में लापरवाही चल सकती है, पर जो कार्य जिम्मेदारी के हैं उनमें पूर्ण जागरूकता एवं पूर्ण व्यवस्था की ही आवश्यकता रहती है। यज्ञ में ऐसी ही विधि–व्यवस्था बरती जानी चाहिए।

1. आवश्यक समान पहले से ही संग्रह कर लेना चाहिए, ताकि आवश्यकता पड़ने पर बीच–बीच में काम बन्द न करना पड़े, पूजा के सभी उपकरण एकत्रित हो गये हैं या नहीं,

वह एक दृष्टि से पहले ही देख लेना उचित है। सभी वस्तुओं की शुद्धता का पूरा ध्यान रखा जाय।

2. सड़ी–गली ,नकली गन्दी, सस्ती चीजें प्रायः पंसारी लोग हवन–पूजा आदि के लिए सुरक्षित रख लेते हैं। खरीदने वाले भी सोचते हैं, यह चीजें हमें खानी थोड़े ही है, सस्ती चीजें लेकर काम क्यों नहीं चला लें। यह उपेक्षा बुरी है। जब हम अपने साधारण मित्र, अतिथि या रिश्तेदार को अपने उपयोग की अपेक्षा कुछ चीजें प्रस्तुत करते हैं तो देवताओं को, पितरों को यज्ञ भगवान को, सड़ी–गली चीजें भेंट करना किस प्रकार उचित हो सकता है।

3. दवात–कलम, कागज, स्याही आदि ठीक न होतो अच्छा लेख लिख सकना असम्भव है। इसी प्रकार यज्ञीय उपकरणों का ठीक होना आवश्यक है। स्रुवा, स्रुचि, प्रणिता, प्रोक्षणीद्व स्थल, चरुस्थाली, आज्यस्थाली आदि यज्ञ पात्र, निर्धारित वृक्षों की लकड़ियों से निर्धारित नाप–तोल से बने होने चाहिए।

4. पात्र रचना में वैज्ञानिक तथ्य भरे हुए हैं। तांबे के बर्तन में रखा हुआ दूध थोड़े ही देर में विषैला हो जाता है। दूध पीने के लिए मिट्टी या चांदी का पात्र उपयुक्त माना गया है। इसी प्रकार यज्ञ–सामग्री, हवि, चरु, आज्य, जल आदि के लिए जिन काष्ठों के जिस आकार के पात्रों का निर्धारण किया गया है, वह परम्परा सूक्ष्म विज्ञान पर अवलम्बित है। उसकी उपेक्षा न की जानी चाहिए।

5. समिधाएँ सब वृक्षों की काम में नहीं ली जा सकती हैं। जिनमें काष्ठों में उपयोगी सूक्ष्म शक्ति मिली है, उनको यज्ञ में ग्राह्य माना गया है। बड़, पीपल, गूलर, आम, शमी, ढाक, छोंकर आदि की समिधाएँ प्रयोजनीय हैं। इमली, नीम, बबूल या कांटेदार वृक्ष निषिद्ध ठहराये गये हैं। समधिाऐं उस वृक्ष से लेनी चाहिए जो मरघट, कसाई खाना, पखाना, आदि घृणित स्थानों पर अवस्थित न होकर पूजा–उपासना के क्षेत्र से समीप हों। दक्षिण दिशा की झुकी हुई गिद्ध चील आदि की बिष्ठा से सनी हुई शाखाऐं हवन के लिए उपयुक्त नहीं। समिधाऐं को धोकर धूप में सुखा देना चाहिए, शुद्ध समिधाऐं ही प्रयोजनीय हैं।

6. हवनसामग्री का विषय अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सूक्ष्म विचारणीय एवं सावधानी रखने योग्य है। हवन में जौ, चावल ,तिल आदि हविष्यान्न प्रयुक्त होते हैं। खीर, हलुआ, मोदक आदि का चरू बनाया जाता हैं। किशमिश, मुनक्का, छुहारा, शक्कर मधु आदि मिष्ट पदार्थ हो जाते हैं। चन्दन देवदारु अगर, तगर, छारछबीला, गूगल आदि सुगन्धित फैलाने वाले पदार्थ काम में लाये जाते हैं। दालचीनी, बच, बाह्मी, शतावर, जावित्री आदि औषधियाँ हवन की जाती है। घृत इन सब का अनुपान है, घृत इनमें से प्रत्येक वर्ग के साथ रहता है। तांत्रिक उपचारों में जहाँ गोल मिर्च, अपामार्ग आक, नखलोम आदि का हवन करते है। वहाँ भेड़, गधी, ऊँट आदि के दूध का घी या सरसों या सत्यानाशी आदि का तेल प्रयुक्त होता है।

7. किस संकल्प के साथ किस उद्देश्य से किस सामर्थ्य का मनुष्य कैसा हवन कर रहा है, उसे भली प्रकार समझ लेने के बाद ही हवन–सामग्रियों का निर्धारण करना उचित है।

8. आयुर्वेद शास्त्र के निघण्टु भाग में प्रत्येक औषधि के गुणों का चूर्ण है। यदि आरोग्य के लिये हवन किया गया है, तो सामने उपस्थित बीमारी के उपयुक्त हवन सामग्रियों का चुनाव होना चाहिए।

9. यों साधारण हवन में सभी सामग्रीयाँ लगभग समान भाग मिला लेने से काम चल जाता है, पर विशेष परिस्थिति में उनकी मात्रा में न्यूनाधिकता करनी ही पड़ेगी। रोगी के शरीर में वात, पित्त कफ किस की प्रधानता है। कौन सा दोष मन्द और कौन सा रोग प्रबल है।

ज्वर, खांसी, अतिसार आदि कई रोगों का सम्मिश्रण हो, तो उनमें से कौन अधिक और कौन मन्द है, इसका अनुपात देखते हुए उन रोगों की औषधियों के नाम तथा मात्रा निर्धारित करनी होगी।

10. मानसिक संस्कार के लिए किये गये हवनों की सामग्री का चयन करते समय पदार्थों के अन्दर छिपे हुए चेतना का ज्ञान होना चाहिए। जैसे तुलसी और करंज में आयुर्वेद की दृष्टि से कृमि नाशक गुण लगभग समान है। फिर भी चेतना विज्ञान की दृष्टि से तुलसी में सात्विकता और करंज में तमोगुण की प्रधानता स्पष्ट अनुभव की जा सकती है। प्याज और लहसुन में आरोग्य की दृष्टि से कोई बुराई नहीं है, पर चेतना विज्ञान उनमें तमोगुण की प्रधानता बताता है। इसके सेवन से स्वास्थ्य चाहे सुधरे पर सेवन करने वाले के मनन क्षेत्र में तमोगुण अवश्य बढेगा। इसी प्रकार प्रत्येक हविष्यान्न, चरु, हवि, आज्य, औषधि में कुछ विशेष चेतना तत्व छिपे होते हैं। वे अपना प्रभाव बौद्धिक जगत में उत्पन्न करते हैं। व्यक्तिगत रूप से काम, क्रोध, लोभ, आवेष, चिन्ता, शोक, भय, उन्माद आदि की निवृत्ति के लिए तथा समष्टि रूप में व्यापक वायुमण्डल में फैले हुए स्वार्थ परता, युद्धोन्माद आदि को शान्त करने के लिए ऐसी हवियों को चुनना पड़ेगा, जिनकी सूक्ष्म चेतना शक्ति अभीष्ट प्रयोजन के लिए उपयुक्त हो।

11. प्राचीन काल में हवनीय सम्पूर्ण पदार्थों का संस्कार करके उनमें वह सूक्ष्म शक्तियाँ पैदा की जाती थीं। जो अभिष्ट उद्देश्य के लिए आवश्यक होती थीं। हवन में काम आने वाली औषधियाँ अमुक प्रकार के क्षेत्र में, अमुक नक्षत्र में, अमुक मंत्रों के साथ बोई जाती थीं, उन्हें अमुक प्रकार के जल से सींचा जाता था और उनमें अमुक खाद दिये जाते थे। अमुक मुहूर्त में तोड़ा जाता था और अमुक मन्त्रों से संस्कार करके उन्हें हवन योग्य बनाया जाता था। इस प्रकार संकल्पपूर्वक चेतनामय वातावरण को हवन द्वारा उत्तेजित करके, आकाश को अभीष्ट तत्वों से परिपूर्ण कर दिया जाता था यह परिपूर्णता ही भौतिक या आध्यात्मिक मनोकामनाओं को पूर्ण करने का हेतु बनती थी।

यज्ञोपैथी द्वारा रोगों की चिकित्सा के लिए निम्न प्रक्रिया एंव सावधानियां अपनानी पड़ती हैं –

1. सर्वप्रथम रोगानुसार औषधि हवन सामग्री का चयन करते हैं।
2. अग्नि प्रज्ज्वलन हेतु समिधा का चयन करते हैं। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख समिधाएँ हैं।

आम्र, पीपल, बेल, अशोक इत्यादि।

3. रोगानुसार मुख्य हवन सामग्री एवं सामान्य हवन सामग्री निश्चित करते हैं।
4. जिस विशेष हवन सामग्री का चयन यज्ञ के लिए किया जाता है उसका उपयोग चूर्ण के रूप में किया जाता है।
5. हवन–सामग्री के साथ गोघृत का प्रयोग किया जाता है।
6. रोगानुसार मंत्र का प्रयोग करते हैं। सामान्यतः शारीरिक रोगों में सूर्य गायत्री मंत्र का प्रयोग किया जाता है तथा मानसिक रोगों में चन्द्रगायत्री मंत्र का प्रयोग किया जाता है।
7. हवन सामग्री को जलती हुई अग्नि के मध्य डालें एवं प्रत्येक आहुति के पश्चात् लम्बी गहरी श्वास लें। यज्ञ के पश्चात् यज्ञ स्थल पर प्राणायाम करें।
8. यज्ञ प्रातःकाल में पूर्ण मनोयोग से स्वच्छ सूती वस्त्र धारण कर सम्पन्न करें।

अभ्यास प्रश्न – ग

14. विधिपूर्वक किया हुआ हवन ....के समान हमारे अभावों को दूर करने वाला सिद्ध हो सकता है ?
15. सात्विक यज्ञ हेतु किस वृक्ष की समिधा का चयन करते हैं ?
16. मानसिक रोगों में किस मन्त्र का प्रयोग किया जाता है ?

17.6 सारांश

यज्ञ से आत्म साक्षात्कार, स्वर्ग सुख, बन्धन मुक्ति, मनः शुद्धि, पाप प्रायश्चित होता है और ऋद्धि सिद्धियाँ मिलती हैं, अनेक प्रकार के आध्यात्मिक एवं भौतिक शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं। अनेकों मानसिक दुर्बलताएँ दूर हो सकती हैं। यज्ञ से प्रसन्न हुए देवता मनुष्य को धन, सौभाग्य, वैभव तथा सुख साधन प्रदान करते हैं। यज्ञ करने वाला कभी दरिद्री नहीं रह सकता। यज्ञ करने वालों की सन्तान बलवान, बुद्धिमान, सुन्दर और दीर्घजीवी होती हैं। यज्ञ को सर्वकामना पूर्ण करने वाली कामधेनु और स्वर्ग की सीढ़ी कहा गया है। यज्ञ से अमृतमयी वर्षा होती है, जिससे अन्न, वनस्पत्ति, दूध, खनिज पदार्थों की प्रचुर मात्रा में उत्पत्ति होती है, जिससे प्राणियों का पालन होता है।यज्ञ से सद्भावनापूर्ण वातावरण की ।उत्पत्ति होने से आकाश में फैले हुए चिन्ता, कलह, क्लेश, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, अन्याय, लोभ व अत्याचार के भाव नष्ट होते हैं। यज्ञ से वायु शुद्ध होती है। यज्ञ से शत्रु मित्र बन जाते हैं। पापों का नाश होता है, आत्मा को मैल दूर होता है और लोक के सब दुष्कर्म नाश होता है। यज्ञकर्ता भय रहित हो जाते हैं, यज्ञ से मल–विक्षेप व कुसंस्कारों का निवारण होता है। मन वाणी एवं बुद्धि की उन्नति होती है, पवित्र आचरण करने की शक्ति प्राप्त होती है ओर शान्तिमय वातावरण की उत्पत्ति होती है। यज्ञ करने वाले को माया नहीं सता सकती, उसकी आयु बढ़ती है।

सारांश यह है कि यज्ञ से सूक्ष्म दिव्य शक्तियाँ बलवान होती हैं, उनकी तुष्टि पुष्टि होती है, जिससे प्राणी मात्र को विशेष लाभ होते हैं। यदि यज्ञ विद्या का लोप होता जाये तो सृष्टि में जो सूक्ष्म आध्यात्मिक धाराओं का प्रवाह चल रहा है वह धीरे–धीरे मध्यम से मध्यमतर होता चला जाये, तो लोगों में पाशविक वृत्तियों का आधिपत्य होने लगेगा। आकार में मनुष्य होते हुए भी वह प्शुवत कार्य करेंगे। आज यज्ञ के अभाव में ऐसा ही हो रहा है। एटम बम और हाइड्रोजन बमों से पृथ्वी को नष्ट करने की तैयारियां हो रही हैं। सूक्ष्म जगत में आसुरी शक्तियाों की तीव्र गति से वृद्धि ही इसका मूल कारण है। इन आसुरी शक्तियों को नष्ट भ्रष्ट करने के लिये देवशक्तियों को बलवान बनाने की आवश्यकता है। देवशक्तियों को बल देने का साधन है यज्ञ। यदि शान्तिमय वातावरण की उत्पत्ति करनाचाहते हैं तो हमें बड़े–बड़े यज्ञ करने चाहिए।

17.7 शब्दावली

अग्निहोत्र – सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय कण्डे की अग्नि में अन्न व घृत युक्त औषधि का हवन।
काष्ठपात्र – लकड़ी की बनी हुई यज्ञ पात्र।
यज्ञशिष्ट – यज्ञोपरान्त बचा हुआ प्रसाद।
सहकारिता – मिलजुल कर किसी भी कार्य को करना।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. अभ्यास प्रश्न – क
   1. प्राणशक्ति की निर्बलता
   2. टायफाइड ज्वर
   3. शारीरिक व मानसिक

1. अभ्यास प्रश्न – ख
   1. कर्म 2. गुगल कपूर व चन्दन
   3. बाजपेय, राजसूय
2. अभ्यास प्रश्न – ग
   1. कामधेनु गौ एवं कल्पवृक्ष
   2. आम्र, पीपल, बेल, अशोक
   3. चन्द्रगायत्री मंत्र का

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 यज्ञ चिकित्सा – ब्रह्मवर्चस्
2 यज्ञ का ज्ञान–विज्ञान वांगमय 25 – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
3 यज्ञ एक समग्र उपचार प्रक्रिया वांगमय 26 – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
4 आर्यों की यज्ञ प्रक्रिया – डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त
5 अध्यात्म के स्वर – डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालिए ?
2. यज्ञ के आध्यात्मिक व भौतिक लाभों का सोदाहरण विस्तार पूर्वक वर्णन किजिए ?
3. यज्ञ चिकित्सा की महत्वपूर्ण सावधानियों का विस्तार से वर्णन कीजिए ?
4. यज्ञ चिकित्सा के सामान्य लाभों पर प्रकाश डालिए ?